CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

VH1 S,3

स्नातक संस्कृत व्याकरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चंद्र जी शास्त्री
प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेंट

कृपया इस ग्रन्थको निम्नांकित तिथि पर या उसके पूर्व
लौटा दें। विलम्बसे लौटानेपर ५ पैसे
प्रतिदिन दण्ड देना होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नातक-संस्कृत-व्याकरण

प्रथम एवं द्वितीय भाग

[संस्कृत विद्यालयों तथा प्राक् विश्वविद्यालय से एम० ए० तक के विद्यार्थियों के लिये]

सं. १८३

लेखक

प्रो० नेमिचन्द्र शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, एम० ए०
(संस्कृत, हिन्दी तथा प्राकृत एवं जैनोलॉजी); स्वर्ण पदक प्राप्त।
संस्कृत एवं प्राकृत विभाग
हर प्रसाद दास जैन कॉलेज, आरा।

६२६

प्रकाशक

ज्ञानदा-प्रकाशन

खजांची रोड :: पटना-४

सितम्बर १९६०] [मूल्य रु० ४·७५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक :
देवीदयाल चौधरी
वास्ते ज्ञानदा-प्रकाशन
पटना-४

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

[प्रथम संस्करण आश्विन, संवत् २०१७]

मुद्रक—
शंकर मुद्रणालय, वाराणसी
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, वाराणसी
तथा
तरुण भारत प्रेस, पटना-४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri
शास्त्री
आचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेंट

आमुख

संस्कृत भाषा को सीखने के लिए व्याकरण का कितना महत्व है, इससे सभी अवगत हैं। यही कारण है कि संस्कृत में व्याकरण का जितना विस्तृत और सूक्ष्म अध्ययन हुआ है, उतना संसार की अन्य किसी भाषा में नहीं। वैदिक युग में ही शब्दों के शुद्ध उच्चारण करने के लिए प्रातिशाख्यों का प्रणयन किया गया था। ई० पू० ७ वीं शती में लिखा गया यास्क का निरुक्त भी शब्दों की व्युत्पत्तियाँ उपस्थित करने में अद्वितीय है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी द्वारा संस्कृत को अत्यन्त सुव्यवस्थित करने में कोई कमी उठा नहीं रखी है। 'कविकल्पद्रुम' के धातु पाठ में बोपदेव ने आठ वैयाकरणों का उल्लेख किया है।

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्ना विशली शाकटायन।
पाणिन्यमरजैनेन्द्राः जयन्त्यष्टादि शाब्दिकाः॥

इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, विशली---आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर और जैनेन्द्र ये आठ वैयाकरण प्रसिद्ध हैं।

पाणिनि व्याकरण को कात्यायन और पतञ्जलि ने उपयोगी बनाया है। कात्यायन ने पाणिनि के लगभग १५०० सूत्रों में तीव्र आलोचनात्मक दृष्टि से कमी पाकर ४००० वार्तिकों की रचना की है। पतञ्जलि ने कात्यायन द्वारा पाणिनि पर किये गये आलोचनात्मक वार्तिकों का खण्डन तथा पाणिनि के सूत्रों का मण्डन अत्यन्त सजीव और सुबोध शैली में किया है। शंका-समाधान को रोचक बनाने के लिए इन्होंने अनेक घरेलू दृष्टान्तों का उपयोग किया है। पाणिनि-व्याकरण पर टीका-टिप्पणी की परम्परा १७ वीं शदि तक चलती रही। पाणिनि के अतिरिक्त चन्द्रगोमी, शर्ववर्मा, पूज्यपाद, शकटायन, हेमचन्द्र, बोपदेव प्रभृति वैयाकरणों ने भी व्याकरण ग्रन्थ लिखकर संस्कृत व्याकरण को विस्तृत और व्यवस्थित करने में सहयोग प्रदान किया।

अब तक संस्कृत के जितने व्याकरण उपलब्ध हैं, उनमें पठन-पाठन में पाणिनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याकरण का ही अधिक प्रचार है। अतः स्नातक संस्कृत व्याकरण का भी आधार पाणिनि व्याकरण ही है।

व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति—"व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दाः अनेन" अर्थात् जिसके द्वारा शब्दों की व्युत्पत्ति बतलायी जाय, वह व्याकरण शास्त्र है। वि, आ उपसर्ग; कृ धातु एवं ल्युट् प्रत्यय के योग से व्याकरण शब्द बनता है; इसका अर्थ है जिसके द्वारा शब्द बने वह शास्त्र। इसी कारण व्याकरण को शब्द शास्त्र भी कहा गया है। पाणिनि ने व्याकरण का उद्देश्य भाषा का विश्लेषण करना माना है। इनके मत से इसके चार तत्त्व हैं—नाम, आख्यात-धातु, उपसर्ग और निपात-अव्यय। समस्त अष्टाध्यायी में इन चारों का नियमन किया गया है।

व्याकरण के क्षेत्र में शब्द साधुत्व का सम्यक् बोध कराने के लिए भट्टोजि दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी और वरदराज ने लघु संस्करण रूप लघु सिद्धान्त कौमुदी और मध्य सिद्धान्त कौमुदी का सम्पादन किया है। अतः व्याकरण का विधिवत ज्ञान प्राप्त करने के लिए उक्त तीनों ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय हैं। इस सत्य से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि शब्द सम्पत्ति की वास्तविक जानकारी सिद्धान्त कौमुदी के परिज्ञान के अभाव में अधूरी है।

वर्तमान में संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और उच्च विद्यालयों में पूर्वात्य एवं पाश्चात्य दोनों प्रणालियों से सम्पन्न किया जाता है। पर इस वास्तविकता से सभी अवगत हैं कि इस भाषा की उपयुक्त और उचित रूप में जानकारी व्याकरण ज्ञान के बिना संभव नहीं है। यों तो हिन्दी और अंग्रेजी के माध्यम से कई सुबोध संस्कृत व्याकरण ग्रन्थ लिखे गये हैं, पर इन सभी व्याकरणों में परीक्षार्थियों की दृष्टि से कोई न कोई कमी अवश्य रह गयी है। प्रस्तुत स्नातक संस्कृत व्याकरण को परीक्षार्थियों के लिए सर्वाधिक उपयोगी बनाने की चेष्टा की गयी है। इसमें निम्न विशेषताएँ उपलब्ध होंगी।

१—नियमों को अवगत कराने के लिए पाणिनि के सूत्र हिन्दी अर्थ सहित दिये गये हैं, जिससे छात्र सरलतापूर्वक सूत्रों के आधार पर नियमों को स्मरण रख सकेंगे।

२—नियमों को समझाने में उदाहरणों का आधार रखा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३—भारतवर्ष के समस्त विश्वविद्यालयों के कई वर्ष के प्रश्नपत्रों के आधार पर अनुशीलनी दी गयी है। प्रत्येक प्रकरण के अन्त में दी गयी इस अनुशीलनी के प्रश्नों को कर लेने से नियमों का इतना अधिक अभ्यास हो जायगा, जिससे परीक्षार्थी परीक्षा में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करेंगे।

४—विषय को संक्षिप्त और सुबोध शैली में उपस्थित किया गया है।

५—प्रत्येक प्रकरण में ऐसी नवीन बातें अवश्य मिलेंगी, जो अन्य व्याकरण ग्रन्थों में नहीं हैं।

६—विषय और नियमों को समझाने की पूरी चेष्टा की गयी है।

७—प्रत्येक हिन्दी जाननेवाला व्यक्ति इस पुस्तक के अध्ययन से व्याकरण सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझा सकता है।

८—प्राक्-विश्वविद्यालय से एम० ए० तक के छात्रों के लिए यह व्याकरण उपयोगी होगा।

९—इस व्याकरण की एक विशेषता यह भी है कि यह संस्कृत हाई स्कूलों के छात्रों के लिए भी उपयोगी है।

१०—लौकिक संस्कृत व्याकरण के साथ वैदिक व्याकरण भी लिखा गया है। मैक्डॉनल की वैदिक ग्रामर के आधार पर समस्त वैदिक व्याकरण ग्रथित है।

इस पुस्तक के लिखने में जिन-जिन लेखकों की रचनाओं से लाभ उठाया है, उन सबका मैं आभारी हूँ। परामर्श के रूप में सहयोग देनेवाले आचार्य श्री राम-मोहन दास जी, संस्कृत एवं प्राकृत विभागाध्यक्ष, हर प्रसाद दास जैन कालेज, आरा का भी मैं हृदय से आभार स्वीकार करता हूँ। आपसे अनेक प्रकार का सौहार्दपूर्ण सहयोग मिलता रहा है।

इस व्याकरण के लिखने की प्रेरणा मुझे श्री देवीदयाल चौधरी, संचालक, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना से प्राप्त हुई है तथा इस रचना को प्रकाश में लाने का सारा श्रेय श्री चौधरी जी को ही है। मैं उनके प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

श्री शंकर मुद्रणालय तथा श्री ज्योतिष प्रकाश प्रेस, वाराणसी के अधिकारियों के प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

हर प्रसाद दास जैन कालेज, आरा
विजया दशमी, सं० २०१७ } नेमिचन्द्र शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय सूची

प्रथम भाग

प्रथमोऽध्यायः

विषय	पृष्ठ संख्या
वर्ण की परिभाषा	१
वर्ण और अक्षर में अन्तर	१
वर्णमाला बोधक १४ सूत्र	१
प्रत्याहार	२
स्वर की परिभाषा और भेद	४
व्यञ्जनों की परिभाषा और भेद	४
अनुस्वार और विसर्ग का स्वर-व्यञ्जनत्व	४
गुण की अपेक्षा स्वरों के भेद	४
उच्चारण की अपेक्षा स्वरों के भेद	५
प्रत्येक स्वर के अठारह भेद	५
अनुनासिक की परिभाषा	५
वर्णों के उच्चारण स्थान	५
प्रयत्न विचार	७
अघोष वर्ण	८
घोष वर्ण	८
अल्पप्राण वर्ण	८
महाप्राण वर्ण	८
स्पर्श वर्ण	८
अन्तःस्थ वर्ण	८
ऊष्म वर्ण	८
अयोगवाह	८
सवर्ण संज्ञा	८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ सं०
गुण संज्ञा	९
वृद्धि संज्ञा	९
सम्प्रसारण संज्ञा	९
टि संज्ञा	९
उपधा संज्ञा	९
प्रातिपदिक संज्ञा	९
पद संज्ञा	९
गृह्य संज्ञा	९
उपसर्ग संज्ञा	१०
धातु संज्ञा	१०
कृति, प्रत्यय और आदेश की परिभाषाएँ	१०
अनुशीलनी	१०

द्वितीयोऽध्यायः

सन्धि की परिभाषा	१२
संयोग और सन्धि में भेद	१२
समास और सन्धि में भेद	१२
सन्धि के मुख्य तीन भेद	१२
सन्धि की व्यवस्था	१२
स्वर सन्धि की परिभाषा	१३
व्यञ्जन सन्धि की परिभाषा	१३
विसर्ग सन्धि की परिभाषा	१३
स्वर सन्धि के आठ भेद	१३
दीर्घ सन्धि	१३
दीर्घ सन्धि के अपवाद	१४
गुण सन्धि	१४
गुण सन्धि के अपवाद	१५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ सं०
वृद्धि सन्धि	१६
यण सन्धि	१७
अयादि सन्धि	१८
पूर्व रूप सन्धि	२२
पररूप सन्धि	२२
कृति भाव सन्धि	२३
अनुशीलनी	२४
व्यञ्जन सन्धि विचार	२५
अनुशीलनी	३२
विसर्ग सन्धि	३४
विसर्ग के भेद	३४
सजात और रजात विसर्ग की व्यवस्था	३४
विसर्ग सन्धि में विसर्ग के छः विकार	३५
विसर्ग सन्धि के नियम	३५
अनुशीलनी	४१
णत्व विधान	४३
स्वाभाविक णत्व	
अनुशीलनी	४७
षत्व विधान	४८
स्वाभाविक षत्ववाले शब्द	५२
अनुशीलनी	५२

तृतीयोऽध्यायः

शब्द की परिभाषा और उसके भेद	५४
प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार शब्दों के भेद	५४
लिङ्ग और वचन	५५
विभक्तियों की आकृतियाँ	५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या
राम शब्द की साधनिका	५६
इकारान्त और उकारान्त शब्दों की विशेषताएँ	५७
सर्व शब्द की साधनिका	५८
रमा, सर्व, और ज्ञान शब्द के रूपों की प्रक्रिया	५८
स्वरान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप	६०
स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप	
स्वरान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप	
व्यञ्जनान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप	
सर्वनाम शब्दों की तालिका	८६
इदं और एतद् शब्दों के प्रयोग का निर्णय	८६
तद् और अदस् की प्रयोग विभिन्नता	८६
सर्वनाम शब्दों के रूप	६०
संख्यावाचक शब्दों के रूप	६७
क्रमवाचक शब्दों के रूप	१०१
तुलनात्मक विशेषण	१०२
तुलनात्मक शब्दों की तालिका	१०२

चतुर्थोऽध्यायः

स्त्रीलिङ्ग शब्दों के भेद	१०४
स्त्री प्रत्यय की परिभाषा	१०४
स्त्री प्रत्ययों के आठ भेद	१०४
टाप् विचार	१०४
डाप् विचार	१०६
चाप् विचार	१०६
ङीप् विचार	१०७
अपवाद	१०७
ङीप् विचार	१११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ सं०
ङीन् विचार	११४
'ति' विचार	११५
अध्ययनीय शब्द	११६
कतिपय शब्दयुग्मों में अर्थ भेद	११८
अनुशीलनी	१२०
अव्यय	१२०
उपसर्ग	१२१
क्रिया विशेषण	१२२
अव्ययों के अर्थ	१२३
समुच्चय बोधक	१२६
मनोविकार सूचक अव्यय	१२६
अतिरिक्त अव्यय	१२७
संक्षिप्त धातु रूपावली	१२७

द्वितीय भाग

पञ्चमोऽध्यायः

कारक की परिभाषा	१
कारकों की संख्या	१
विभक्ति और कारक में अन्तर	१
विभक्ति की परिभाषा	१
प्रथमा विभक्ति	२
प्रातिपदिक की परिभाषा	२
द्वितीया विभक्ति	३
कर्म की परिभाषा	३
तृतीया विभक्ति	११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या
करण की परिभाषा	११
चतुर्थी विभक्ति	१५
सम्प्रदान की परिभाषा	१५
पञ्चमी विभक्ति	२२
अपादान की परिभाषा	२२
षष्ठी विभक्ति	२८
सम्बन्ध के भेद	२८
सप्तमी विभक्ति	३६
अधिकरण की परिभाषा	३६
अनुशीलनी	४१

षष्ठोऽध्यायः

समास की परिभाषा	४२
समास के मुख्य भेद	४२
केवल समास	४२
अव्ययीभाव	४३
तत्पुरुष समास	४६
प्रथमा तत्पुरुष	४६
द्वितीया तत्पुरुष	४६
तृतीया तत्पुरुष	४७
चतुर्थी तत्पुरुष	४७
पञ्चमी तत्पुरुष	४७
षष्ठी तत्पुरुष	४७
सप्तमी तत्पुरुष	४७
नञ् तत्पुरुष	४८
प्रादितत्पुरुष	४८
गतितत्पुरुष	४८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या
उपपद समा	४६
अलुक् समास	४६
मध्यम पदलोपी	४६
मयूरव्यंसकादि	४६
कर्मधारय	४६
द्विगु समास	५०
द्वन्द्व समास	५१
द्वन्द्व समास के भेद	५१
बहुव्रीहि समास	५१
बहुव्रीहि के भेद	५१
समासान्त प्रकरण	५२
तद्धित की परिभाषा	५३
तद्धित प्रत्ययों का वर्गीकरण	५३
तद्धित प्रत्यय जोड़ने के सामान्य नियम	५३
अपत्यार्थक प्रत्यय	५४
देवतार्थक ,,	५६
समूहार्थक ,,	५७
अध्ययनार्थक ,,	५८
शैषिक ,,	५६
विकारार्थक और सम्बन्धार्थक प्रत्यय	६१
मतुबर्थक प्रत्यय	६२
स्वार्थिक ,,	६३
अनेकार्थक ,,	६४
भावार्थ तथा कर्मार्थ प्रत्यय	६५

सप्तमोऽध्यायः—क्रिया विचार

धातु की परिभाषा	६७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या
गणों के नाम	६७
लकारों के नाम और उनके अर्थ—	६७
लकारों के विभक्ति चिह्न	६८
गम् धातु के दसों लकारों के रूप	७०
दृश् धातु के पाँच लकारों के रूप	७२
भू धातु के दस लकारों के रूप	७३
दा धातु के पाँच लकारों के रूप	७४
नम् धातु के ,,	७५
स्था धातु के रूप ,,	७६
घ्रा धातु के रूप ,,	७७
पत् और पा धातु के पाँच लकारों के रूप	७८
स्मृ धातु के ,, ,,	७९
जि धातु के पाँच लकारों के रूप	८०
हृ ,, ,,	८१
हस् ,, ,,	८२
वद् और पच् ,, ,,	८३
सेव् धातु के पाँच लकारों के रूप	८४
लभ् ,, ,,	८५
वृध् और वृत् ,, ,,	८६
मुद् ,, ,,	८७
श्रु ,, ,,	८८
पा धातु के लिट आदि पाँच लकारों के रूप	८९
स्था ,, ,,	९०
दृश् और हन् ,, ,,	९१
ब्रू, दा, हु और क्रुध् ,,	९२ · ९५
एध् धातु के दसों लकारों के रूप	९६
पठ ,, ,,	९८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या
अद् ,, ,,	९९
दिव् ,, ,,	१०१
बुध् ,, ,,	१०२
युज् ,, ,,	१०४
तुद् ,, ,,	१०५
रुधिर् धातु के दस लकारों के रूप	१०७
ज्ञा ,, ,,	१०८
ग्रह् तथा कथ् ,, ,,	११०—१११
अधि+इ,, ,,	११३
शीङ् ,, ,,	११५
नी धातु के पाँच लकारों के रूप	११७
अस् धातु ,, ,,	११८
हन् ,, ,,	११९
विद् तथा सद् ,,	१२०
ब्रू ,, ,,	१२१
दा ,, ,,	१२२
प्रच्छ् तथा कृत् ,,	१२३
क्री ,, ,,	१२४
ग्रह तथा कथ ,,	१२५—१२६
णिजन्त प्रक्रिया	१२७
सन्नन्त प्रक्रिया	१२८
यङन्त प्रक्रिया	१२९
नाम धातु	१२९
आत्मनेपद प्रक्रिया	१३१
परस्मैपद प्रक्रिया	१४०
अनुशीलनी	१४१
कर्मवाच्य	१४३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या
कर्मवाच्य में धातुओं के रूप	१४५
वाच्य परिवर्त्तन के नियम	१५५
अनुशीलनी	१५७
लकारार्थ प्रक्रिया	१५८
अनुशीलनी	१६३
कृत् प्रत्यय की परिभाषा	१६४
कृत् प्रत्यय	१६५
भूतकाल के कृत् प्रत्यय	१६८
वर्त्तमान काल के कृत् प्रत्यय	१७०
भविष्य काल के कृत् प्रत्यय	१७१
भावार्थ कृत् प्रत्यय	१७३
कर्मवाचक कृत् प्रत्यय	१७५
शीलधर्म वाचक कृत् प्रत्यय	१७६
खलर्थ कृत् प्रत्यय	१७८
उणादि प्रत्यय	१७६

अष्टमोऽध्यायः—वैदिक व्याकरण

वैदिक भाषा के रूप	१८०
वेद में सन्धि व्यवस्था	१८०
स्वर सन्धि और उसके भेद	१८१
व्यञ्जन सन्धि	१८३
विसर्ग सन्धि	१८५
शब्दों के भेद	१८५
अकारान्त शब्दों की विशेषताएँ	१८६
अकारान्त शब्दों के रूप	१८७
आकारान्त प्रिया शब्द के रूप	१८७
इकारान्त अग्नि शब्द के रूप	१८८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय	पृष्ठ संख्या
ईकारान्त देवी शब्द के रूप	१८८
उकारान्त तनु शब्द के रूप	१८६
ऋकारान्त दातृ शब्द के रूप	१८६
युष्मद्, अस्मद् और तत् शब्द के रूप	१६०
भू धातु के रूप	१६१
इण् धातु के रूप	१६२
ब्रूञ् धातु के रूप	१६३
कृञ् ,, ,,	१६४
इं जंक्टिव मूड	१६४
इनफिनेटिव—तुमुन्	१६५
जीरण्ड—क्त्वा	१६७
सबजंक्टिव मूड—लेट् लकार	१६८
ओरिस्ट—लुङ्	२००
वाच्य परिवर्त्तन	२००
कर्मवाच्य	२००
भाववाच्य	२०१
कारक	२०२
कम्पाउण्ड्स—समास	२०३
समासों का वर्गीकरण	२०४
द्वन्द्व समास	२०४
तत्पुरुष समास	२०५
कर्मधारय समास	२०६
बहुव्रीहि समास	२०६
अनुशासित अव्ययीभाव समास	२०७
वाक्य रचनात्मक समास	२०७
द्विरुक्त समास	२०८
लौकिक संस्कृत और वैदिक संस्कृत में अन्तर	२०८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नातक-संस्कृत-व्याकरण

प्रथमोऽध्यायः

वर्णविचार और संज्ञाएँ

भाषा की मूल ध्वनियों तथा उन ध्वनियों के प्रतीक स्वरूप लिखित चिह्नों को वर्ण कहते हैं। वर्ण और अक्षर में अन्तर यह है कि वर्ण मूल ध्वनियों के उच्चरित रूप तथा उनके लिखित चिह्नमात्र हैं, उनके खण्ड नहीं हो सकते; किन्तु अक्षर स्वरों और स्वर संयुक्त व्यञ्जनों को कहते हैं अर्थात्—अक्षरों में स्वर और व्यञ्जन के भेद से खण्ड हो जाते हैं। संस्कृत में वर्णों का बोध कराने के लिए निम्न चौदह सूत्र प्रसिद्ध हैं।

(१) अइउण्[1] (२) ऋलृक् (३) एओङ् (४) ऐऔच् (५) हयवरट् (६) लण् (७) ञमङणनम् (८) झभञ् (९) घढधष् (१०) जबगडदश् (११) खफछठथचटतव् (१२) कपय् (१३) शषसर् (१४) हल्।

इन चतुर्दश सूत्रों के अण्, अक्, अच् आदि प्रत्याहार सूत्र निष्पन्न होते हैं। इन चौदह सूत्रों के अन्तिम वर्ण इत्संज्ञक हैं और हकारादि वर्णों में सम्मिलित अकार उच्चारण के लिए हैं।

१—नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारान्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

अर्थ—नृत्य के पश्चात् शिवजी ने अपने डमरू को चौदह बार बजाया, उसमें से चौदह ध्वनियाँ निकलीं, जो चौदह सूत्र कहलायीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदिरन्त्येन सहेता १।१।७१

अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण के साथ उच्चारित आदि वर्ण अपने तथा मध्यवर्ती वर्णों का भी बोधक होता है। जैसे अण् प्रत्याहार का अर्थ है अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

प्रत्याहार सूत्र ४२ हैं, परिचय निम्न प्रकार अवगत करना चाहिए।

१ अक्—अ इ उ ऋ लृ।

२ अच—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।

३ अञ्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।

४ अट्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र।

५ अण्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

६ अम्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न।

७ अल्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

८ अश्—अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल ञ म ङ न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

९ इक्—इ उ ऋ लृ।

१० इच्—इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ।

११ इण्—इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ ह य व र ल।

१२ उक्—उ ऋ लृ।

१३ एङ् ए ओ।

१४ एच्—ए ओ ऐ औ।

१५ ऐच्—ऐ औ।

१६ खय्—ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

१७ ङम् ङ ण न।

१८ चय्—च ट त क प।

१९ चर्—च ट त क प श ष स।

२० छव्—छ ठ थ च ट त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१ जश्—ज ब ग ड द।

२२ झय्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

२३ झर्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स।

२४ झल्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

२५ झश्—झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

२६ झष्—झ भ घ ढ ध।

२७ बश्—ब ग ड द।

२८ भष्—भ घ ढ ध।

२६ मय्—म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

३० यञ्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ।

३१ यण्—य व र ल।

३२ यम्—य व र ल ञ म ङ ण न।

३३ यय्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प।

३४ यर्—य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ थ च ट त क प श ष स।

३५ रल्—र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह)

३६ वल्—व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह।

३७ वश्—व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द।

३८ शर्—श ष स।

३६ शल्—श ष स ह।

४० हल्—ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ख फ छ ठ च ट त क प श ष स ह।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४१ हश्—ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द ।

उपर्युक्त प्रत्याहार सूत्रों से ज्ञात होता है कि मूलतः वर्ण दो प्रकार के हैं—स्वर और व्यञ्जन ।

स्वर—जिन वर्णों के उच्चारण में अन्य वर्णों की सहायता अपेक्षित नहीं होती, वे स्वर कहलाते हैं। स्वर तीन प्रकार के हैं—ह्रस्व, दीर्घ और मिश्र-विकृत दीर्घ (सन्ध्यक्षर) । स्वर तेरह होते हैं।

जिन वर्णों के उच्चारण करने में स्वर वर्णों की सहायता लेनी पड़ती है, वे व्यञ्जन कहलाते हैं। व्यञ्जन ३५ हैं।

अ इ उ ऋ ऌ—ह्रस्व (सादे)	स्वर
आ ई ऊ ॠ—दीर्घ (सादे)	
ए ऐ ओ औ मिश्रविकृत दीर्घ (सन्ध्यक्षर)	

क ख ग घ ङ—कवर्ग	व्यञ्जन
च छ ज झ ञ—चवर्ग	
ट ठ ड ढ ण—टवर्ग	
त थ द ध न—तवर्ग	
प फ ब भ म – पवर्ग	
य र ल व—अन्तःस्थ	
श ष स ह—उष्म	
ं अनुस्वार	
: विसर्ग	

अनुस्वार और विसर्ग भी व्यञ्जन माने जाते हैं; यतः अनुस्वार म् या न् का रूपान्तर है और विसर्ग र् या स् का। अनुस्वार और विसर्ग सदैव स्वरों के पीछे प्रयुक्त होते हैं; अतः इन्हें स्वर भी माना जाता है।

गुण की अपेक्षा से स्वरों के तीन भेद हैं—ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत ।

एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम् ॥

अर्थ—जिसमें एक मात्रा हो, वह ह्रस्व; दो मात्राएँ हों, वह दीर्घ और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसमें तीन मात्राएँ हों, वह प्लुत कहा जाता है। व्यञ्जन में आधी मात्रा ही होती है।

उच्चारण की विशेषता के कारण प्रत्येक स्वर के तीन भेद हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

उच्चैरुदात्तः १।२।२९

तालु आदि स्थानों के ऊर्ध्व भाग से उच्चारित होनेवाले वर्ण उदात्त कहलाते हैं।

नीचैरनुदात्तः १।२।३०

तालु आदि स्थानों के अधो भाग से उच्चारित अनुदात्त कहे जाते हैं।

समाहारः स्वरित १।२।३१

उदात्त और अनुदात्त ये दोनों धर्म जिसमें मिश्रित हों, वह स्वरित है।

इस प्रकार स्वरों के ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत भेदों में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेदों के होने से प्रत्येक स्वर के नौ भेद होते हैं। इनमें से प्रत्येक के अनुनासिक और अननुनासिक भेद से प्रत्येक स्वर के अठारह भेद होते हैं; किन्तु दीर्घ न होने से लृ के बारह भेद और ह्रस्व न होने से ए ओ ऐ औ के बारह भेद होते हैं।

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः १।१।८

मुख और नासिका से उच्चारण किये गये वर्ण अनुनासिक कहलाते हैं। यथा—अँ, आँ, एँ, ऐँ आदि। जिनके उच्चारण में नाक की सहायता की आवश्यकता नहीं होती; वे अननुनासिक हैं। यथा—अ, आ, ए, ऐ आदि।

वर्णों के उच्चारण के स्थान—

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।

अ आ क ख ग घ ङ ह और विसर्ग का उच्चारण-स्थान कण्ठ है; अतः ये वर्ण कण्ठ्य कहलाते हैं।

इचुयशानां तालु।

इ ई च छ ज झ ञ य और श का उच्चारण-स्थान तालु है। अतः ये वर्ण तालव्य कहे जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋटुरषाणां मूर्द्धा ।

ऋ ॠ ट ठ ड ढ ण र और ष का उच्चारण स्थान मूर्द्धा है । अतः ये मूर्धन्य कहे जाते हैं ।

लृतुलसानां दन्ताः ।

लृ त थ द ध न ल और स का उच्चारण स्थान दन्त है ; अतः ये वर्ण दन्त्य कहलाते हैं ।

उपूपध्मानीयानामोष्ठौ ।

उ ऊ प फ ब भ म और उपध्मानीय ˘ प ˘ फ का उच्चारण स्थान ओष्ठ है । अतः इनको ओष्ठ्य वर्ण कहते हैं । पवर्ग के पश्चात् आनेवाले विसर्ग को उपध्मानीय कहते हैं ।

ञमङणनानां नासिका च ।

ञ म ङ ण न और म का उच्चारण स्थान नासिका है । अतः ये वर्ण अनुनासिक कहे जाते हैं ।

एदैतोः कण्ठतालुः ।

ए और ऐ का कण्ठ एवं तालु उच्चारण स्थान है ।

ओदौतोः कण्ठोष्ठम् ।

ओ और औ का कण्ठ तथा ओष्ठ उच्चारण स्थान है ।

वकारस्य दन्तोष्ठम् ।

वकार का दन्त और ओष्ठ उच्चारण स्थान है ।

जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम् ।

जिह्वामूलीय ˘ क ˘ ख का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है । कवर्ग के पश्चात् आनेवाले विसर्ग को जिह्वामूलीय कहते हैं ।

नासिकाऽनुस्वारस्य ।

अनुस्वार का उच्चारण-स्थान नासिका है ।

विसर्ग जिस स्वरवर्ण के परे रहता है, उसी स्वर का उच्चारण स्थान विसर्ग का भी उच्चारण-स्थान होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयत्न-विचार

यत्नोद्विधा—आभ्यन्तरो बाह्यश्च। आद्यः पञ्चधा—स्पृष्टेषत्स्पृष्टेष-द्विवृतविवृतसंवृतभेदात्।

तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्। ईषद्विवृत-मूष्माणाम्। विवृत्तं स्वराणाम्। ह्रस्वास्यऽवर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादशायां तु विवृत्तमेव।

वर्णोच्चारण के लिये ध्वनियन्त्र को जो आयास करना पड़ता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—आभ्यन्तर और बाह्य।

वर्णोच्चारण के पूर्व हृदय में जो आयास होता है, उसे आभ्यन्तर और मुख से वर्ण निकलते समय जो आयास करना पड़ता है, उसे बाह्य प्रयत्न कहते हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न का अनुभव बोलनेवाले को ही होता है; किन्तु बाह्य का अनुभव श्रोता भी करते हैं।

आभ्यन्तर पाँच प्रकार का है—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत।

क से म पर्यन्त वर्णों का स्पृष्ट; अन्तस्थ—य र ल व का ईषत्स्पृष्ट, ऊष्मवर्ण—श ष स ह का ईषद्विवृत और स्वरों का विवृत प्रयत्न होता है। ह्रस्व अकार का प्रयोगावस्था—परिनिष्ठित सिद्धरूप में संवृत प्रयत्न होता है; किन्तु प्रक्रिया दशा—साधनावस्था में विवृत प्रयत्न ही रहता है।

बाह्यस्त्वेकादशधा—विवारः, संवारः श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्प-प्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति।

बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार का है—विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

जिन वर्णों का उच्चारण करते समय कण्ठ का विकाश हो, उनको विवार; जिनके उच्चारण में कण्ठ का विकाश न हो, उन्हें संविवार; जिनका उच्चारण करते समय श्वास चलता रहे, उनको श्वास; जिनका उच्चारण नाद से हो, उन्हें नाद; जिन वर्णों का उच्चारण करते समय गूँज हो, उन्हें घोष; जिनके उच्चारण में गूँज न हो, उन्हें अघोष; जिनके उच्चारण में प्राणवायु का अल्प उपयोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो, उन्हें अल्पप्राण एवं जिनके उच्चारण में प्राणवायु का अधिक उपयोग हो, उन्हें महाप्राण कहते हैं।

खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च ।

खर प्रत्याहार—ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स का विवार, श्वास और अघोष प्रयत्न है।

हशः संवारा नाद घोषाश्च ।

हश् प्रत्याहार—ह य र ल व ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द का संवार, नाद और घोष प्रयत्न है।

वर्गाणां प्रथमतृतीयपञ्चमा यणश्चाल्पप्राणाः ।

वर्गों का प्रथम, तृतीय और पञ्चम वर्ण तथा य र ल व का अल्पप्राण प्रयत्न है।

वर्गाणां द्वितीयचतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः ।

वर्गों का द्वितीय, चतुर्थ वर्ण तथा श ष स ह का महाप्राण प्रयत्न है।

कादयो मावसानाः स्पर्शाः ।

क से म पर्यन्त पच्चीस वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। इनके उच्चारण में जीभ का अगला, पिछला या मध्य भाग कण्ठ, तालु प्रभृति स्थानों का स्पर्श करता है, अतः ये वर्ण स्पर्श कहलाते हैं।

यणोऽन्तःस्थाः ।

य र ल व ये चार वर्ण अन्तःस्थ कहलाते हैं। इनके अन्तःस्थ कहलाने का कारण यह है कि ये चारों स्पर्श और ऊष्म वर्ण के मध्यवर्ती हैं।

शल ऊष्माणः ।

श ष स ह ये चार वर्ण उष्म हैं। इन वर्णों के उच्चारण में अधिक वायु निकलती है, अतः ये ऊष्म कहे जाते हैं।

ं अनुस्वार और (ः) विसर्ग की अयोगवाह संज्ञा है।

सवर्ण संज्ञा—**तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** १।१।९

जिस वर्ण का जिस वर्ण के साथ तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न एक हो, वह परस्पर सवर्ण संज्ञावाला होता है। ऋ लृ वर्ण की भिन्न स्थान होने पर भी सवर्ण संज्ञा होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणसंज्ञा—**अदेङ् गुणः** १।१।४५

अ ए ओ की गुण संज्ञा है।

वृद्धि—**वृद्धिरादैच्** १।१।१

आ ऐ औ की वृद्धि संज्ञा है।

सम्प्रसारण—**इग्यणः सम्प्रसारणम्** १।१।२

य व र ल के स्थान पर इ उ ऋ लृ का होना सम्प्रसारण है। इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ये वर्ण सम्प्रसारण (Liquid) कहलाते हैं। अ आ वर्णों को असम्प्रसारण (Neutral) कहा जाता है।

टि—**अचोऽन्त्यादि टि** १।१।६४

किसी भी शब्द के अन्तिम स्वर से लेकर अन्त तक का अक्षर समूह 'टि' संज्ञक होता है। यथा—मनस्+ईषा में मनस् शब्द के अस् भाग की टि संज्ञा मानी जायगी।

उपधा—**अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा** १।१।६५

शब्द के अन्त्यवर्ण के पूर्व वर्ण की उपधा संज्ञा होती है।

प्रातिपदिक—**अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्** १।२।४५

धातु और प्रत्यय के अतिरिक्त अर्थवान् शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होती है।

कृत्तद्धितसमासाश्च १।२।४६

कृदन्त, तद्धित और समास पदों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। तात्पर्य यह है कि जिससे वस्तु या वस्तु के विशेषण का बोध होता हो, उसे प्रातिपदिक कहते हैं। यथा—वस्तुवाचकः—चन्द्रः, सूर्यः, लता, वायुः प्रभृति। वस्तु के विशेषण वाचकः—स्थिरः, प्रबलः, सुन्दरः, नवीन इत्यादि।

पद—**सुप्तिङन्तं पदम्** १।४।१४

जिन शब्दों के अन्त में सुप् और तिङ् प्रत्यय हों, उनकी पद संज्ञा होती है।

प्रगृह्य—**ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्** १।१।११

ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन पदों की प्रगृह्य संज्ञा होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसर्ग—उपसर्गाः क्रियायोगे

क्रिया के साथ योग होने से प्र, अप, अव, उप, आ, परा, नि, वि, परि, प्रति, अति, अधि, अपि, अभि, सु, अनु, उत्, सम्, निर् और दुर् शब्दों की उपसर्ग संज्ञा होती है।

धातु—भ्वादयो धातवः

जिससे क्रिया का बोध हो उसे धातु कहते हैं। यथा—भू, स्था, गम् आदि।

प्रकृति – संज्ञा, विशेषण और क्रियावाचक शब्दों के मूलरूप को प्रकृति कहा जाता है। प्रकृति दो प्रकार की होती है—धातु और प्रातिपदिक।

प्रत्यय—धातु और प्रातिपदिक से परे लगाये जानेवाले शब्दांश को प्रत्यय कहते हैं। प्रत्यय पाँच प्रकार के होते हैं—विभक्ति, कृत्, तद्धित, स्त्रीप्रत्यय और धात्ववयव।

आदेश—प्रकृति और प्रत्यय के रूपपरिवर्तन को आदेश कहते हैं; जैसे स्था धातु के स्थान में तिष्ठ और पा धातु के स्थान में पिब आदेश होता है।

अनुशीलनी

१ वर्ण, स्वर, व्यञ्जन, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, अनुनासिक, प्रातिपदिक, उपधा, पद, उपसर्ग, धातु, प्रकृति, प्रत्यय और आदेश की सोदाहरण परिभाषाएँ लिखिये।

२ सवर्ण और टि संज्ञाओं की परिभाषा लिखिये।

३ स्पर्श, अन्तःस्थ, ऊष्म, कण्ठ्य, तालव्य, दन्त्य और अनुनासिक वर्णों को लिखिये।

४ वर्ण और अक्षर में अन्तर समझाकर असम्प्रसारण स्वरों को लिखिये।

५ प्रयत्न कितने प्रकार का है? विवार, संवार, घोष, अल्पप्राण और महाप्राण प्रयत्न की परिभाषाएँ लिखिये।

६ त, प, ह, य, क, ग, स, ह, ब, भ, घ, ड, म, र, व, श, थ, छ, ख, न और ट का अभ्यन्तर तथा बाह्य प्रयत्न लिखिये।

७ इक्, अण्, अट्, यर्, इच् और हश् प्रत्याहारों के वर्ण लिखिये।

८ अनुस्वार और विसर्ग का उच्चारण-स्थान क्या है? इन दोनों में कितनी मात्राएँ होती हैं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९ प्रत्याहार बनाने का क्या नियम है ? माहेश्वर सूत्र कौन से हैं ? संस्कृत व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करने में इन सूत्रों की क्या उपयोगिता है ?

१० विवार और संवार में क्या अन्तर है ? अ का प्रयोगावस्था और साधनावस्था के अनुसार प्रयत्न लिखिये ।

११ आभ्यन्तर प्रयत्न और बाह्य प्रयत्न में क्या अन्तर है ? प्रगृह्य संज्ञा किसे कहते हैं ? और इसका फल क्या है ?

१२ अ, ई, ऋ और औ के कितने भेद हैं ? वकार का उच्चारण स्थान कौन-सा है ? जिह्वामूलीय और उपध्मानीय में क्या अन्तर है ? दोनों का स्वरूप निर्धारण कीजिये ।

१३ संस्कृत भाषा की वर्णमाला में कितने स्वर और कितने व्यञ्जन हैं ?

१४ अनुस्वार और विसर्ग को व्यञ्जन क्यों माना गया है ? गुण की अपेक्षा स्वरों के कितने भेद हैं ?

१५ गुण और वृद्धिसंज्ञाओं की परिभाषाएँ लिखिये ।

१६ विवृत प्रयत्न किन-किन वर्णों का है ? ध्वनियों का उच्चारण किन साधनों पर आश्रित है ?

१७ सम्प्रसारण स्वर और अन्य स्वरों में क्या अन्तर है ? वर्णोच्चार में जिह्वा का क्या उपयोग है ? जिह्वा के बिना वर्णोच्चारण सम्भव है ?

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीयोऽध्यायः

सन्धि-विचार

जब किसी शब्द में दो वर्ण निकट आने पर मिल जाते हैं, तो उनके मेल से उत्पन्न होनेवाले विकार को 'सन्धि' कहते हैं।

संयोग और सन्धि में इतना भेद है कि जहाँ वर्ण अपने स्वरूप से बिना किसी विकार के मिलते हैं, उसे संयोग और जहाँ विकृत होकर उनके स्थान में कोई आदेश होकर मिलते हैं, उसे सन्धि कहते हैं।

समास और सन्धि में यह अन्तर है कि समास में दो या अधिक पद विभक्तियों का त्याग कर मिलते हैं, पर सन्धि में विभक्तियों सहित पदों का संयोग होता है। संक्षेप में वर्णविकार सन्धि है और शब्द विकार समास।

सन्धि तीन प्रकार की होती है—(१) स्वर-सन्धि (अच्-सन्धि) व्यञ्जन-सन्धि (हल्-सन्धि) और विसर्ग सन्धि।

सन्धि की व्यवस्था के सम्बन्ध में बताया गया है—

सन्धिरेकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते॥

एक पद—शब्द, धातु और उपसर्ग तथा समास—समस्त पद में सन्धि नित्य—निश्चित रूप से होती है; पर वाक्य में विवक्षा की अपेक्षा रखती है—वक्ता की इच्छा पर निर्भर होती है। यथा—एक पद में—ने + अनम् = नयनम्; भो + अति = भवति।

धातु और उपसर्ग में—अधि + आगच्छति = अध्यागच्छति।

समास में—कृष्णस्य + अन्नम् = कृष्णान्नम्।

वाक्य में—रामः गच्छति वनम् अथवा रामो गच्छति वनम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वर सन्धि—दो अत्यन्त निकट स्वरों के मिलने से जो ध्वनि में विकार उत्पन्न होता है, उसे स्वरसन्धि—अच् सन्धि कहते हैं; जैसे—ने + अनम् = नयनम्।

व्यञ्जन सन्धि—व्यञ्जन वर्णों के साथ व्यञ्जन या स्वरवर्णों के मिलने से जो विकार होता है, उसे व्यञ्जन—हल् सन्धि कहते हैं; जैसे—तस्मिन् + इति तस्मिन्निति; पेष् + ता = पेष्टा।

विसर्ग सन्धि—विसर्ग के साथ स्वरवर्ण या व्यञ्जन वर्ण के मिलने से जो विकार होता है, उसे विसर्ग या विसर्जनीय कहते हैं; जैसे—रामः + टीकते = रामष्टीकते; रामः + गच्छति = रामो गच्छति।

स्वर-सन्धि

स्वरसन्धि—अच्-सन्धि के आठ भेद हैं—दीर्घ, गुण, वृद्धि, यण्, अयादिचतुष्टय, पररूप, पूर्वरूप और प्रकृतिभाव।

१—अकः सवर्णे दीर्घः ६।१।१०१—ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ से उनका सवर्ण—सजातीय स्वर परे रहे तो दोनों के स्थान में सवर्ण दीर्घाकार होता है—उदाहरण—

(क) अ + अ = आ—दैत्य + अरिः = दैत्यारिः, शश + अङ्कः = शशाङ्कः।
अ + आ = आ—कमल + आकरः = कमलाकरः, कुश + आसनम् = कुशासनम्।
आ + अ = आ—विद्या + अर्थी = विद्यार्थी, दया + अर्णव = दयार्णवः।
आ + आ = आ—विद्या + आलयः = विद्यालयः, दया + आनन्द = दयानन्दः।

(ख) इ + इ = ई—कवि + इन्द्रः = कवीन्द्रः, गिरि + इन्द्रः = गिरीन्द्रः।
इ + ई = ई—गिरि + ईशः = गिरीशः, क्षिति + ईशः = क्षितीशः।
ई + इ = ई—मही + इन्द्रः = महीन्द्रः, महती + इच्छा = महतीच्छा।
ई + ई = ई—श्री + ईशः = श्रीशः, पृथ्वी + ईश्वरः = पृथ्वीश्वरः।

(ग) उ + उ = ऊ—विधु + उदयः = विधूदयः, सु + उक्तम् = सूक्तम्।
उ + ऊ = ऊ—लघु + ऊर्मिः + लघूर्मिः, साधु + ऊचुः = साधूचुः।
ऊ + उ = ऊ—वधू + उत्सवः = वधूत्सवः, वधू + उपरि = वधूपरि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊ + ऊ = ऊ — चमू + ऊर्जः = चमूर्जः, भू + ऊर्ध्वम् = भूर्ध्वम् ।

(घ) ऋ + ऋ = ॠ — पितृ + ऋणम् = पितॄणम्, होतृ = ऋकारः = होतॄकारः ।

ऋ + लृ = ॠ — होतृ + लृकारः = होतॄकारः ।

यदि ऋ या लृ के बाद ह्रस्व ऋ या लृ आवे तो दोनों के स्थान पर ह्रस्व ऋ या लृ भी स्वेच्छया कर सकते हैं, यथा—होतृ + ऋकारः = होतृकारः, होतृ + लृकारः, होतृकारः, होतृलृकारः ।

दीर्घसन्धि के अपवाद—

शकन्ध्वादिषु पररूप वाच्यम्—शकन्धु आदि शब्दों में जिस प्रकार उनकी सिद्धि हो, वैसा पररूप करना चाहिए । यथा—शक + अन्धुः = शकन्धुः, कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः ।

अचोऽन्त्यादि टि १।१।६४, तच्च टेः—शब्द के अन्त्य स्वर से लेकर आगे के वर्णों की टि संज्ञा होती है और इस टि संज्ञा का लोप होता है । यथा—मनस् + ईषा = मनीषा, हल + ईषा = हलीषा, लाङ्गल + ईषा = लाङ्गलीषा, कुल + अटा = कुलटा, पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलिः, सीमन् + अन्तः = सीमान्तः, सार + अङ्गः = सारङ्गः ।

आकृति गणोऽयम्—स्वरूप या कार्य दर्शन से जो पहचाना जाय, उसे आकृति-गण कहते हैं, इसमें दीर्घ सन्धि का कार्य नहीं होता । यथा—मार्त + अण्डः = मार्तण्डः, सम + अर्थः = समर्थः ।

२ **आद्गुणः**[1] ६।१।८७—अवर्ण से परे अच्—इ उ ऋ लृ वर्ण हों तो पूर्व पर के स्थान में एक गुणादेश होता है । यथा—

(क) अ + इ = ए—देव + इन्द्रः = देवेन्द्रः, उप + इन्द्रः = उपेन्द्रः ।

अ + ई = ए—पर + ईशः = परेशः, गण + ईशः = गणेशः ।

आ + इ = ए—यथा + इच्छसि = यथेच्छसि, महा + इन्द्रः = महेन्द्रः ।

आ + ई = ए—रमा + ईशः = + रमेशः, महा + ईश्वरः = महेश्वरः ।

(ख) अ + उ = ओ—जन्म + उत्सवः = जन्मोत्सवः, सूर्य + उदयः = सूर्योदयः ।

अ + ऊ = ओ—नव + ऊढा = नवोढा, एक + ऊनविंशति = एकोनविंशतिः ।

१—गुण सन्धि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ + उ = ओ—गंगा + उदकम्=गङ्गोदकम्, महा + उरस्कः=महोरस्कः ।
आ + ऊ=ओ – गङ्गा + ऊर्मिः=गङ्गोर्मिः, दया + ऊनः=दयोनः ।
(ग) अ + ऋ = अर्—ब्रह्म + ऋषिः = ब्रह्मर्षिः, देव + ऋषिः = देवर्षिः ।
अ + ॠ = अर्—उप + ॠकारीयति = उपर्कारीयति ।
आ + ऋ = अर्—महा + ऋषिः = महर्षिः, ब्रह्मा + ऋषि = ब्रह्मर्षिः ।
आ + ॠ = अर्—देवता + ॠकारः = देवतर्कारः ।
(घ) अ + ऌ = अल्—तत्र + ऌकार=तवल्कारः ।
आ + ऌ = अल्—आ + ऌकारः = आल्कारः ।

गुणसन्धि के अपवाद—

१—अक्षादूहिन्यामुपसंख्यानम्—(वा०) अक्ष शब्द से परे ऊहिनी शब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में गुणादेश न होकर वृद्धि एकादेश होता है। यथा— अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी ।

२—स्वादीरेरिणोः—(वा०) स्वशब्द से परे ईर् का ईरिन् शब्द हो तो गुण न होकर वृद्धि होती है। यथा – स्व + ईरः = स्वैरः, स्व + ईरिणी = स्वैरिणी, स्व + ईरिन् = स्वैरी ।

३—प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु—(वा०) प्र उपसर्ग के बाद ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य हों तो गुण न होकर वृद्धि होती है। यथा—प्र + ऊहः = प्रौढः, प्र + ऊढः=प्रौढः, प्र + ऊढिः=प्रौढिः, प्र + एषः=प्रैषः, प्र + एष्यः=प्रैष्यः ।

४—ऋते च तृतीया समासे—वा०) अवर्ण से परे ऋत शब्द हो तो तृतीया समास में वृद्धि होती है। यथा—(सुखेन ऋतः) सुख + ऋतः = सुखार्तः । पर तृतीया समास से भिन्न समास में गुण होता है, यथा - परम + ऋतः = परमर्तः ।

५—प्रवत्सतरकम्बलवसनार्णवदशानामृणे—(वा०) प्र, वत्सर, कम्बल, वसन, ऋण और दश शब्दों से परे यदि ऋण शब्द होता हो तो पूर्व पर (अ + ऋ) के स्थान में वृद्धि—आर् आदेश होता है। प्र + ऋणम्= प्रार्णम्, वत्सतर + ऋणम् = वत्सतरार्णम्, कम्बल + ऋणम्=कम्बलार्णम्, वसन + ऋणम् = वसनार्णम्, ऋण + ऋणम्= ऋणार्णम्, दश + ऋणः = दशार्णव ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ - **उपसर्गादृति धातौ** ६।१।९१—यदि उपसर्ग के अ या आ से परे धातु की ऋ हो तो पूर्व रूप के स्थान में वृद्धि—आर् होता है। यथा—प्र + ऋच्छति=प्रार्च्छति, उप + ऋच्छति = उपार्च्छति, प्र + ऋणोति=प्रार्णोति, प्र + ऋच्छन्=प्रार्च्छन्, उप = ऋच्छन्=उपार्च्छन् ।

२ **वृद्धिरेचि**[1] ६।१।८८—अवर्ण से परे एच्—ए ऐ ओ औ हो तो पूर्व-पर के स्थान में वृद्धि एकादेश—ऐ, औ, होता है। यथा—

(क) अ + ए = ऐ—कृष्ण + एकत्वम्=कृष्णैकत्वम्, एक + एकम्=एकैकम् ।
अ + ऐ = ऐ—देव + ऐश्वर्यम्=देवैश्वर्यम्, मत + ऐक्यम्=मतैक्यम् ।
आ + ए = ऐ—सदा + एव=सदैव, यथा + एव=यथैव ।
आ + ऐ=ऐ—महा + ऐश्वर्यम्=महैश्वर्यम्, महा + ऐरवतः = महैरावतः ।

(ख) अ + ओ=औ—दिव + ओकसः = दिवौकसः, तिल + ओदनम्=तिलौदनम् ।
अ + औ = औ—कृष्ण + औत्कण्ठ्यम् = कृष्णौत्कण्ठ्यम्, तव + औदार्यम् = तवौदार्यम् ।
आ + ओ=औ—गङ्गा + ओघः=गङ्गौघः, महा + ओजः = महौजः ।
आ + औ=औ—विश्वपा + औ=विश्वपौ, महा + औदार्यम्=महौदार्यम् ।

एत्येधत्यूठ्सु ६।१।८९—अवर्ण से परे एजादि इण् धातु—एति, एध धातु—एधो तथा ऊठ परे रहे तो वृद्धि होती है। यथा—
उप + एति = उपैति, उप + एधते = उपैधते, प्रष्ठ + ऊहः = प्रष्ठौहः ।

वृद्धिसन्धि के अपवाद—

१ **ओत्वोष्ठयोः समासे वा** (वा०)—यदि ओतु (बिल्ली) और ओष्ठ के ओ से पूर्व समास में अ या आ हो तो विकल्प से ओ या औ होता है। यथा - स्थूल + ओतुः=स्थूलोतुः या स्थूलौतुः, बिम्ब + ओष्ठः=बिम्बोष्ठः या बिम्बौष्ठः ।

२ **एवे चानियोगे** (वा०)—अकार से परे एव हो और अनियोग अर्थ हो

१—वृद्धि सन्धि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो दोनों के स्थान में एकार होता है। यथा—अद्य + एव = अद्यैव, नियोग—अवधारण अर्थ में अद्यैव।

३ **एङि पररूपम्** ६।१।९४—अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु हो तो पूर्व-पर के स्थान में पररूप एकादेश—पूर्व वर्ण का लोप होता है। यथा—प्र + एजते=प्रेजते, उप + ओषति=उपोषति, प्र + एषयति=प्रेषयति।

४ **ओमाङोश्च** ६।१।९५—अवर्ण से परे ओम् अथवा आङ् हो तो पूर्व-पर के स्थान में पररूप एकादेश होता है। यथा—शिवाय + ओन्नमः=शिवायोन्नमः, शिव + एहि=शिवेहि।

४ **इको यणचि**[२] ६।१।७७—ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ, लृ के परे, इनसे कोई भिन्न स्वर हो तो इ के स्थान पर य्, उ के स्थान पर व्, ऋ के स्थान पर र् और लृ के स्थान पर ल् होता है। यथा—

इ + अ=य—दधि + अयनम् = दध्ययनम्, यदि + अपि = यद्यपि।

इ + आ = या—अभि + आगतः=अभ्यागतः, दधि + आनय=दध्यानय।

ई + अ=य—देवी + अर्थः = देव्यर्थः, देवी + अर्चा = देव्यर्चा।

ई + आ = या—मही + आलम्बनम् = मह्यालम्बनम्, देवी + आगच्छति = देव्यागच्छति।

इ + उ=यु—अति + उत्तमः=अत्युत्तमः, प्रति + उपकारः=प्रत्युपकारः।

इ + ऊ=यू—अति + ऊचुः=अत्यूचुः, प्रति + ऊहः=प्रत्यूहः।

ई + उ=यु—सुधी + उपास्यः=सुध्युपास्यः, सुधी + उपासनम्=सुध्युपासनम्।

ई + ऊ=यू—स्त्री + ऊढा=स्त्र्यूढा, सखी + ऊढः=सख्यूढः।

इ + ऋ=यृ—अभि + ऋकारः=अभ्यृकारः, अति + ऋणम् = अत्यृणम्।

ई + ऋ = यृ—कुमारी + ऋतुमती=कुमार्यृतुमती, देवी + ऋषभ=देव्यृषभः।

इ + लृ = य्—अति + लृकारः=अत्य्लृकारः।

इ + ए=ये—प्रति + एकार=प्रत्येकार।

ई + ए=ये—कृती + एधते=कृत्येधते, गौरी + एवम्=गौर्येवम्।

१—यह पररूप सन्धि में भी शामिल है। २—यण सन्धि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इ + ऐ = यै — अति + ऐश्वर्यम् = अत्यैश्वर्यम्, अति + ऐक्यम् = अत्यैक्यम् ।
ई + ऐ = यै — लक्ष्मी + ऐश्वर्यम् = लक्ष्म्यैश्वर्यम्, हस्ती + ऐरावतः = हस्त्यैरावतः ।

ई + ओ = यो — पचति + ओदनम् = पचत्योदनम्, दधि + ओदनम् = दध्योदनम् ।
ई + ओ = यो — सती + ओजः = सत्योजः, देवी + ओजः = देव्योजः ।
इ + औ = यौ — अरि + औदार्यम् = अर्यौदार्यम्, अति + औदास्यम् = अत्यौदास्यम् ।
ई + औ = यौ — प्रधी + औ = प्रध्यौ, सखी + औपम्यम् = सख्यौपम्यम् ।
उ + अ = व — अनु + अर्थम् = अन्वर्थम्, वस्तु + अत्र = वस्त्वत्र ।
ऊ + अ = व — वधू + अन्वेषणम् = वध्वन्वेषणम्, चमू + अवस्थानम् = चम्ववस्थानम् ।

उ + आ = वा — सु + आगतः = स्वागतः, लघु + आचारः = लघ्वाचारः ।
ऊ + आ = वा — वधू + आगमनम् = वध्वागमनम्, खलपू + आ = खलप्वा ।
उ + इ = वि — ऋतु + इक् = ऋत्विक्, लघु + इन्दुः = लघ्विन्दुः ।
ऊ + इ = वि — वधू + इच्छा = वध्विच्छा, तनू + इन्द्रः = तन्विन्द्रः ।
उ + ई = वी — अनु + ईक्षा = अन्वीक्षा, अधु + ईशः = अध्वीशः ।
ऊ + ई = वी — चमू + ईशः = चम्वीशः, वधू + ईक्षणम् = वध्वीक्षणम् ।
ऊ + ऋ = वृ — वसू + ऋणम् = वस्वृणम्, बधू + ऋणम् = बध्वृणम् ।
ऊ + ऋ = वृ — वधू + ऋतुः = वध्वृतुः ।
उ + लृ = व् — मधु + लृतः = मध्वृलृतः ।

उ + ए = वे — अनु + एजनम् = अन्वेजनम्, अनु + एषणम् = अन्वेषणम् ।
ऊ + ए = वे — वधू + एकत्वम् = वध्वेकत्वम्, वधू + एका = वध्वेका ।
उ + ऐ = वै — वस्तु + ऐक्यम् = वस्त्वैक्यम्, साधु + ऐक्यम् = साध्वैक्यम् ।
ऊ + ऐ = वै — वधू + ऐश्वर्यम् = वध्वैश्वर्यम्, तनू + ऐश्वर्यम् = तन्वैश्वर्यम् ।
उ + ओ = वो — तनु + ओकः = तन्वोकः, साधु + ओकः = साध्वोकः ।
ऊ + ओ = वो — चमू + ओघः = चम्वोघः, हन्भू + ओषधिः = हनम्वोषधिः ।
उ + औ = वौ — अनु + औषधम् = अन्वौषधम्, लघु + औदार्यम् = लघ्वौदार्यम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊ + औ = वौ — पुनर्भू + औरसः = पुनर्भ्वौरसः, करभू + औडलोमिः = कारभ्वोडलौमिः ।

ऋ + अ = र — पितृ + अनुमति = पित्रनुमति , पितृ + अर्थम् = पित्रर्थम् ।

ऋ + आ = रा — मातृ + आज्ञा = मात्राज्ञा, मातृ + आकृतिः = मात्राकृतिः ।

ऋ + इ = रि — स्वसृ + इङ्गितम् , = स्वस्रिङ्गितम् , मातृ + इच्छा = मात्रिच्छा ।

ऋ + ई = री — दुहितृ + ईहा = दुहित्रीहा, पितृ + ईहितम् = पित्रीहितम् ।

ऋ + उ = रु - भर्तृ + उपदेशः = भर्त्रुपदेशः, पितृ + उदकम् = पित्रुदकम् ।

ऋ + ऊ = रू — भर्तृ + ऊढा = भर्त्रूढा, भ्रातृ + ऊनः = भ्रात्रून. ।

ऋ + ए = रे — धातृ + एकत्वम् = धात्रेकत्वम् , धातृ + एवम् = धात्रेवम् ।

ऋ + ऐ = रै — भ्रातृ + ऐश्वर्यम् = भ्रात्रैश्वर्यम् , मातृ + ऐश्वर्यम् = मात्रैश्वर्यम् ।

ऋ + ओ = रो — यातृ + ओकः = यात्रोकः, जामातृ + ओकः = जामात्रोकः ।

ऋ + औ = रौ = पितृ + औदार्यम् = पित्रौदार्यम् , मातृ + औजसः = मात्रौजसः ।

लृ + अ = ल — लृ ÷ अर्थम् = लर्थम् ।

लृ + आ = ला — लृ + आकृतिः = लाकृतिः ।

इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ६।१।१२७

पदान्त का इक्—इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, लृ लॄ असवर्ण स्वर के परे विकल्प से ह्रस्व होता है । यथा—चक्री + अत्र = चक्रिअत्र, चक्रयत्र ।

न समासे (वा०) समास में ह्रस्व नहीं होता है । यथा—वापी + अश्वः = वाप्यश्वः ।

मय उञो वो वा ८।३।३३—मय के परे उ के स्थान पर विकल्प से व् आदेश होता है । यथा किमु + उत्तमः = किम्वुत्तम् , किमु उत्तम् ।

ऋत्यकः ६।१।१२८—ऋकार के परे स्वर हो तो विकल्प से प्रकृति-भाव होता है । यथा ब्रह्म + ऋषि = ब्रह्मऋषिः—ब्रह्मर्षिः ।

समासेऽप्ययं प्रकृतिभावः (वा०) समास में भी विकल्प से प्रकृतभाव होता है । यथा — सप्त + ऋषीणाम् - सप्त ऋषीणाम् , सप्तर्षीणाम् ।

५ **एचोऽयवायावः**[१] ६.१।७८—एच प्रत्याहार—ए ऐ ओ औ के बाद

१—अयादि चतुष्टय सन्धि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अच् प्रत्याहार—स्वर वर्ण हो तो एच् के स्थान पर क्रमशः अय्, आय्, अव् और आव् हो जाते हैं। यथा—

ए + अ = अय—चे + अनम् = चयनम्, ने + अनम् = नयनम्।
ऐ + अ = आय—नै + अकः = नायकः।
ओ + अ = अव—यो + अनम् = यवनम्।
औ + अ = आव—पौ + अकः = पावकः।
ए + आ = अया—रमे + आ = रमया।
ऐ + आ = आया—रै + आम् = रायाम्।
ओ + आ = अवा—गो + आम् = गवाम्।
औ + आ = आवा—ग्लौ + आ = ग्लावा।
ए + इ = अयि—शे + इतः = शयितः।
ऐ + इ = आयि—वै + इति = वायिति।
ओ + इ = अवि—पो + इत्रः = पवित्रः।
औ + इ = आवि—अभौ + इ = अभावि।
ए + उ = अयु—मृगे + उ = मृगयुः।
ऐ + उ = आयु—अस्मै + उद्धर = अस्मायुद्धर।
ओ + उ = अवु—अजुहो + उः = अजुहवुः।
औ + उ = आवु—द्वौ + उपमितौ = द्वावुपमितौ।
ए + ए = अये—कपे + ए = कपये।
ऐ + ए = आये—रै + ए = राये।
ओ + ए = अवे—धेनो + ए = धेनवे।
औ + ए = आवे—नौ + ए = नावे।
ए + ऐ = अयै—शे + ऐ = शयै।
ऐ + ऐ = आयै—कस्मै + ऐश्वर्यम् = कस्मायैश्वर्यम्।
ओ + ऐ = अवै—पटो + ऐः = पटवैः।
औ + ऐ = आवै—द्वौ + ऐतिहासिकौ = द्वावैतिहासिकौ।
ए + ओ = अयो—विश्वे + ओः = विश्वयोः।
ऐ + ओ = आयो—रै + ओः = रायोः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओ + ओ=अवो—गो + ओः=गवोः ।

औ + ओ=आवो—नौ + ओ=नावोः ।

ए + औ=अयौ—शे + औ=शयौ ।

ऐ + औ=आयौ—सखै + औ=सखायौ ।

ओ + औ=अवौ—गो + औ=गवौ ।

औ + औ = आवौ—नौ + औ=नावौ ।

लोपः शाकल्यस्य ८।३।१९—पदान्त य् या व् के पूर्व यदि अ अथवा आ रहे और पश्चात् कोई स्वर आवे तो य् और व् का विकल्प से लोप होता है। यथा—

हरे + इह=हरयेहि या हर एहि, विष्णो + इह—विष्णइह—विष्णविह सखे + आगच्छ = सख आगच्छ या सखयागच्छ, तौ + ईश्वरौ = ता ईश्वरौ या तावीश्वरौ, रवौ + अस्तङ्गते=रवा अस्तङ्गते—रवावस्तङ्गते ।

वान्तो यि प्रत्यये ६।१।७९—ओ और औ के परे ऐसा प्रत्यय आवे, जिसके आदि में य हो तो क्रम से अव् और आव् आदेश होता है। यथा—

गो + यम्=गव्यम् नौ + यम्=नाव्यम् ।

अध्वपरिमाणे च (वा०)—मार्ग परिमाण का बोध हो तो ओ के स्थान पर अवादेश होता है। यथा—

गो + यूति=गव्यूतिः, अन्यत्र गोयूतिः—बैलों का एक जोड़ा ।

अवङ्स्फोटायनस्य ६।१।१२३—यदि गो के बाद अकारादि शब्द हों तो गो शब्द के अन्तर्वर्ती ओकार के स्थान पर विकल्प से अवादेश होता है। यथा—

गो + अग्रम=गवाग्रम्-गोऽग्रम् अथवा गो अग्रम्, गो + ईशः=गवेशः गो + अक्षः=गवाक्षः ।

इन्द्रे च ६।१।१२४—इन्द्र शब्द के परे रहते गो शब्दान्तर्गत ओ के स्थान पर अवादेश होता है। जैसे—

गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ **एङ पदान्तादति**[1] ६।१।१०९—पद के अन्त में स्थित एङ्—ए और ओ के परे ह्रस्व अकार हो तो अकार का पूर्वरूप होता है। यथा—

हरे + अव=हरेऽव - हरेव, मुने + अत्र = मुनेऽत्र—मुनेत्र, विष्णो + अव= विष्णोऽव, गुरो + अत्र=गुरोऽत्र, सखे + अर्पय=सखेऽर्पय।

७ जिस[2] प्रकार परवर्ण का पूर्ववर्ण में मिल जाना पूर्वरूप कहलाता है, उसी प्रकार पूर्ववर्ण का परवर्ण में मिल जाना पररूप कहलाता है। पररूप सन्धि का कोई विशेष नियम नहीं है, यह कहीं गुण, कहीं वृद्धि और कहीं सवर्ण दीर्घ के स्थान में भी होती है।

एङि पररूपम् ६।१।९४--अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु हो तो पूर्व-पर के स्थान में पर रूप एकादेश होता। यथा—

प्र + एजते = प्रेजते, उप + ओषति=उपोषति, इह + एव=इहेव, आ + ओम् = ओम्, अघ + ओढा=अघोढा, उप + ऐषते=उपेषते।

गुण सन्धि के स्थान में पररूप सन्धि। यथा—ददा + उः = ददुः, पपा + उः=पपुः।

सवर्ण दीर्घ सन्धि के स्थान में पररूप सन्धि। यथा—कुल + अटा = कुलटा।

८ **दूराद्धूते च** ८।२।८४—दूर से सम्बोधन में—नामोच्चारण कर पुकारने में प्रयुक्त वाक्य की टि को विकल्प से प्लुत भाव होता है। यथा - आगच्छ कृष्ण ऽ अत्र गौश्चरति, सक्तून्पिब देवदत्त ३, हे ३ राम।

प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम् ६।१।१२५—प्लुत स्वर और प्रगृह्य संज्ञक का प्रकृति भाव होता है अर्थात् सन्धि कार्य नहीं होता। यथा—एहि कृष्ण ३ अत्र।

ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् १।१।११—स्वर वर्ण परे रहने पर द्विवचन में निष्पन्न—ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त पद में सन्धि नहीं होती है। यथा—हरी + एतौ=हरी एतौ, कवी + आगच्छतः=कवी आगच्छतः, विष्णु +

१—पूर्वरूप सन्धि। २ – पररूप सन्धि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इमौ=विष्णु इमौ, गङ्गे+अमू=गङ्गे अमू, पचेते+इमौ=पचेते इमौ, +विद्ये इमे=विद्ये इमे, माले+इमे=माले इमे, मुनि+एतौ=मुनीएतौ।

अदसोमात् —१।१।११—स्वर वर्ण परे रहने से अदस् शब्द निष्पन्न अमी अमू पद की सन्धि नहीं होती है। यथा—

अमी+ईशाः=अमी ईशाः, रामकृष्णावमू+आसाते=रामकृष्णावमू आसाते, अमू+अत्तः=अमू अत्तः, अमी+अश्वाः=अमी अश्वाः, अमू+अर्भकौ=अमू अर्भकौ।

ओत् १।१।१५—स्वर वर्ण परे रहने से ओकारान्त निपात—अव्यय की सन्धि नहीं होती—प्रकृति भाव हो जाता है। यथा—

अहो+ईशाः=अहो ईशाः, अहो+आश्चर्यम्=अहो आश्चर्यम्।

निपात एकाजनाङ् १।१।१४—एक स्वर वाले निपात—अव्यय की सन्धि नहीं होती है। यथा—इ+इन्द्रः=इ इन्द्रः, उ+उमेश=उ उमेशः, अ+अच्युतः=अ अच्युतः, आ+एवं किलतत्=आ एवं किलतत्।

ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाऽभिविधा च यः
एतमातं ङितं विद्याद्वाक्यस्मरणयोरङित्॥

अर्थ—आङ्—आ अव्यय की ईषत्—अल्प अर्थ होने से, क्रिया के साथ योग होने से तथा मर्यादा और अभिविधि अर्थ होने से सन्धि हो जाती है। यथा—

ईषत् अर्थ में - आ+उष्णम्=ओष्णम्—थोड़ा गर्म।
क्रिया के योग में - आ+इहि=ऐहि—आओ।
मर्यादा—सीमा अर्थ में—आ+अम्बुधेः=अम्बुधेः—समुद्र पर्यन्त।
अभिविधि—व्याप्ति अर्थ में—आ+एकदेशात्=ऐकदेशात्=एक देश व्याप्त कर।

सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे १।१।१६—अवैदिक इति शब्द के परे सम्बुद्धि निमित्त ओकार का विकल्प से प्रगृह्य भाव होता है। यथा—

विष्णो+इति=विष्णो इति—विष्ण इति—विष्णविति।

१—प्राकृति भाव सन्धि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुशीलनी

१ Join the following words—निम्नाङ्कितों में सन्धि कीजिये।
अत्र + आसीत्, त्रिपुर + अरिः, प्रति + ईक्षणम्, भानु + उदयः, पितृ + ऋणम्, देव + इन्द्रः, गण + ईशः, यथा + इति, सदा + एव, शुभ्र + ऋषिः, गङ्गा + उत्तरम्, जन + एकता, जल + ओघः, प्र + ऋच्छति, सा + एव, प्र + एजते, उप + एति, विश्व + ऊहः, उप + ऋच्छन्, अव + एहि, कृष्ण + ओढा, दधि + अत्र, वसु + इदम्, मधु + अत्र, मातृ + अर्थम्, चे + अनम्, चै + अकः, मुनि + ए, भौ + उकः, गो + यूतिः, गो + अश्वः, हरी + एतौ, हरे + अव, आ + एवम्, आ + इहि, आ + उष्णम्, आ + एवं नु मन्यते।

२ Disjoin the following words—निम्नाङ्कितों में सन्धि विच्छेद कीजिये।

गवाग्रम्, गवाक्षः, परोक्षः, अन्योन्यम्, रत्नाकरः, लक्ष्मीशः, महेन्द्रः, क्षितीशः, ऊरूद्भवः, तथेति, महोष्णम्, पञ्चैते, मैवम्, अपैति, विश्वौहः, प्रैषयति, परमार्त्तः, दुःखार्त्तः, अवेहि, शिवेहि, नद्यम्बु, तन्वङ्गी, स्वागतम्, वध्वाचारः, मायुः, रायौ, भावुकः, कोऽपि, अत्याचारः, स्थूलौतु, एकैकम्, माले इमे, सिन्धू इमौ, भयार्त्त, उपर्युक्तम्, भावितः, पवित्रः, धात्रेकत्वम्, दुहित्रीहा, चम्वोघः, वस्त्रृणम्, बध्विच्छा, सत्योजः, ऋत्विक्, प्रत्येकः कृत्येवते, खलप्वा, वध्वर्तुः, महोरस्कः, गवाः, नाऽथम्, पुरुषार्थः, ममात्मजः, वधूढा, पितॄणम्, महेशः, गुरोऽत्र, यजन्ति, सीमन्त, पचन्ति, ययुः, पपुः।

३ स्वर सन्धि किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं? सोदाहरण परिभाषा लिखिये।

४ अयादि चतुष्टय सन्धि को स्पष्ट कर यण् सन्धि का सोदाहरण स्वरूप लिखिये।

५ किन स्वरों की सन्धि में अन्तःस्थों का आदेश होता है और क्यों? सोदाहरण विवेचन कीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ प्रगृह्य किसे कहते हैं और यह किन-किन अवस्थाओं में होता है। उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

७ किन-किन स्थानों में सन्धि को नित्य माना गया है? पररूप और पूर्वरूप सन्धियों का क्या तात्पर्य है?

८ सन्धि और संयोग, सन्धि और समास एवं गुण और दीर्घ में क्या अन्तर है? वृद्धिसन्धि के पाँच उदाहरण लिखिये।

९ गुणसन्धि और वृद्धिसन्धि के अपवाद नियमों को लिखिये।

१० ईषदर्थे क्रियायोगे—इत्यादि कारिका की व्याख्या लिखिये।

व्यञ्जन-सन्धि

स्वर सन्धि के समान व्यञ्जन सन्धि के भेदों का वर्गीकरण करना सम्भव नहीं है। यतः व्यञ्जन वर्णों में परवर्ती स्वर और व्यञ्जनों के कारण अनेक प्रकार का विकार—परिवर्तन होता है। व्यञ्जन सन्धि के नियमों के निरूपण से ही उसके प्रमुख भेदों को अवगत किया जा सकेगा।

१ **स्तोः श्चुनाश्चुः** ८।४।४०—सकार या तवर्ग का कोई व्यञ्जन शकार चवर्ग के किसी व्यञ्जन के योग में आता है तो सकार और तवर्ग के स्थान में शकार और चवर्ग हो जाता है। यथा—

हरिस् + शेते=हरिश्शेते, रामस् + चिनोति = रामश्चिनोति, सत् + चित् = सच्चित्, शार्ङ्गिन् + जय=शार्ङ्गिञ्जय, उत् + छिन्नः=उच्छिन्नः, उत् + ज्वलः = उज्ज्वलः, तत् + छविः=तच्छविः, एतद् + जलम्=एतज्जलम्, तद् + झनकारः= तज्झनकारः, महान् + जय=महाञ्जय, गच्छन् + झटिति= गच्छञ्झटिति, याच् + ना=याच्ञा, यज् + नः=यज्ञः।

इस नियम का अपवाद—

२ **शात्** ८।४।४४—जब दन्त्य स्थानीय व्यञ्जन श् के बाद आते हैं तो उनके स्थान में चवर्ग के वर्ण नहीं होते। यथा—

विश् + नः=विश्नः, प्रश् + न=प्रश्नः।

३ **ष्टुना ष्टुः** ८।४।४१—जब स् अथवा टवर्ग के व्यञ्जन या ष् टवर्ग के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी व्यञ्जन के योग में आते हैं तो स् के स्थान में ष् और तवर्ग के स्थान में टवर्ग हो जाता है। यथा—

रामस् + षष्ठः = रामष्षष्ठः, रामस् + टीकते = रामष्टीकते, तत् + टीका = तट्टीका, पेष् + ता = पेष्टा, चक्रिन् + ढौकसे = चक्रिण्ढौकसे, अधिष् + थाता, अधिष्ठाता, उत् + डीनः = उड्डीनः, एतद् + ढक्का = एतड्ढक्का, महान् + डामरः = महाण्डामरः, आकृष् + तः + आकृष्टः, षष् + थः = षष्ठः, प्रतिष् + था = प्रतिष्ठा।

४ **न पदान्ताट्टोरनाम्** ८।४।४२—पदान्त टवर्ग से परे नाम् प्रत्यय तथा नवति और नगरी शब्दों के नकार को छोड़ कर किसी भी तवर्ग वर्ण या सकार के स्थान में टवर्ग या षकार आदेश नहीं होता। यथा—

षट् + सन्तः = षट् सन्तः, षट् + ते = षट् ते।

५ **अनाम्नवति नगरीणामिति वाच्यम्** (वा०)—

नाम्, नवति और नगरी शब्द के नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है। यथा—षट् + नाम = षण्णाम्, षट् + नवतिः = षण्णवतिः, षट् + नगर्यः षण्णगर्यः।

'न पदान्ताट्टोरनाम्' सूत्र में 'पदान्त' इसलिए ग्रहण किया है कि ईड् + ते = ईट्टे में टवर्ग का निषेध न हो और टवर्ग से परे इसलिये कहा है कि निष् + ततम् = निष्टतम्, सर्पिष् + तमम् = सर्पिष्टमम् में भी ष्टुत्व हो जाय।

६ **तोः षि** ८।४।४३—यदि तवर्ग के किसी वर्ण के उपरान्त ष आवे तो उसके स्थान पर मूर्धन्य नहीं होता। यथा—सन् + षष्ठः = सन्षष्ठः।

७ **झलां जश् झशि** ८।४।५३—जब झल्—अन्तःस्थ और अनुनासिक व्यञ्जनों को छोड़कर अन्य किसी भी व्यञ्जन के पश्चात् झश्—किसी वर्ग का तृतीय या चतुर्थ वर्ण आवे तो पूर्ववर्ती व्यञ्जन अपने वर्ग के तृतीय वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। यथा—एतत् + दुष्टम् = एतद्दुष्टम्।

८ **झलां जशोऽन्ते** ८।२।३९—पदान्त में स्थित झल् प्रत्याहार—स्वर वर्ण, वर्ग के चतुर्थ या तृतीय वर्ण या य् र् ल् व् परे रहने से जश् प्रत्याहार—वर्ग का तृतीय अक्षर होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाक् + ईशः = वागीशः, चित् + रूपम् - चिद्रूपम्, दिक् + अन्तः = दिगन्तः, वाक् + जालम् = वाग्जालम्, दिक् + हस्ती = दिग्हस्ती, अच् + अन्तः = अजन्तः, जगत् + आदिः = जगदादिः, अप् + जम् = अब्जम्, तत् + धनम् = तद्धनम्, अप् + भाण्डः = अब्भाण्डः, षट् + विद्वांसः = षड्विद्वांसः, वाक् + दण्डः = वाग्दण्डः, उदक् + अयनम् = उदगयनम्, अत् + अन्तः = अदन्तः ।

९ **झयोहोऽन्यतरस्याम्** ८।४।६२—यदि किसी भी वर्ग के पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे वर्ण से परे हकार हो तो उस वर्ण के स्थान में उसी वर्ग का तृतीय वर्ण और ह के स्थान में उसी वर्ग का चतुर्थ वर्ण विकल्प से होता है । यथा—

वाक् + हसति = वाग्घसति, अच् + हलः = अज्झलः, वाक् + हरिः = वग्घरिः, तत् + हितम् = तद्धितम्, विपत् + हेतुः = विपद्धेतुः, अच् + ह्रस्वः = अज्झ्रस्वः, अप् + हरणम् = अब्भरणम्, उत् + हरणम् = उद्धरणम्, तत् + हेयम् तद्धेयम् ।

१० **उदःस्थास्तम्भोः पूर्वस्य** ८।४।६१—उत् उपसर्ग से परे स्था और स्तम्भ धातु के स् का लोप होता है । यथा—

उत् + स्थानम् = उत्थानम्, उत् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम् ।

११ **खरि च** ८।४।५५—अनुनासिक और अन्तःस्थ वर्णों को छोड़ अन्य किसी भी व्यञ्जन के उपरान्त यदि खर - क् ख् च् छ् ट् ठ् त् थ् प् फ् में से कोई वर्ण आवे तो पूर्वोक्त व्यञ्जनों के स्थान में चर् – उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है । यथा—

भयाद् + करोति = भयात्करोति, वृक्षाद् + पतति = वृक्षात्पतति, दृशद् + पतति = दृशत्पतति, उद् + थापकः = उत्थापकः, दिग् + पालः = दिक्पालः, विराड् + पुरुषः = विराट् पुरुषः ।

१२ **तोर्लि** ८।४।६० ल परे रहने पर त् और द् के स्थान में ल् और न के स्थान में सानुनासिक ल् होता है । यथा—

तत् + लयः = तल्लयः, तद् + लीनः = तल्लीनः, विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३ **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** ८।४।४५ –पदान्त 'यर्' से परे अनुनासिक वर्ण हो तो 'यर्' के स्थान में विकल्प से अपने वर्ग का अनुनासिक हो जाता है। यथा—

एतद् + मुरारिः = एतन्मुरारिः, षट् + मासाः = षण्मासाः, दिक् + नागः = दिङ्नागः।

१४ **प्रत्यये भाषायां नित्यम्** (वा०)—प्रत्यय पर में रहने पर नित्य ही पञ्चम वर्ण होता है। यथा – तत् + मात्रम् = तन्मात्रम् (मात्रच् प्रत्ययान्त) चित् + मयम् = चिन्मयम् (मयट् प्रत्ययान्त)।

१५ **मोऽनुस्वारः** ८।४।२३—व्यञ्जन वर्ण पर हो तो पद के अन्त में स्थित म् के स्थान पर अनुस्वार होता है। यथा—हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे, गृहम् + गच्छति = गृहं गच्छति, ईश्वरम् + भजति = ईश्वरं भजति।

१६ **मो राजि समः क्वौ** ८।३।२५—क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु से परे सम् के मकार के स्थान में मकार ही आदेश होता है—अनुस्वार नहीं होता। यथा—सम् + राट् = सम्राट्।

१७ **हे मपरे वा** ८।३।२६—मकार परक हकार पर में हो तो मकार के स्थान में विकल्प से अनुस्वार होता है। यथा—

किम् + ह्मलयति = किं ह्मलयति या किम् ह्मलयति।

१८ **यवलपरे यवला वेति वक्तव्यम्** (वा०)—यकार, वकार और लकार परक हकार के पूर्व पदान्त मकार के स्थान में विकल्प से क्रमशः सानुनासिक य् व् ल् हो जाते हैं। यथा—

किम् + ह्यः = किँय्ह्यः या किं ह्यः, किम् + ह्वलयति = किवँ ह्वलयति या किं ह्वलयति, किम् + ह्लादयति = किँ ल् ह्लादयति या किं ह्लादयति।

१९ **नपरे नः** ८।३।२७—नकार परक हकार परे हो तो पदान्त मकार के स्थान में विकल्प से नकार होता है। यथा—किम् + ह्नुते = किन् ह्नुते, किं ह्नुते।

२० **नश्चापदान्तस्य झलि** ८।३।२४—अपदान्त म् न् के बाद यदि अनु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नासिक व्यञ्जन तथा अन्तस्थ और ह को छोड़ कर कोई भी व्यञ्जन आवे तो म् और न् के स्थान में अनुस्वार होता है। यथा—

आक्रम् + स्यते=आक्रंस्यते, रम् + स्यते=रँस्यते, यशान् + सि = यशांसि, दन् + शनम्=दंशनम्।

२१ **अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** ८।४।५८—पद के मध्य में स्थित अनुस्वार के बाद जिस वर्ग का वर्ण रहता है, अनुस्वार के स्थान में उसी वर्ग का पञ्चम वर्ण हो जाता है। यथा--

आशं + कते=आशङ्कते, पं + फुल्यते = पम्फुल्यते, अं + चितः=अञ्चितः अं + कितः=अङ्कितः, शां + तः = शान्तः, वां + छति=वाञ्छति।

२२ **वा पदान्तस्य** ८।४।५९—यदि अनुस्वार पद के अन्त में हो तो वर्ग का पञ्चम वर्ण विकल्प से होता है तथा पर में य् ल् व् हों तो क्रमशः अनुनासिक विशिष्ट य्, ल्, व् होते हैं। यथा--

त्वं + करोषि=त्वङ्करोषि–त्वं करोषि, पुस्तकं + पठति = पुस्तकम्पठति–पुस्तकं पठति, सं + यन्ता=सय्ँयन्ता–संयन्ता, यं + लोकम्=यल्ँलोकम्–यंलोकम्, वशं + वदः=वशवँवदः–वशंवदः, सम् + वत्सरः=सवँवत्सरः।

२३ **ङणो कुक् टुक् शरि** ८।३।२८—श्, ष्, स् परे रहने से ङ् या ण् के आगे क्रमशः कुक् या टुक् का आगम होता है।

२४ **चयोद्वितीयाः शरि पौष्करसादेरिति वाच्यम्** (वा०)—पौष्करसादि आचार्य के मत में चय् प्रत्याहार को वर्ग के द्वितीय अक्षर होते हैं। यथा—प्राङ् + षष्ठः = प्राङ् क् षष्ठः (क् + षः) = क्ष, प्राङ्क्षष्ठः, वर्ग का द्वितीय अक्षर करने पर प्राङ् ख् षष्ठः; सुगण् + षष्ठ = सुगण् ट् षष्ठः, वर्ग का द्वितीय अक्षर करने पर सुगण् ठ् षष्ठः और विकल्पाभाव में सुगण् ट् षष्ठः।

२५ **डः सि धुट्** ८।३।२९—डकार से परे सकार को विकल्प के धुट् का आगम होता है। षड् + सन्तः = षड् ध् सन्तः = षट्त्सन्तः।

२६ **नश्च** ८।३।३०—नकारान्त शब्दों से परे सकार को विकल्प से धुट् का आगम होता है। यथा— सन् + सः = सन् ध् सः = सन्त्सः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७ **शितुक्** ८।३।३१—पदान्त नकार को शकार के परे रहने से विकल्प से तुक् का आगम होता है।

२८ **शश्छोऽटि** ८।४।६३—झय् प्रत्याहार से परे शकार के स्थान में विकल्प से छकार होता है। यथा—

सन् + शम्भुः = सन् + त् + शम्भुः = सन् + च् + शम्भुः = सन् + च् + छम्भुः = सञ्च्छम्भुः — सञ्छम्भुः — सञ्च्शम्भुः — सञ्शम्भुः।

२९ **ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्** ८।३।३२—पदान्त ङ्, ण्, न् के पूर्व में ह्रस्व स्वर और परे कोई स्वर हो तो उक्त वर्णों को द्वित्व हो जाता है। यथा—प्रत्यङ् + आत्मा=प्रत्यङ्ङात्मा, सुगण् + ईशः=सुगण्णीशः, सन् + अच्युतः = सन्नच्युतः, धावन् + अश्वः = धावन्नश्वः, हसन् + आगतः = हसन्नागतः।

३० **समः सुटि** ८।३।५—सुट् (स्) परे होने से सम् के मकार के स्थान में रु (र्) होता है।

३१ **अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा** ८।३।२—इस 'रु' के प्रकरण में रु के पूर्व वर्ण को विकल्प से अनुनासिक होता है।

३२ **अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः** ८।३।४—अनुनासिक को छोड़ रु से पूर्व वर्ण के परे अनुस्वार का आगम होता है।

३३ **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** ८।३।१५—खर प्रत्याहार परे अवसान में पदान्त के रकार को विसर्ग होता है।

३४ **सम्पुंकानां सो वक्तव्यः** (वा)—सम्, पुम् और कान् इन तीनों शब्दों के म्, म् और न् के स्थान में रेफ हुआ हो और उस रेफ का विसर्ग किया गया हो तो विसर्ग के स्थान पर नित्य सकार होता है। यथा—

सम् + कर्त्ता = सँस्कर्त्ता — संस्कर्त्ता, सम् + कारः=सँस्कार — संस्कारः।

३५ **पुमः खय्यम्परे** ८।३।६—अम् परक खय् पर में होने पर पुम् के मकार के स्थान में रु (र्) होता है। यहाँ पर भी सन्धि कार्य में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कर्ता के समान ३१, ३२, ३३ और ३४ वें सूत्र के अनुसार कार्य होता है। यथा—

पुम् + कोकिलः = पुँस्कोकिलः — पुंस्कोकिलः; पुम् + खनित्रम् = पुँस्खनित्रम् — पुंस्खनित्रम्, पुम् + चरित्रम् = पुँश्चरित्रम् — पुंश्चरित्रम्, पुम् + टीका = पुँष्टीका — पुंष्टीका।

३६ **नश्छव्यप्रशान्** ८।३।७—पदान्त त् के स्थान में च्, छ् परे रहने से अनुस्वार और श्; ट्, ठ् परे रहने से अनुस्वार और ष् एवं त् थ् परे रहने से अनुस्वार और स् होते हैं। यथा—

पश्यन् + चकितः = पश्यँश्चकितः — पश्यंश्चकितः; चलन् + टिट्टिभिः = चलँष्टिट्टिभिः — चलंष्टिट्टिभिः, पतन् + तरुः = पतंस्तरुः — पतस्तरुः, महान् + छेदः = महाँश्छेदः — महाँश्छेदः, महान् + टीकाकारः = महाँष्टीकाकारः — महांष्टीकाकारः, चक्रिन् + त्रायस्व = चक्रिँस्त्रायस्व — चक्रिंस्त्रायस्व।

३७ **नॄन्पे** ८।३।१०—यदि नकार परे हो तो नॄन् के नकार को विकल्प से रु (र्) होता है।

३८ **कुप्वोः ᳲक ᳳपौ च** ८।३।३७—कवर्ग या पवर्ग परे हो तो विसर्ग के स्थान में विकल्प से अर्ध विसर्ग ᳲ होता है। सत्व होने पर 'नश्छव्यप्रशान्' सूत्र से अनुनासिक या अनुस्वार होने के पश्चात् रेफ का विसर्ग होता है और विसर्ग होने पर ३८ वें सूत्र की प्रवृत्ति होती है। यथा—

नॄन् + पाहि = नॄ ᳳ पाहि या नॄ ᳳ या नॄः पाहि या नॄः पाहि।

३९ **कानाम्रेडितम्** ८।३।१२—आम्रेडित—दो बार आये हुए कान् शब्द के नकार के स्थान में रु होता है। इस विधि में सन्धि सम्बन्धी अन्य कार्य ३२, ३३ और ३४ वें सूत्र के द्वारा सम्पन्न होते हैं। यथा—

कान् + कान् = काँस्कान् — कांस्कान्।

पदान्त न निम्न स्थितियों में अविकृत रहता है—

१ स्वरों से पूर्व, यथा—तान् + उवाच = तानुवाच।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२ कवर्ग और ह् से पूर्व; यथा--बुद्धिमान् + कथयति=बुद्धिमान् कथयति, तान् + हत्वा=तान् हत्वा ।

३ पवर्ग से पूर्व-यथा—एतान् पाशान् भिनत्ति ।

४ तवर्ग के तृतीय, चतुर्थ और पंचम वर्ण से पूर्व यथा-राजपुत्रान् नयति ।

५ अन्तःस्थों से पूर्व--हंसान् रक्ष ।

४० **छे च** ६।१।७३--ह्रस्व से परे छकार हो तो ह्रस्व स्वर को तुक् (त्) आगम होता है ।

४१ **आङ्माङोश्च** ६।१।७४--आङ् और माङ् से परे छकार हो तो तुक् (त्) का आगम होता है ।

४२ **दीर्घात्** ६।१।७५--दीर्घ से परे छकार हो तो तुक् (त्) का आगम होता है ।

४३ **पदान्ताद्वा** ६।१।७६—पदान्त दीर्घ स्वर से परे छकार हो तो विकल्प से तुक् (त्) का आगम होता है ।

उपर्युक्त सूत्रों से तुक् (त्) होने के उपरान्त त् को श्चुत्व होकर च होता है अर्थात् स्वर वर्ण के बाद 'छ्' रहने से छ के स्थान में 'च्छ' हो जाता है । यथा--

शिव + छाया = शिवच्छाया, आ + छादयति = आच्छादयति, मा + छिदत् = माच्छिदत्, सेनासुरा + छाया = सेनासुराच्छाया, लक्ष्मी + छाया=लक्ष्मीच्छाया--लक्ष्मीछाया ।

अनुशीलनी

१ Join the following words---निम्नांकितों में सन्धि कीजिये ।

कृष्णस् + शेते, सत् + चित्रम्, तपस् + चिनोति, तद् + छविः, विपद् + जालम्, तत् + टीका, एतद् + मुरारिः, धीमान् + जय, राज् + ना, देवस् + टीकते, तत् + टीका, मत् + टीका, इष् + तः, षष् + थः, दिक् + अम्बरः, षट् + दर्शनम्, क्षुध् + म्याम्, अप् + जम्, अच् + हलौ, दिक् + हस्ती, वाक् + हरिः, उद् + स्थानम्, मेद् + तुम्, अप् + नायकः, देवम् + भजति,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पयान् + सि, जिघान् + सति, रामस् + षष्ठः, तत् + ठक्कुरः, चक्रिन् + ढौकसे, महान् + डमरुः, अग्निचित् + ठकारः, तत् + भवनम्, तादृक् + इति, तत् + भूतिः, जलमुक् + आघातः, विपद् + हानिः, पश्यन् + चलति, दोह् + धा, बोध् + धा, धीमान् + ठक्करः, महान् + चयः, सुगुण् + इति, पश्यन् + उवाच, हसन् + आगतः, हसन् + अवदत्, सम् + कर्ता, किम् + ह्यः, पुम् + कोकिलः, पुम् + छविः, प्रत्यङ् + आस्ते, मनाक् + शूराः, जगत् + शान्तिः, अच् + शेषद्, तरु + छाया, मा + छिदत्, विद्युत् + लेलायते, भवान् + लक्षयति, भवान् + सनोति ।

२ Disgoin the following words निम्नाङ्कितों में सन्धि विच्छेद कीजिये।

देवश्चिनोति, महच्चक्रम्, शरच्छटा, जगज्जीवनम्, राज्ञी, यज्ञः, देवष्षष्ठः, वृक्षष्टीकते, उड्डुयनम्, हृष्टः, पुष्टः, रामष्टीका, आकृष्टः, षडाननः, जगदीशः, अब्जम्, वाग्दानम्, अब्भाजनम्, तद्विभूतिः, तद्धितम्, वाग्घरिः, तद्भवनम्, सुगण्णास्ते, धावन्नपतत्, एकस्मिन्नहनि, उत्तम्भते, एतन्नयः, जगन्निस्सारः, कुण्ठितः, वन्तव्यम्, ग्रामं शास्ति, तं हन्ति, शम्भुः, शिशूच्छादयति, संस्करोति, महाँश्छेदः, देवयं भजति, भास्वाँश्चन्द्रः, पुँश्चमत्कारः, पुँस्कोकिलः, पुंष्टिटिभि, हसन्नागतः, यावच्छक्यम्, मच्छरीरम्, वृक्षच्छाया, स्वच्छात्रः, अग्निचिल्लुनाति, विद्युल्लेलायते, वण्टनम्, कण्टनम्, अञ्चनम्, अन्तितः, चण्डः, चम्पनम्, इच्छति, स्वच्छन्दः, ह्रीच्छति, आच्छादनम्, आच्छाया, विश्नः, षण्णवतिः, इट्टे, सपिष्टमम्, चिन्मयम्, लब्धः, लिप्सा, पयस्पाशम्, यशस्कल्पम्, क ᳲ खनति, सुतश्शिशुः, क ᳲ फलति ।

३ ष्टुत्व, और श्चुत्व का क्या तात्पर्य है ? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण लिखिये ।

४ तुक्, टुक् और कुक् का आगम किन-किन स्थितियों में होता है ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिये ।

५ नकार और मकार के स्थान पर सकार कब और कहाँ होता है, सोदाहरण लिखिये ।

६ पदान्त न् के स्थान पर विधीयमान सानुस्वार श् ष् और स् की स्थिति को उदाहरणपूर्वक समझाइये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७ वर्ग के प्रथम वर्ण के स्थान पर तृतीय वर्ण किन-किन स्थितियों में होता है, सोदाहरण समझाइये।

८ स्था धातु के स् का लोप किस स्थिति में होता है? उदाहरण सहित प्रतिपादन कीजिये।

९ व्यञ्जन सन्धि में तवर्गीय अनुनासिक अन्त्य न् किन-किन अवस्थाओं में अविकृत रहता है, सोदाहरण लिखिये।

१० पदान्त दन्त्य न् का अन्य वर्णों से पूर्व क्या-क्या विकार होता है, सोदाहरण लिखिये।

११ पदान्त म् किन-स्थितियों में अविकृत रहता है? पदान्त म् के अनुस्वार होने का क्या नियम है? सोदाहरण लिखिये।

१२ यदि र् से आगे र् हो तो र् और पूर्ववर्ती स्वर की क्या स्थिति रहती है, सोदाहरण लिखिये।

विसर्ग-सन्धि

विसर्ग दो प्रकार के होते हैं—सजात और रजात।

(१) शब्द, (२) विभक्ति और (३) प्रत्यय सम्बन्धी सकार के स्थान में र् होकर जो विसर्ग होता है, उसे सजात विसर्ग कहते हैं। यथा—

(१) निस्=निः, दुस्=दुः, उच्चैस्=उच्चैः, पयस्=पयः।

(२) रामस्=रामः, देवस्=देवः, देवैस्=देवैः, कृष्णास्=कृष्णाः।

(३) एकादशस्=एकादशः, बहुशस्=बहुशः।

(१) स्वाभाविक और ऋकारस्थानिक 'र्' के स्थान में जो विसर्ग होता है, उसे रजात विसर्ग कहते हैं। यथा—

(१) स्वर्=स्वः, अन्तर्=अन्तः, प्रातर्=प्रातः, पुनर्=पुनः, निर्=निः, पुर्=पुः, दुर्=दुः।

(२) गीर्=गीः, पूर्=पूः, मातर्=मातः, पितर्=पितः, भ्रातर्=भ्रातः, दुहितर्=दुहितः। कहीं-कहीं न् के स्थान में भी विसर्ग होता है। यथा—अहन्=अहः।

विसर्ग सन्धि में विसर्ग का विकार—परिवर्तन निम्न छः प्रकार का होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) विसर्ग के स्थान पर श्, ष् और स् होता है। यथा—पूर्णः + चन्द्रः= पूर्णश्चन्द्रः, भीतः + टलति = भीतष्टलति, विष्णुः + त्राता=विष्णुस्त्राता।

(२) विसर्ग के स्थान पर रेफ होता है। यथा—निः + धनः=निर्धनः।

(३) विसर्ग के स्थान पर उकार होता है, जो अकार के साथ मिलकर ओकार हो जाता है। यथा—नूतनः + घटः=नूतन उ घटः=नूतनोघटः।

(४) विसर्ग के स्थान पर जिह्वामूलीय और उपध्मानीय होता है। यथा—कः + करोति=क ॅकरोति, कः + पचति=क ॅपचति।

(५) विसर्ग के स्थान पर य् होता है; और विकल्प से इस य् का लोप होता है। यथा—देवाः + इह=देवा य् इह + देवायिह=देवा इह।

(६) विसर्ग का लोप होता है, यथा—नरः + इव=नर इव।

विसर्ग सन्धि के नियम—

१ **विसर्जनीयस्य सः** ८।३।३४—विसर्ग के स्थान में च् छ् परे रहने से श्, ट् ठ् परे रहने से ष् और त् थ् परे रहने से स् होता है। यथा— पूर्णः + चन्द्रः=पूर्णश्चन्द्रः,, तरोः + छाया = तरोश्छाया, भीतः + टलति =भीतष्टलति, रामः + टीकते=रामष्टीकते, निम्बः + तरुः=निम्बस्तरुः, विष्णुः + त्राता=विष्णुस्त्राता।

२ **वा शरि** ८।३।३६—यदि विसर्ग के बाद श्, ष् और स् आवे तो विसर्ग के स्थान में विकल्प से श्, ष् और स् होता है। यथा—

सुप्तः + शिशुः=सुप्तश्शिशुः—सुप्तः शिशुः, हरिः + शेते = हरिश्शेते—हरिः शेते, मत्तः + षट्पदः=मत्तष्षट्पदः—मत्तः षट्पदः, प्रथमः + सर्गः=प्रथमस्सर्गः—प्रथमः सर्गः।

३ **कुप्वोः ॅक ॅपौ च** ८।३।३७—यदि विसर्ग के बाद क ख प फ में से कोई वर्ण आवे तो विसर्ग के स्थान में या तो विसर्ग ही बना रहता है अथवा क ख के आगे रहने पर जिह्वामूलीय (ॅ) तथा प फ के आगे रहने पर उपध्मानीय (ॅ) हो जाता है। यथा—

कः + करोति=क ॅकरोति या कः करोति, कः + खनति=क ॅखनति या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कः खनति, कः + पचति=क ᳵ पचति या कः पचति, कः + फलति=क ᳵ फलति, अथवा कः फलति।

४ **सोऽपदादौ** ८।३।३८—अपदादि में क ख प फ के परे रहने पर विसर्ग का दन्त्य स् होता है।

५ पाशकल्पकाम्येष्विति वाच्यम् (वा०)—पाश, कल्प और काम्य शब्द परे रहने पर ही विसर्ग को स् होता है। यथा—

पयः + पाशम्=पयस्पाशम्, यशः + कल्पम्=यशस्कल्पम्, यशः + कम्=यशस्कम्, यशः+काम्यति=यशस्काम्यति।

६ अनव्ययस्येति वाच्यम् (वा०)—अव्यय सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में 'स्' नहीं होता। यथा—प्रातः+कल्पम्=प्रातःकल्पम्।

७ काम्ये रोरेवेति वाच्यम् (वा०)—काम्य प्रत्यय के परे रजात विसर्ग के स्थान में 'स्' नहीं होता। यथा—गीः+काम्यते=गीः काम्यते।

८ इणः षः ८।३।३९—पाशादि प्रत्यय के परे इण् से पर में स्थित विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य 'ष्' होता है। यथा—सर्पिः + पाशम्=सर्पिष्पाशम्, सर्पिः+कल्पम्=सर्पिष्कल्पम्।

९ **इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य** ८।३।४१—क् ख् प् फ् के परे इकार और उकार उपधा—अप्रत्यय सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य ष् होता है। यथा—

निः + कृतम्=निष्कृतम्, दुः + कृतम्=दुष्कृतम्, बहिः + कृतम्=बहिष्कृतम्, निः+फलः=निष्फलः।

१० **इसुसोः सामर्थ्ये** ८।३।४४—क् ख् प् फ् के परे इस् और उस् भागान्त शब्द के स्थान में विकल्प से मूर्धन्य ष होता है। यथा—

सर्पिः + करोति=सर्पिष्करोति या सर्पिः करोति, धनुः + करोति=धनुष्करोति अथवा धनुः करोति।

११ **नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य च** ८।३।४५—समास में क ख अथवा प फ के परे अनुत्तरपदस्थ इस् और उस् भागान्त शब्द के विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य ष् होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्पिः + कुण्डिका=सर्पिष्कुण्डिका, हविः + कुण्डम्=हविष्कुण्डम्, धनु + खण्डम्=धनुष्खण्डम्, धनुः + काण्डम्=धनुष्काण्डम्, धनुः + पाणिः= धनुष्पाणिः, धनुः + कपालम्=धनुष्कपालम्।

१२ **द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोर्थे** ८।३।४३—पौनः पुन्य वाचक द्विः, त्रिः और चतुः क्रियाविशेषण अव्ययों के बाद क् ख प् फ् आवें तो विसर्ग के स्थान में विकल्प से मूर्धन्य ष् होता है। यथा—

द्विः + करोति=द्विष्करोति या द्विः करोति, त्रिः + खादति + त्रिष्खादति या त्रिः खादति, चतुः+पठति=चतुष्पठति या चतुः पठति।

१३ **अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य** ८।३।४६—समास में कृ और कम् धातु निष्पन्न पद—कार, कर, काम, कान्त तथा कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा तथा कर्णी शब्द पर में रहने से अकार से पर अव्यय सम्बन्ध भिन्न विसर्ग के स्थान में दन्त्य 'स्' होता है। यथा—

अयः + कारः=अयस्कारः, श्रेयः + कारः=श्रेयस्कारः, अयः + कामः = अयस्कामः, अयः + कान्तः=अयस्कान्तः, अयः + कंसः=अयस्कंसः, पयः+कुम्भः =पयस्कुम्भः, पयः + पात्रम्=पयस्पात्रम्, अयः+कुशाः=अयस्कुशाः, अयः + कर्णी=अयस्कर्णी।

१४ **नमस्पुरसोर्गत्योः** ८।३।४०—क ख प फ के परे गति संज्ञक नमस् और पुरस् शब्द सम्बन्धी विसर्ग के स्थान में दन्त्य 'स्' होता है। यथा—

नमः+करोति=नमस्करोति, नमः + कार =नमस्कारः, पुरः + कारः=पुरस्कारः, पुरः + करोति=पुरस्करोति।

१५ **तिरसोऽन्यतरस्याम्** ८।३।४२—क ख प फ के परे तिरस् शब्द सम्बन्धी विसर्ग के स्थान पर विकल्प से 'स्' होता है। यथा—

तिरः + करोति=तिरस्करोति या तिरःकरोति।

१६ **अधः शिरसी पदे** ८।३।४७—पद के परे रहने से अध और शिर शब्द के विसर्ग के स्थान में दन्त्य स् होता है। यथा—

अधः + पदम्=अधस्पदम्, शिरः+पदम्=शिरस्पदम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७ **ससजुषोरुः** ८।२।६६--पदान्त सकार तथा सजुष शब्द के षकार के स्थान पर रु (र्) होता है। अभिप्राय यह है कि विसर्ग के पहले अ आ को छोड़ कर दूसरा कोई स्वर हो और विसर्ग से परे स्वर वर्ण, वर्ग का तृतीय चतुर्थ या पञ्चम वर्ण अथवा य् र् ल् व् ह् हों तो विसर्ग के स्थान में र् होता है। यथा--

कविः + अयम्=कविरयम्, रविः + उदेति=रविरुदेति, निः + धनः=निर्धनः, वायुः + वाति=वायुर्वाति, शिशुः + हसति=शिशुर्हसति, निः+झरः=निर्झरः, निः + गुणः=निर्गुणः, निः + यातः=निर्यातः, निः + वचनम् = निर्वचनम्, निः+अर्थः=निरर्थः।

१८ **अतोरोरप्लुतादप्लुते** ६।१।११३--अप्लुत अत् के परे रु (र्) के स्थान में उकार होता है। अभिप्राय यह है कि विसर्ग के पहले अ और विसर्ग के बाद अ हो तो विसर्ग के स्थान में ओकार होता है। यथा--

शिवः+अर्च्यः=शिव रु+अर्च्यः=शिवर्+अर्च्यः=शिव उ अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः, यशः+अभिलाषी=यशोऽभिलाषी, नरः+अयम्=नरोऽयम्, वेदः+अधीतः=वेदोऽधीत, देवः+अयम्=देवोऽयम्।

१९ **हशि च** ६।१।११४--हश्--वर्ग का तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण, य र ल व और ह के परे रहने पर अप्लुत--अकार से पर रु सम्बन्धी र् के स्थान पर उ होता है। तात्पर्य यह है कि यदि विसर्ग के पहले अ और विसर्ग के बाद में वर्ग का तृतीय, चतुर्थ या पञ्चम वर्ण अथवा य् र् ल् व् ह् हों तो अ और विसर्ग के स्थान में ओ हो जाता है। यथा--

शोभनः + गन्धः = शोभनो गन्धः, नूतनः + घटः=नूतनो घटः, देवः + गच्छति=देवो गच्छति, कृष्णः + जयति=कृष्णो जयति, मधुरः + झङ्कारः=मधुरो झङ्कारः, सुन्दरः + डमरुः=सुन्दरो डमरुः, कसन्तेभ्यः + णः=कसन्तेभ्योणः, निर्वाणः + दीपः=निर्वाणो दीपः, मृगः + धावति=मृगो धावति, मनः + भावः=मनो भावः, नरः + याति=नरो याति, मनः + रथः=मनोरथः, यशः + लभते=यशोलभते, बालः + हसति=बालो हसति, शीतः + वायुः =शीतो वायुः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२० **भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि** ८।३।१७--यदि स् या विसर्ग के स्थान में आदिष्ट रु के पूर्व भो, भगो, अघो और अ हो तो उसके अनन्तर अश् प्रत्याहार--कोई स्वर या मृदु व्यञ्जन हो तो रु के स्थान में यकार आदेश होता है।

२१ **हलि सर्वेषाम्** ८।३।२२--हल् प्रत्याहार के परे भो, भगो, अघो और अ हो तो यकार का लोप होता है। निष्कर्ष यह है कि भोः, भगोः और अघोः के विसर्ग से पहले अ और विसर्ग के बाद अ को छोड़ अन्य स्वर हो तो विसर्ग का लोप होता है। यथा--

भोः + देवाः=भोर् + देवाः=भो य् देवाः=भो देवाः, भगोः + नमस्ते=भगो नमस्ते, अघोः + याहि=अघो याहि, कुतः + आगतः=कुत आगतः, नरः + इव=नर इव, देवः + इह=देव इह, ब्राह्मणः + आगतः=ब्राह्मण आगतः, रामः + एति=राम एति। पक्षान्तर में देवयिह, ब्राह्मणयागत, रामयेति, नरयेव।

२२ **विसर्ग के पहले आ और विसर्ग से परे स्वर वर्ण; वर्ग का तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण अथवा य् र् ल् व् ह् हो तो विसर्ग का लोप होता है।** यथा--

अश्वाः + अमी=अश्वा अमी, हताः + गजाः=हता गजाः, अश्वाः + धावन्ति=अश्वा + धावन्ति, उन्नताः + नगाः=उन्नता नगाः, नराः + लभन्ते=नरा लभन्ते, वाताः + वान्ति=वाता वान्ति, बालकाः + हसन्ति=बालका हसन्ति। स्वर वर्ण परे रहने से पक्षान्तर में विसर्ग के स्थान पर य् होता है; यथा-- गजाः + इमे=गजायिमे।

अपवादः--

पुनः, प्रातः, अन्तः, दुः, निः, प्रभृति शब्दों से तथा ऋकारान्त शब्दों के सम्बोधन एकवचन के रजात विसर्ग का न तो लोप होता है और न पूर्वस्थित अ के साथ मिलकर ओ होता है; किन्तु 'जलतुम्बिकान्यायेन' रेफ का ऊर्ध्व गमन हो जाता है। यथा--

प्रातः + गमनम्=प्रातर्गमनम्, पुनः + घर्मः=पुनर्घर्मः, निः + जलम्=निर्ज-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लम्, दुः + झनत्कारः=दुर्झनत्कारः, पुनः + अपि=पुनरपि, प्रातः + एव=प्रातरेव, स्वः+गतः=स्वर्गतः, दुः+गमनम्=दुर्गमनम् ।

२३ **रोऽसुपि** ८।२।६९—यदि अहन् शब्द से परे विभक्तियों को छोड़कर कोई स्वर या मृदु व्यञ्जन आवे तो नकार के स्थान में रेफादेश होता है। यथा—अहन्+अहः=अहरहः, अहन्+गणः=अहर्गणः ।

२४ **रोरि** ८।३।१४—रेफ के परे रेफ का लोप होता है।

२५ **ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** ६।३।१११—र् के बाद र् आवे और ढ् के बाद ढ् आवे तो र् और ढ् का लोप हो जाता है और पूर्व में आये हुए अ, इ, उ यदि ह्रस्व हों तो वे दीर्घ हो जाते हैं। यथा—

पुनः + रमते = पुनर् रमते=पुना रमते, हरिः + रम्यः = हरिर् रम्यः = हरीरम्यः, शम्भुः + राजते = शम्भू राजते, अन्तः + राष्ट्रीयः = अन्ता राष्ट्रीय, हरिः + रचति=हरी रचति, गुरुः + रुष्टः=गुरू रुष्टः, निः + रसः = नीरसः, निः + रोगः=नीरोगः, विधुः + राजते=विधू राजते ।

२६ **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** ६।१।१३२—नञ् समास को छोड़ कर हल् प्रत्याहार के परे ककार रहित एतद् और तद् शब्द सम्बन्धी विसर्ग का लोप होता है। अभिप्राय यह है कि अ को छोड़ अन्य किसी वर्ण के परे रहने से सः और एषः के विसर्ग का लोप होता है और लोप होने पर फिर सन्धि नहीं होती। यथा—

सः + आगतः = स आगतः, सः + गच्छति = स गच्छति, एषः + आयाति=एष आयाति, एषः + बालकः = एष बालकः ।

२७ **अकोः किम्। अनञ् समासे किम्।** क प्रत्यय तथा नञ् समास होने पर सः और एषः के विसर्ग का लोप नहीं होता। यथा—

न सः—असः शिवः, एषकः + रुद्रः=एषको रुद्रः ।

२८ **सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम्** ६।१।१३४—लोप होने से ही यदि पद्य के पाद की पूर्त्ति होती हो तो स्वर परे रहने पर सः के विसर्ग का लोप होता है तथा विसर्ग लोप होने पर सन्धि भी हो जाती है। यथा—

सः एष दाशरथी रामः = सैषदाशरथी रामः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतिरिक्त सन्धि प्रयोगः—

विद्वस् + जनः = विद्वज्जनः, पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः, पुम् + चकारः = पुंश्चकारः, भुवः + लोकः = भुवर्लोकः, अहः + रात्रः = अहोरात्रः।

२९ अ से परे विसर्ग का लोप होता है, जब कि उससे परे ह्रस्व अ को छोड़ अन्य कोई भी स्वर हो। यथा—

कः + आस्ते = क आस्ते, यः + ईशः = य ईशः, सः + उत्सवः = स उत्सवः, वः + ऋषिः = व ऋषिः, सूर्यः + एकः = सूर्य एकः, सः + ऐच्छतः = स ऐच्छतः, यतः + औषधिः = यत औषधिः।

३० अहरादीनां पत्यादिषु वा रेफः (वा०)—अहर् और स्वर का पति के साथ समास में विकल्प से र् बना रहता है। यथा—

अहः + पति = अहर्पति — अहः पति, स्वः + पति = स्वर्पति — स्वः पति।

अनुशीलनी

१ Join the following words with rules—सनियम सन्धि कीजिये।

सुप्तः + शिशुः, गौ + गच्छति, सः + अहम्, माः + भिः, वायुः + चलति, उन्नतः + तरुः, धनुः + टङ्कारः, वामः + हस्तः, एषः + रोदिति, शिष्यः + अत्र, निः + कण्टकम्, निः + क्रयः, निः + पापः, निः + फलम्, दुः + कर्म, दुः + फलम्, निः + चयः, निः + छलः, निः + तारः, मनः + गतः, नरः + याति, पयः + दः, अश्वः + धावति, मनः + लयः, मनः + तीतः, मनः + अवधानम्, धर्मः + अनुष्ठेयः, निः + गुणः, नि + णयः, निः + आकारः, निः + ईहः, कः + आस्ते, वः + ऋषिः, सः + गच्छति, भुवः + लोकः, सूर्यः + एकः, सः + उत्सवः, प्रातः + रक्तम्, निः + सत्त्वम्, गुरुः + राजते, सजूः + छिनत्ति, वासः + छादयति, पुरुषः + तरति, यशः + कल्पम्, अयः + पाशम्, हविः + पाशम्, हविः + काम्यति, निः + पीतम, सर्पिः + पात्रम्, चतुः + कपालम्, द्विः + करोति, त्रिः + पठति, धनुः + करः, कः + कः, कौतः + कुतः, भ्रातुः + पुत्रः, सद्यः + कः, गीः + कारः, बहिः + पूलम्, मेदः + पिण्डः, अधः + कृतम्, दिवः + पातु।

२ Disgoin the following words—सन्धि विच्छेद कीजिये।

भो देवाः, नारद उवाच, शिवा इति, पुनारमते, शम्भू राजते, मनोरथः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीरसः, नीरोगः, पितारद्धः, गौरेव, पुनारक्तम्, इन्दूराजते, मनोलयः, नरोयाति, तेजोमयः, मनोतीतः, निष्पापः, निश्चयः, पूर्णोघटः, वालोढौकते, सुन्दरो नरः, देवाष्षट्, तरोश्छाया, प्रथमस्सर्गः, हविष्कुण्डम्, धनुष्पाणिः, अन्तर्दका, दुर्दिनम्, बहिष्कृतम्, निष्प्रत्यूहम्, तिरस्करोति, अयस्कान्तः, अयस्कर्णी, पुरस्करोति, क ँ करोति, वाचस्पति, देवायिह, भोयच्युतः, हरिर्जयति, अहर्पति, अहोरात्रः, अहोरथान्तरम्, अहोरूपम्, हरीरम्यः एषको रुद्रः, शिरस्पदम्, सर्पिष्कम्, शिवच्छाया, काँस्कान्, भास्करः, यजुष्पात्रम्, शार्ङ्गिश्छिन्धि, शिरस्पदम्, पुंश्चकोरः, चतुष्टयम्, एष बालकः, अहरहः, भो गदाधर, बालका हसन्ति, शीतोवायुः, अन्तर्धानम् ।

३ विसर्ग की उत्पत्ति किन-किन वर्णों में होती है, उदाहरणपूर्वक विवेचन कीजिये ।

४ विसर्ग के स्थान में ओकार किस अवस्था में होता है ? विसर्ग के पश्चात् स्वर वर्ण आने पर विसर्ग में कौन-कौन से विकार—परिवर्तन होते हैं, उदाहरणपूर्वक लिखिये ।

५ विसर्ग के स्थान पर प्रमुख कौन-कौन से विकार होते हैं ? विसर्ग सन्धि के प्रमुख नियमों का विवेचन कीजिये ।

६ विसर्ग का लोप किस-किस अवस्था में होता है, इसके प्रमुख नियमों की सोदाहरण व्याख्या कीजिये ।

७ न् कार के स्थान में रेफ विधायक नियम का सोदाहरण विवेचन कीजिये ।

८ विसर्ग के स्थान में मूर्धन्य ष् किस स्थिति में होता है ? तालव्य श् विधायक नियम का निरूपण कर शिरः और अधः शब्द के विसर्ग विकार—विसर्ग परिवर्तन का सोदाहरण विवेचन कीजिये ।

९ विसर्ग के पहले आ और विसर्ग के परे स्वर वर्ण होने पर विसर्ग की क्या अवस्था रहेगी ? सोदाहरण स्पष्ट कीजिये ।

१० विसर्ग के स्थान में यकार किस अवस्था में होता है ? रेफ् के परे रेफ के लोप विधायक नियम को सोदाहरण समझाइये ।

११ विसर्ग की जिह्वामूलीय और उपध्मानीय स्थिति का विवेचन कीजिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२ पाश, कल्प और काम्य शब्द के परे विसर्ग की क्या स्थिति रहती है, सोदाहरण समझाइये।

१३ विसर्ग के बाद श् ष् और स् हों तो विसर्ग में कौन सा विकार उत्पन्न होता है ? विसर्ग के स्थान पर रेफ विधायक नियम का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये।

१४ क ख से परे निरस्, नमस् और पुरस् शब्द आने पर विसर्ग की कौन सी अवस्था रहती है, उदाहरणपूर्वक लिखिये।

णत्वविधान Change of न् into ण्

१ **रषाभ्यां नोणः समानपदे** ८।४।१—एक ही वाक्य में ऋ ॠ र् या ष् के बाद न् आवे तो न् के स्थान में ण् होता है। यथा—
नृ+नाम=नृणाम्, तिसृ+नाम्=तिसृणाम्, भ्रातृ+नाम्=भ्रातृणाम्, पितृ+नाम्=पितृणाम्, पूष्+ना=पूष्णा, कृष्+नः=कृष्णः, चतुर्+नाम्=चतुर्णाम्।

२ **अट् कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि** ८।४।२—यदि र्, ष्, ऋ, ॠ और न् के बीच में कोई स्वर; य्, व्, र्, ह्, कवर्ग पवर्ग और अनुस्वार में से कोई एक वर्ण अथवा अनेक वर्ण हों तो न् के स्थान में ण् होता है। यथा–गर्व+न=गर्वेण, रवि+ना=रविणा, द्रव्ये+न=द्रव्येण, रामे+न=रामेण, हरी+नाम्=हरीणाम्, मृगे+न=मृगेण, पुरुषे+न=पुरुषेण, अर्केण, मुर्खेण, दीर्घेण, द्रुमेण, गर्भेण, आर्षेण, विरहेण, ग्रहणीयम्।

३ **एकाजुत्तरपदेणः** ८।४।१२—**कुमति च** ८।४।१३—यदि पर पद एक स्वर वाला हो अथवा कवर्ग युक्त हो तो न् के स्थान में ण् होता है। यथा—
पुनर्भू+नाम्=पुनर्भूणाम्, प्रभु+ना+प्रभुणा। कवर्ग युक्त श्री+कामेन=श्रीकामेण, परि+पाकेन=परिपाकेण, दुर्+गमने=दुर्गमेण।

४ **विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः** ८।४।६—औषधि वाचक और वृक्षवाचक शब्दों से परे वन शब्द के न के स्थान में विकल्प से ण होता है। यथा—
औषधि वाचक—व्रीहि+वनम्=व्रीहिवणम्—व्रीहिवनम्, दूर्वा+वनम्=

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूर्वावणम्—दूर्वावनम्, नीवार+वनम्=नीवारवणम्; वृक्षवाचक—लोध्र+वनम्=लोध्रवणम्—लोध्रवनम्, वदरी+वनम्=वदरीवणम्—वदरीवनम्, शिरीष+वनम्=शिरीषवणम्—शिरीषवनम्, जम्बीर+वनम्=जम्बीरवणम्।

अपवाद—

द्व्यच्त्र्यच्भ्यामेव (वा०)—दो स्वर या तीन स्वर का शब्द नहीं होने में वन शब्द के न को ण नहीं होता यथा—

देवदारुवनम्, उदुम्बरवनम्, नारिकेलवनम्, कोविदारवनम्, कुरुवनम्।

६ **प्रनिरन्तः शरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्यखदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि** ८।४।५—शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, खदिर आदि शब्दों के परे वन शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

शर+वनम्=शरवणम्, प्लक्ष+वनम्=प्लक्षवणम्, आम्र+वनम्=आम्रवणम्, इक्षु+वनम्=इक्षुवणम्, खदिर+वनम्=खदिरवणम्, प्र+वनम्=प्रवणम्, कार्ष्य+वनम्=कार्ष्यवणम्।

प्र, निर्, अन्तर्, अग्रे आदि शब्दों से परे भी वन शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

निर्+वनम्=निर्वणम्, अन्तर्+वनम्=अन्तर्वणम्, अग्रे+वनम्=अग्रेवणम्।

७ **वाहनमाहितात्** ८।४।८—जिस पर रखकर वस्तु को ले जाया जाय, उस ले जानेवाले वाहन के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—इक्षुवाहणम्।

८ **पानं देशे** ८।४।९—देश अर्थ गम्यमान हो तो पान शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

क्षीर+पानाः=क्षीरपाणाः उसीनराः सुरा+पानाः सुरापाणाः प्राच्याः।

९ **वा भावकरणयोः**—८।४।१०—दूसरे पद में रहनेवाले र् के परे पान शब्द के न के स्थान में विकल्प से ण होता है। यथा—

क्षीर+पानम्=क्षीरपाणम्—क्षीरपानम्, विष+पानम्=विषपाणम्।

१० **त्रिचतुर्भ्यां हायनस्य णत्वं वाच्यम्** (वा०)—वयस अर्थ बोध हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो त्रि और चतुर् शब्दों के परे हायन शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

त्रि + हायनः + वत्सः = त्रिहायणोवत्सः, चतुर् + हायनः + गौः = चतुर्हायणो गौः।

११ **अह्नोऽदन्तात्** ८।४।७—प्र, पूर्व, अपर इत्यादि शब्दों के परे अह्न शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

प्र + अह्नः = प्राह्णः, पूर्व + अह्नः = पूर्वाह्णः, अपर + अह्नः = अपराह्णः।

१२ **अयनञ्च** ८।४।२५—पर, पार, उत्तर, चान्द्र और नार शब्दों के परे अयन शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

पर + अयनम् = परायणम्, परा + अयनम् = परायणम्, उत्तर + अयनम् = उत्तरायणम्, चान्द्र + अयनम् = चान्द्रायणम्, नार + अयनः = नारायणः।

१३ **अग्रग्रामाभ्यां नयतेः** (वा०)—अग्र और ग्राम शब्दों के परे नी शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा

अग्र + नीः = अग्रणीः, ग्राम + नीः=ग्रामणीः।

१४ **पूर्वपदात्संज्ञायामगः** ८।४।३—संज्ञा बोध होने से शूर्प शब्द के परे नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

शूर्प + नखा = शूर्पणखा।

१५ **उपसर्गाद्बहुलम्** ८।४।२८—प्र, द्रु, खर और वार्ध्री के परे नस् शब्द के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

प्र + नसः=प्रणसः, द्रु + नसः—द्रुणसः वार्ध्री + नसः=वार्ध्रीणसः।

१६ **गिरिनद्यादीनां वा** (वा०)—गिरि नदी, स्वर् नदी इत्यादि के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—

गिरि + नदी = गिरीणदी—गिरिनदी, स्वर् + नदी = स्वर्णदी—स्वर्नदी, गिरि + नितम्बः = गिरिणितम्बः—गिरिनितम्बः, गिरि + नखः = गिरिणखः, गिरि + नद्धः = गिरिणद्धः—गिरिनद्धः, चक्र + नदी = चक्रणदी—चक्रनदी, चक्र + नितम्बः = चक्रणितम्बः—माषो + नः = माषोणः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७ **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** ८।४।१४—प्र, परा, परि और निर् इन चार उपसर्गों के परे नद्, नम्, नश्, नह्, नी, नु, नुद्, अन् और हन् धातुओं के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—
प्र+नदति=प्रणदति, प्र+नमति=प्रणमति, परि+नमति=परिणमति, परि+नामः=परिणामः, प्र+नश्यति=प्रणश्यति, परि+नाहः=परिणाहः, प्र+नोदः=प्रणोदः, प्र+नयति=प्रणयति, प्र+नयः=प्रणयः।

१८ **नेर्गदनदपतपदघुमास्यतिहन्तियातिवातिद्रातिप्सातिवपतिवहतिशाम्यतिचिनोतिदेग्धिषु च** ८।४।१७—गद्, पत्, दा, धा, हन्, नद्, प्रद्, दान, दो, दे, सो, धे, मा, या, द्रा, प्सा, वप्, शम्, वह्, चि, दिह् धातुओं के पूर्ववर्ती नि उपसर्ग के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—
प्रनि+गदति+प्रणिगदति, प्रनि+पतति=प्रणिपतति, प्रनि+पातः=प्रणिपातः, प्रनि+धानम्=प्रणिधानम्, प्रनि+हन्ति=प्रणिहन्ति।

१९ **कृत्यचः** ८।४।२९—धातु के पहले प्र, परा, परि, निर् ये चार उपसर्ग या अन्तर् शब्द हो तो कृत् प्रत्यय के न् का ण् होता है। यथा—
प्र+यानम्=प्रयाणम्, प्र+हानम्=प्रहाणम्, प्रवहमाणः, प्रमाणम्।

२० **हलश्चेजुपधात्** ८।४।३१—जिन धातुओं के पहले व्यञ्जन वर्ण हो और अन्त्य वर्ण के पहले अ आ भिन्न स्वर हो उनके परे कृत् प्रत्यय के न् का विकल्प से ण् होता है। यथा—
प्रकोपणम्, परिगोपणम्।

२१ णयन्त धातु के परे कृत् प्रत्यय के न का विकल्प से ण् होता है। यथा—
प्रयाणम्, प्रयापणीयम्, प्रवाहणम्।

२२ निस्, निक्ष्, निन्द इन तीन धातुओं के न् का विकल्प से ण् होता है। यथा—
प्रणिसितव्यम्, प्रणिक्षणम्, प्रणिन्दति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२३ हिनु और मीना के नकार के स्थान पर णकार होता है। यथा—
प्रहिणोति, प्रहिणुतः, प्रहिण्वन्ति, प्रमीणाति, प्रमीणीतः, प्रमीणन्ति।

२४ लोट् की आनि विभक्ति के न् का ण् होता है। यथा—
प्रभवाणि, परिभवाणि, प्रवहाणि।
निम्नलिखित शब्दों में स्वाभाविक ण है—
वाणी–तूणीर–वेणी–फणि मणि–लवणं कोण–कल्याण–क्षीणः।
गोणी–घोणी–क्वणाणुधुण-विपाणं–पण स्थाणु–पुण्यं विषाणम्॥
माणिक्यं शोणशाणौ गुण–गण गणिका–वेणु–सिंहाण–वीणा।
निर्वाणो निक्वणौवा–क्वण–किण वणिजः कङ्कणं पाणितूणौ॥
पिणाकम्, चाणक्यम्—इत्यादिः।

अनुशीलनी

१ णत्व विधि के प्रमुख नियमों को सोदाहरण लिखिये।

२ ऋ, र् और ष् के परे न् के स्थान में णकार होने के पाँच उदाहरण लिखिये।

३ पान शब्द के नकार के स्थान पर णकार किन-किन अवस्थाओं में होता है, सोदाहरण विवेचन कीजिये।

४ वन शब्द के नकार के स्थान पर णकार किन-किन स्थितियों में होता है, प्रत्येक के दो-दो उदाहरण लिखिये। साथ ही इस नियम का अपवाद भी उदाहरण सहित समझाइये।

५ हायन शब्द के नकार के स्थान पर णकार किस अवस्था में होता है, सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

६ अयन शब्द के नकार के स्थान पर नकार विधायक नियम की सोदाहरण व्याख्या कीजिये।

७ नी शब्द के नकार के स्थान पर णकार किस अवस्था में होता है, सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

८ नख और नदी शब्द के नकार के स्थान पर णकार विधायक नियम की सोदाहरण व्याख्या कीजिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९ हिनु और मीना शब्द के नकार के स्थान पर णकार किस अवस्था में होता है ? प्रत्येक का एक-एक उदाहरण दीजिये।

१० कृत् प्रत्यय के नकार के स्थान पर णकार विधायक नियम को सोदाहरण लिखिये।

११ स्वाभाविक ण किन-किन शब्दों में हैं, उनकी एक तालिका दीजिये।

१२ प्रवाहणम्, प्रहिणोति, प्रणिगदति, स्वर्णदी, प्रणामः, प्रणिधानम्, प्रभावेण, करणम्, प्रभुणा और परिपाकेण में णकार विधायक नियमों को स्पष्ट कीजिये।

१३ शूर्पणखा शब्द में णकार किस सूत्र से हुआ है ? नारायणः के णकार विधायक नियम को ससूत्र लिखिये।

१४ पूर्वाह्णः और अपराह्णः में णकार विधायक नियम की व्याख्या कीजिये।

षत्व विधान Change of स into ष

१ **अपादन्तस्य मूर्धन्यः** ८।३।५५; **इणकोः** ८।३।५७; **आदेश-प्रत्यययोः** ८।३।५९—अ आ छोड़कर किसी स्वर, अन्तस्थ वर्ण, ह अथवा कवर्ग के अनन्तर कोई प्रत्यय सम्बन्धी स् अथवा किसी दूसरे वर्ण के स्थान में आदेश किया गया स आवे और वह पदान्त में न हो तो उसके स्थान में मूर्धन्य ष् होता है। यथा—

मुनि + सु = मुनिषु, रामे + सु = रामेषु, नदी + सु = नदीषु, ए + साम् = एषाम्, अन्ये + साम् = अन्येषाम्, मति + सु = मतिषु, वधू + सु = वधूषु, गो + सु = गोषु, मुनि + सु = मुनिषु, दिक् + सु = दिक् + षु = दिक्षु।

अपवाद—

सात् प्रत्यय के परे दन्त्य स् का मूर्धन्य ष नहीं होता। यथा—

अग्नि + सात् = अग्निसात्, धूलि + सात् = धूलिसात्, वायु + सात् = वायुसात्।

२ **नुम् विसर्जनीय शर्व्यवायेऽपि** ८।३।५८—अ आ भिन्न स्वर, कवर्ग, र् अथवा ह् और स् के मध्य में अनुस्वार, विसर्ग तथा श् ष् स् का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवधान होने पर भी दन्त्य स् के स्थान में मूर्धन्य ष् हो जाता है। यथा—धनून् + सि = धनूंषि, हवींषि, आशीःषु।

अपवाद—

नपुंसक लिङ्ग की प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन से भिन्न अनुस्वार का व्यवधान हो तो स के स्थान पर ष् नहीं होता। यथा—पुम् + सु = पुंसु।

३ **एति संज्ञायामगात्** ८।३।९९—नाम समझे जाने से अ आ भिन्न स्वर के परे सेन शब्द के स के स्थान पर षत्व होता है। यथा—सु + सेनः = सुषेणः हरि+सेनः=हरिषेणः, मधु+सेनः=मधुषेणः।

अपवाद—

यदि नाम न समझा जाय तो षत्व नहीं होता। यथा—कुरुसेना, यदुसेना, कपिसेना आदि।

४ भूमि और दिवि शब्दों के परे स्थ शब्द के सकार के स्थान पर षत्व होता है। यथा—भूमि + स्थः = भूमिष्ठः, दिवि + स्थः = दिविष्ठः।

५ **गवियुधिभ्यां स्थिरः** ८।३।९५—युधि शब्द से परे स्थिर शब्द के स् के स्थान पर षत्व होता है। यथा—युधि + स्थिरः = युधिष्ठिरः।

६ **मातृपितृभ्यां स्वसा** ८।३।८४—समास होने पर मातृ और पितृ शब्दों के परे स्वसृ शब्द के प्रथम स् के स्थान पर ष् होता है। यथा—मातृष्वसा, पितृष्वसा। विभक्ति रहने पर विकल्प से षत्व होता है। यथा—मातुः ष्वसा—मातुः स्वसा, पितुः ष्वसा—पितुः स्वसा।

७ **उपसर्गात्सुनोति सुवति स्यति-स्तौति स्तोभतिस्थासेनयसे-धसिचसञ्जस्वञ्जाम्** ८।३।६५—इकारान्त—नि, वि, परि, प्रति, अति, अधि, अपि, अभि और उकारान्त—सु, अनु, उपसर्गों से परे सु, सू, सो, स्तु, स्तुभ्, स्था, सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद् और स्तम्भ धातुओं के स् के स्थान पर ष् होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सु—अभिषुनोति; सू (तुदादि गणीय)—अभिषुवति, अनुषुवति; सो—अधिष्यति; स्तु—अभिष्टौति; स्तुभ्—प्रतिष्टौभते, अनुष्टौभते; स्था—अधिष्ठास्यति, अनुष्ठास्यतिः सेनि—अभिषेणयति; सिध्—प्रतिषेधति, अनुषेधति (गमनार्थ सिध् धातु के स् के स्थान पर ष् नहीं होता; यथा—गृहं प्रतिसेधति, परिसेधति, अभिसेधति), सिच्—निषिञ्चति; सञ्ज्—निषजति, अनुषजति; स्वञ्ज्—परिष्वजते; सद्—विषीदति, अनुषीदति, (प्रति पहले हो तो षत्व नहीं होता; यथा—प्रतिसीदति), स्तम्भ्—अभिष्टभ्नोति।

८ **परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्** ८।३।७०—परि, नि, वि, पूर्वक सेव्, सिव्, सह धातु के सकार के स्थान पर षत्व होता है। यथा—

निषेधति, परिषेवते, निषेवते, विषहते। सह का सोढ होने पर षत्व नहीं होता। यथा—निसोढुम्, विसोढः।

९ **स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य** ८।३।६४ इकारान्त और उकारान्त उपसर्गों के परे सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज और सेव के धातुओं के अभ्यस्त होने पर दोनों स्थानों के दन्त्य स् के स्थान पर मूर्धन्य ष् होता है। यथा—

अभिषिषेणयिषति, निषिषेध, प्रतिषिषेधयिषति, अभिषिषेच।

१० **स्तम्भेः** ८।३।६७—इकारान्त और उकारान्त उपसर्गों के परे अभ्यस्त स्था और स्तम्भ् धातुओं के स् में तकार का व्यवधान होने पर भी षत्व होता है। यथा—

स्था—अनुतष्ठौ, अधितष्ठौ, अभितष्ठौ; स्तम्भ—अनुतष्टम्भ। प्रतिस्तब्ध और निस्तब्ध में षत्व नहीं होता है तथा णयन्त करने पर लुङ् में स्तम्भ् का ष् नहीं होता। यथा—पर्यस्तम्भत्।

११ परिपूर्वक स्कृ धातु के स् का ष् होता है। यथा—परिष्करोति, परिष्कारः।

१२ **अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्तेरप्राणिषु** ८।३।७२—अनु, वि, परि, अभि, नि पूर्वक स्यन्द् धातु के स् का विकल्प से षत्व होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुष्यन्दते, अनुस्यन्दते, विष्यन्दते—विस्यन्दते, निष्यन्दते–निस्यन्दते।

१३ **सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः** ८।३।८८—सु, वि, निर्, दुर् के परे स्वप् का सुप् हो तो सकार के स्थान पर षत्व हो जाता है। यथा—

सुषुप्तः, विषुप्तः, निः षुप्तः, दुःषुप्तः।

१४ **उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः** ८।३।८७—इकारान्त और उकारान्त उपसर्ग तथा प्रादुः शब्द के परे अस् धातु के स् के स्थान पर षत्व होता है। यथा—

निषन्ति, प्रतिषन्ति, अधिषन्ति, अनुष्षन्ति, प्रादुषन्ति।

१५ **शासिवसिघसीनाञ्च** ८।३।६०—उस् प्रत्यय परे रहने पर वस् धातु के स् का षत्व होता है। यथा—

उषितः, उषितवान्, ऊषतः, ऊषुः।

१६ **समासेऽङ्गुले सङ्गः** ८।३।८०—समास होने पर अंगुलि शब्द के परे सङ्ग शब्द के स् के स्थान पर षत्व होता है। यथा—अंगुलिषङ्गः।

१७ सु, वि, निर्, दुर् उपसर्ग के परे सम शब्द के सकार के स्थान पर षत्व होता है। यथा—

सुषमः, सुषमा, दुःषमः, दुःषमा, विषमः, विषमा।

१८ वि पूर्वक स्कम्भ धातु के स् का षत्व होता है। यथा—

विष्कम्भः, विष्कम्भकः, विष्कम्भितुम्, विष्कम्भ्नाति।

१९ परि और वि पूर्वक स्कन्द् धातु के सकार के स्थान पर विकल्प से षत्व होता है। यथा—

परिष्कन्दति, परिष्कण्णः—परिस्कन्दति, परिस्कन्न; निष्कन्ता—निस्कन्ता, विष्कन्तुम्—विस्कन्तुम्।

२० नि, निर्, वि पूर्वक स्फुर और स्फुल धातु के सकार के स्थान पर विकल्प से षत्व होता है। यथा—

स्फुर्—निष्फुरति–निस्फुरति, विष्फुरति–विस्फुरति; स्फुल्—निष्फुलति–निस्फुलति, विष्फुलति–विस्फुलति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१ सह् धातु से बने साह् शब्द का साट् और साड् हुआ हो तो स् के स्थान पर षत्व होता है। यथा—

तुराषाट्, तुराषाड्, तुरषाट्सु, तुराषाड्भ्यः।

साह् रहने से सकार के स्थान पर षत्व नहीं होता। यथा—

तुरासाहौ, तुरासाहः, तुरासाहम्।

२२ धातु के परे सन् प्रत्यय का ष् हो तो धातु के स् का ष् नहीं होता। यथा—

सिच्—सिसीक्षति; सू—सुसूषति; सेव्—सिसेविषते; स्तम्भ—तिस्तम्भिषति; स्तुम्भ्—तुस्तोभिषते; स्नु—सुस्नूषति।

केवल स्तु धातु का षत्व होता है। यथा तुष्टूषति।

सन् प्रत्यय का स् रहे तो धातु के स् का षत्व होता है। यथा—

स्था—तिष्ठासति, स्वप्—सुषुप्सति, सो—सिषासति।

निम्नाङ्कित शब्दों में स्वाभाविक षत्व है—

आषाढः, इक्षुः, ईषत्, उत्कर्ष, औषधः, कोषः, दोषः, द्वेषः, दुष्पम्, भीष्मः, महिषः, मेषः, भेषः, मूषिका, वृषा, वर्षः, षोडशः, पुरुषः, विषयः, षट्, हर्षः, पाषाणः, कष्टम्, वाष्पः।

अनुशीलनी

१ षत्व विधायक प्रमुख नियमों को सोदाहरण लिखिये।

२ सेना या सेनः शब्द के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम को सोदाहरण लिखिये।

३ स्थिर् और स्थः शब्दों के सकार के स्थान पर किस अवस्था में षत्व होता है? सोदाहरण विवेचन कीजिये।

४ स्वसृ शब्द के सकार के स्थान पर किस स्थिति में षत्व होता है? सम शब्द के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम की सोदाहरण व्याख्या कीजिये।

५ वस् धातु के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम को सोदाहरण लिखकर स्कम्भ धातु के षत्व नियम को उदाहरणपूर्वक समझाइये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ स्यन्द्, स्कन्द् और स्कम्भ धातु के सकार के स्थान पर किस-किस अवस्था में षत्व होता है ? उदाहरणपूर्वक लिखिये ।

७ अभ्यस्त स्था और स्तम्भ् धातु के सकार के स्थान पर षत्व किस स्थिति में होता है ? अस् धातु के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम का सोदाहरण विवेचन कीजिये ।

८ सु, सू, सो स्तु, स्तुभ्, स्था, सेनि, सिध्, सिच्, सञ्ज, स्वञ्ज्, सद् और स्तम्भ धातुओं के सकार के स्थान पर षत्व विधायक नियम को सोदाहरण लिखिये ।

९ सेव्, सिव् और सह धातु के सकार के स्थान में षत्व विधायक नियम को सोदाहरण लिखिये ।

१० स्वाभाविक षत्व किन-किन शब्दों में है ? स्वाभाविक षत्व का क्या तात्पर्य है ?

११ परिषिवते, मुनिषु, पितुः ष्वसा, दिविष्ठः अधिष्ठास्यति, अभिषुनोति, निषेवते, विष्कम्भः, विषुतः अनुष्यन्दते, परिष्करोति, निषिषेधः, अधिषन्ति, सुषमः, दुःषुप्तः, अंगुलिषङ्गः, पुरुषः, विष्कम्भः, पाषाणः, वृषभः, अभिषेकः एवं रामेषु शब्दों में षत्व विधायक नियमों को लिखिये ।

१२ षत्व विधायक सामान्य और विशेष नियमों को स्पष्ट रीति से समझाइये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीयोऽध्यायः

सुबन्त प्रकरण या शब्दरूप

भाषा का आधार वाक्य है और वाक्य का आधार शब्द। शब्दों की रचना वर्णों के मेल से होती है।

जो कान से सुनायी पड़ता है, वह शब्द है। शब्द दो प्रकार के होते हैं—सार्थक और निरर्थक। सार्थक शब्द की पद संज्ञा है। इसी का विवेचन व्याकरण शास्त्र में किया जाता है। पद के दो भेद हैं—संज्ञा और क्रिया।

संस्कृत में रूपान्तर के अनुसार पदों के—सार्थक शब्दों के दो भेद हैं—विकारी और अविकारी। जिस सार्थक शब्द के रूप में कोई विकार या परिवर्तन होता है, उसे विकारी कहते हैं। यथा—रामः, रामौ, रामाः; भवति, भवतः, भवन्ति। विकारी पदों—सार्थक शब्दों के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया और विशेषण ये चार मूल भेद हैं। अविकारी वे पद हैं, जिनके रूप में विकार—परिवर्तन नहीं होता। ये अविकारी पद अव्यय कहलाते हैं। यथा—अधः, सम्प्रति, अन्यत्, उच्चैः, नीचैः आदि।

प्राचीन वैयाकरणों के अनुसार संस्कृत भाषा में तीन प्रकार के शब्द हैं—नाम, आख्यात और अव्यय। सर्वनाम, संख्यावाचक और विशेषण भी नाम के अन्तर्गत हैं। नाम को प्रातिपदिक कहा गया है। प्रातिपदिकों के साथ सुप् प्रत्यय लगाने से संज्ञापद बनते हैं। प्रत्येक संज्ञा के पुंल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग ये तीन लिङ्ग होते हैं।

संस्कृत भाषा में लिङ्गभेद स्वाभाविक स्थिति पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह लिङ्गभेद कृत्रिम है। उदाहरणार्थ स्त्री का अर्थ बतलाने के लिए दारः, भार्या और कलत्रं ये तीन शब्द प्रचलित हैं। इनमें दारः शब्द पुंल्लिङ्ग, भार्या शब्द स्त्रीलिङ्ग और कलत्रं नपुंसक लिङ्ग है। इसी प्रकार शरीर का बोध करानेवाले अनेक शब्दों में लिङ्गभेद वर्तमान है। यथा—तनुः स्त्रीलिङ्ग, देहः पुंल्लिङ्ग और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीरं नपुंसक लिङ्ग है। कई शब्द ऐसे हैं, जिनके रूप एक से अधिक लिङ्ग में चलते हैं; जैसे गौ शब्द पुंल्लिङ्ग में बैल वाचक और स्त्रीलिङ्ग में गाय वाचक है। किन्हीं पुंल्लिङ्ग शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से भी स्त्रीलिङ्ग के शब्द बनते हैं और किन्हीं प्रत्ययों के योग से नपुंसक लिङ्ग के शब्द बन जाते हैं। इतना होने पर भी यह सत्य है कि संस्कृत में शब्द प्रायः नियत लिङ्गी होते हैं। शब्दों के लिङ्ग निर्धारित हैं।

संस्कृत भाषा में लिङ्ग के समान वचन भी तीन हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। जिसके कहने से एक व्यक्ति या वस्तु का बोध हो, वह एकवचन; जो दो पदार्थों का ज्ञान करावे, वह द्विवचन और जो दो से अधिक वस्तुओं के लिए प्रयुक्त हो, वह बहुवचन कहलाता है। द्विवचन का प्रयोग विश्व की किसी भी भाषा में नहीं होता; किन्तु संस्कृत में एक और बहुत्व से दो को भिन्न मानकर द्विवचन का प्रयोग किया गया है। संख्या शास्त्र के नियम के अनुसार दो संख्या बहुत्वसूचक नहीं है। बहुत्व की गणना तीन की संख्या से की जाती है। अतः उक्त वैज्ञानिक तथ्य को दृष्टि में रखकर ही संस्कृत में द्विवचन का विधान किया गया है। यथा—वृक्षः, वृक्षौ, वृक्षाः।

(क) जाति के अभिधान—कथन में एकवचन को बहुवचन भी हो जाता है। यथा—मनुष्यः = मनुष्याः, अश्वः = अश्वाः।

(ख) युष्मद् और अस्मद् शब्द के एकवचन और द्विवचन को भी पक्ष में बहुवचन हो जाता है। यथा—अहं ब्रवीमि = वयं ब्रूमः, आवां ब्रूवः = वयं ब्रूमः; त्वं गच्छसि = यूयं गच्छथ, युवां गच्छथः = यूयं गच्छथ।

(ग) आदर अर्थ में भी एकवचन को बहुवचन हो जाता है। यथा—गुरुरभिवादनीयः = गुरवोऽभिवादनीयाः।

संस्कृत में तीन पुरुष होते हैं—उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और प्रथमपुरुष। प्रथमपुरुष को अन्यपुरुष भी कहा जाता है।

कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण इन सात कारकों को प्रथम, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्ति कहा जाता है। सम्बोधन मे प्रथमा विभक्ति होती है।

विभिन्न विभक्तियों को प्रकट करने के लिए प्रातिपदिकों में जो प्रत्यय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगाये जाते हैं, उन्हें सुप् कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ प्रकट करने के लिए धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें तिङ् कहते हैं। सुप् और तिङ् को भी विभक्ति कहा जाता है।

विभक्तियों की आकृतियाँ

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ने	सु (:)	औ	जस् (अ:)
द्वितीया	को	अम्	औट् (औ)	शस् (अ:)
तृतीया	से, के द्वारा	टा (आ)	भ्याम्	भिस् (भिः)
चतुर्थी	के लिए	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पञ्चमी	से	ङसि (अः)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
षष्ठी	का, की, के	ङस् (अः)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	में, पे, पर	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप् (सु)

सम्बोधन के लिए अलग प्रत्यय नहीं दिये गये हैं; अतः इनके रूपों में प्रथमा विभक्ति के ही प्रत्यय जोड़े जाते हैं। ये प्रत्यय सुप् कहलाते हैं।

प्रत्ययों को जोड़ने की प्रक्रिया कुछ जटिल है, पर है यह इतनी व्यवस्थित जिससे एक बार हृदयंगम करने के पश्चात् कुछ कष्ट नहीं होता। यहाँ जिन प्रत्ययों के जोड़ने में विशेषता है, उन प्रत्ययों के सम्बन्ध में प्रकाश डालना आवश्यक है।

१ **तस्माच्छसो नः पुंसि** ६।१।१०३ - अकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों में शस् के सकार के स्थान पर नकार आदेश होता है। यथा—राम + शस् = राम + अस् = राम + अन् = रामान्।

२ **टाङसिङसामिनात्स्याः** ७।१।१२— अकारान्त शब्दों से टा, ङसि और ङस् के स्थान में क्रमशः इन, आत् और स्य आदेश होते हैं। यथा—राम + टा = राम + इन = रामेण; राम + ङसि = राम + आत् = रामात्, राम + ङस् = राम + स्य=रामस्य।

३ **अतोभिस् ऐस्** ७।१।९--अकारान्त शब्दों से भिस् के स्थान में ऐस् आदेश होता है। यथा--राम + भिस्= राम + ऐस्=रामैस्=रामैः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४ **ङेर्यः** ७।१।१३--अकारान्त शब्दों से ङे के स्थान में य आदेश होता है। यथा--राम + ङे = राम + य।

५ **सुपि च** ७।३।१०२—य आदि विभक्ति के प्रत्यय अकारान्त से परे आवे तो अकारान्त को दीर्घ होता है। राम + य=रामाय।

६ **बहुवचने झल्येत्** ७।१।१०३—झलादि बहुवचन सुप् परे हो तो अकारान्त अंग को एकार होता है। यथा—राम + भ्यस् = रामेभ्यः।

७ **ओसि च** ७।३।१०४ - ओस् प्रत्यय परे हो तो अकारान्त अंग को एकार होता है। यथा—राम + ओस्=रामे + ओस्=रामयोः।

८ **ह्रस्वनद्यापो नुट्** ७।१।५४—ह्रस्वान्त, नद्यन्त, आबन्त अंग से परे आम् को नुट् का आगम होता है। यथा—राम + आम्=राम नुट् + आम्= रामन् आम्=रामाणाम्।

९ **आङोनाऽस्त्रियाम्** १।३।१२०—सखि और नदी संज्ञक शब्दों को छोड़कर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों में टा के स्थान पर ना हो जाता है। यथा—मुनि + टा=मुनिना।

१० **घेर्ङिति** ७।३।१११—ङस्, ङसि, ङे, ङि इन प्रत्ययों के परवर्ती होने पर ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त सखि भिन्न और अनदी संज्ञक शब्दों के अन्त में आनेवाले स्वर को गुण होता है। यथा—हरि + ङे=हरि + ए= हरे + ए=हरये।

११ **अच्च घेः** ७।३।११९—इकारान्त और उकारान्त के पश्चात् ङि की इ को औ आदेश होता है और इ तथा उ के स्थान पर अकार आदेश होता है। यथा—हरि + ङि=हरि + इ = हर् + औ=हरौ।

१२ **ऋत उत्** ६।१।१११—ऋकारान्त प्रातिपदिक के पश्चात् जब ङसि, ङस् आवें तो ऋ को उ आदेश होता है। यथा—क्रोष्टृ + ङसि=क्रोष्टृ + अस्= क्रोष्ट् + उर् + स्=क्रोष्टुः।

१३ **जसः शी** ७।१।१७—अकारान्त सर्वनाम से परे जस् के स्थान में शी होता है। यथा—सर्व + जस्=सर्व + शी = सर्व + ई=सर्वे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४ **सर्वनाम्नः स्मै** ७।१।१४—अकारान्त सर्वनाम से परे ङे के स्थान में स्मै आदेश होता है। यथा—सर्व+स्मै=सर्वस्मै।

१५ **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ** ७।१।१५—अकारान्त सर्वनाम से परे ङसि और ङि के स्थान में स्मात् और स्मिन् आदेश होते हैं। यथा—सर्व+ङसि=सर्वस्मात्, सर्व+ङि=सर्वस्मिन्।

१६ **आमि सर्वनाम्नः सुट्** ७।१।५२—अकारान्त सर्वनाम से विहित आम् को सुट् का आगम होता है। यथा—सर्व+आम्=सर्व+स्=आम्=सर्वेषाम्।

१७ **औङ आपः** ७।१।१८—जब आकारान्त शब्द में औ जुड़ता है तो उसके स्थान में शी (ई) आदेश होता है। यथा—रमा+औ=रमा+ई=रमे।

१८ **आङि चापः** ७।३।१०५—टा और ओस् प्रत्यय परे रहने पर आकारान्त स्त्रीलिङ्ग वाची शब्दों के स्थान पर एकार आदेश होता है। यथा—रमा+टा=रमे+आ=रमया।

१९ **याडापः** ७।३।११३—आकारान्त शब्दों में ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुड़ने पर आ के पश्चात् या का आगम होता है। रमा+ङे=रामायै।

२० **सर्वनाम्नः स्याड् ह्रस्वश्च** ७।३।११४—आकारान्त सर्वनाम के पश्चात् ङे, ङसि, ङस् और ङि के जुड़ने पर आकार का अकार हो जाता है और प्रत्यय तथा शब्द के बीच स्या का आगम होता है। यथा—सर्वा+ङे=सर्व+स्या+ए=सर्वस्यै, सर्वा + ङसि=सर्व+स्या + अस्= सर्वस्याः, सर्वा+ङि=सर्व+स्या+आम्=सर्वस्याम्।

२१ **स्वमोर्नपुंसकात्** ७।१।२३—नपुंसक लिङ्ग वाचक प्रातिपदिक के पश्चात् सु और अम् का लोप होता है। यथा—वारि+सु=वारि।

२२ **अतोऽम्** ७।१।२४—अकारान्त नपुंसक लिङ्गी शब्दों में सु के स्थान पर अम् आदेश होता है। यथा—ज्ञान+सु=ज्ञान+अम्=ज्ञानम्।

२३ **नपुंसकाच्च** ७।१।१९—अकारान्त नपुंसक लिङ्गी शब्दों में औ के स्थान पर शी (ई) आदेश होता है। यथा—ज्ञान+औ=ज्ञान+ई=ज्ञाने।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४ **जश्शसोः शिः** ७।१।२० — नपुंसक लिङ्ग वाचक प्रातिपदिक से जस् शस् जुड़ने पर उनके स्थान पर शि (इ) आदेश होता है तथा इ के पूर्व नुम् (न्) का आगम होता है। यथा—ज्ञान + जस् = ज्ञान + न् + शि (इ) = ज्ञानानि।

२५ **इकोऽचि विभक्तौ** ७।१।७३ — इकारान्त नपुंसक लिङ्ग वाचक प्रातिपदिक के पश्चात् अजादि प्रत्यय आने पर बीच में न् का आगम होता है। यथा— वारि + औ = वारि + न् + ई = वारिणी।

संस्कृत में प्रातिपदिक शब्दों के मूलतः दो भेद हैं—स्वरान्त—अजन्त और व्यञ्जनान्त हलन्त। स्वरान्त में प्रायः अकारान्त शब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग दोनों होते हैं। आकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग वाची होते हैं। इकारान्त शब्द तीनों लिङ्गों में आते हैं। ईकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। किन्तु कुछ पुंल्लिङ्ग में भी प्रयुक्त होते हैं। उकारान्त शब्द तीन लिङ्गों में आते हैं। ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग दोनों में आते हैं। ऋकारान्त शब्द प्रायः पुंल्लिङ्ग में आते हैं। ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त शब्द बहुत कम हैं। शेष स्वरों में अन्त होनेवाले प्रातिपदिक प्रायः नहीं होते हैं।

देव शब्द में समस्त विभक्तियों को जोड़ा जाता है। इसी प्रकार समस्त शब्दों में अपनी-अपनी विशेषता के अनुसार विभक्तियों को जोड़ लेना चाहिए।

देव + सु = देवस् = देवः	प्रथमा—एकवचन
देव + औ = देवौ	प्रथमा—द्विवचन
देव + जस् = देव + अस् = देवाः	प्रथमा—बहुवचन
देव + अम् = देवम्	द्वितीया—एकवचन
देव + औट् = देवौ, देवौ	द्वितीया—द्विवचन
देव + शस् = देव + अस् = देवान्	द्वितीया—बहुवचन
देव + टा = देव + इन = देवेन	तृतीया—एकवचन
देव + भ्याम् = देवाभ्याम्	तृतीया—द्विवचन
देव + भिस् = देव + ऐस् = देवैः	तृतीया—बहुवचन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव + ङे = देवाय	चतुर्थी – एकवचन
देव + भ्याम् = देवाभ्याम्	चतुर्थी द्विवचन
देव + भ्यस् = देवेभ्यः	चतुर्थी—बहुवचन
देव + ङसि = देवात्	पञ्चमी – एकवचन
देव + भ्याम् = देवाभ्याम्	पञ्चमी – द्विवचन
देव + भ्यस् = देवेभ्यः	पञ्चमी—बहुवचन
देव + ङस् = देवस्य	षष्ठी—एकवचन
देव + ओस् = देवयोः	षष्ठी -- द्विवचन
देव + आम् = देवानाम्	षष्ठी – बहुवचन
देव + ङि = देव + इ = देवे	सप्तमी—एकवचन
देव + ओस् = देवयोः, देवयोः	सप्तमी – द्विवचन
देव + सु = देवेषु, देवेषु	सप्तमी —बहुवचन

स्वरान्त पुंल्लिङ्ग शब्द

अकारान्त—गज

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गजः	गजौ	गजाः
द्वितीया	गजम्	गजौ	गजान्
तृतीया	गजेन	गजाभ्याम्	गजैः
चतुर्थी	गजाय	गजाभ्याम्	गजेभ्यः
पञ्चमी	गजात्	गजाभ्याम्	गजेभ्यः
षष्ठी	गजस्य	गजयोः	गजानाम्
सप्तमी	गजे	गजयोः	गजेषु
सम्बोधन	हे गज	हे गजौ	हे गजाः

राम शब्दः

रामः	रामौ	रामाः
रामम्	रामौ	रामान्
रामेण	रामाभ्याम्	रामैः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
रामे	रामयोः	रामेषु
हे राम	हे रामौ	हे रामाः

कृष्ण, देव, अजगर, अध्यक्ष, अन्तराय, अब्द, बालक, अमात्य, अरुण, अर्थ, आकर, आचार्य, आभीर, आय, आयुध, उपल, ओदन, कच्छप, कूर्म, कट, कर्णधार, कलङ्क, कलह, काक, काम, काल, कुक्कुर, कुञ्जर, कुम्भ, कोण, कोदण्ड, कोष, क्रोश, क्षण, क्षुर, खञ्जन, गुच्छ, घातक, चटक, चर्मकार, चारण, छाग, जम्बुक, जाल्म, जीमूत, डिम्ब, तण्डुल, तस्कर, ताण्डव, ताल दत्तक, दम्भ, दायाद, धनिक, मुकुन्द, पाठक, अध्यापक, दनुज, दैत्य, स्वाध्याय, अनुभाव, विभाव, भाव, भव, अभाव, सहाय, प्रचय, निकाय, निश्चय, अनिश्चय, ध्वज, नकुल, नक्र, नाद, कंस, वसुदेव, पक्ष, पण, पयोद, पर्यङ्क, पारावत, पाश, पिक, पुञ्ज, पुरस्कार, पौर, विडाल, भक्त, भट, भृत्य, मठ, मञ्च, मण्डप, मण्डूक, मराल, मस्तिष्क, मशक, मानव, माष, मृग, यक्ष, यव, यान्त्रिक, योध, रसाल, लगुड, ललाट, यजमान, लुब्धक, वंश, वयस्य, वर, वल्मीक, वारण, वासर, विनिमय, वृष, व्यतिकर, व्याज, शाक, शावक, श्वापद, वृष, सचिव, षण्ड, सहाय, सूद, सैनिक, स्तम्भ, स्तूप, स्तेन, स्यन्दन, हय, स्वेद, अधिकार, विहार, प्रहार, संहार, उपहार, अनुहार, नीहार, आसार, प्रसार, संसार, आचार, व्यवहार, विचार, संचार, परिहार, मार, तुषार, आकार, प्रकार, सदाचार, समाहार, आधार, आहार, आदर, आदि अकारान्त शब्दों के रूप अज के समान चलते हैं।

आकारान्त विश्वपा—देवता, सूर्य, चन्द्रमा संसार का रक्षक

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमी	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
सम्बोधन	हे विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः

(क) गोपा, सोमपा, धूम्रपा, बलदा, शंखध्मा, इत्यादि धातु से बने हुए आकारान्त शब्दों के रूप विश्वपा के समान चलते हैं।

(ख) धातु से बने हुए होने पर आकारान्त शब्दों में विभक्तियाँ जुड़ जाती हैं। यथा—हाहा—गन्धर्व विशेष।

प्रथमा	हाहा	हाहौ	हाहाः
द्वितीया	हाहाम्	हाहौ	हाहाः
तृतीया	हाहा	हाहाभ्याम्	हाहाभिः
चतुर्थी	हाहै	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
पञ्चमी	हाहाः	हाहाभ्याम्	हाहाभ्यः
षष्ठी	हाहाः	हाहौः	हाहाम्
सप्तमी	हाहे	हाहौः	हाहासु
सम्बोधन	हाहाः	हाहौ	हाहाः

इकारान्त पुंल्लिङ्ग हरि—भगवान्

प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरिभिः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे	हे हरी	हे हरयः

अतिथि, मुनि, अरि, अलि, असि, अहि, ऋषि, कवि, कुक्षि, कृमि, गिरि, ग्रन्थि, धूर्जटि, ध्वनि, निधि, पाणि, बलि, यति, रवि, रश्मि, विधि, व्याधि और सारथि शब्द के रूप हरि के समान होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सखि—मित्र

प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	हे सखे	सखायौ	सखायः

पति

प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्युः	पत्योः	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
सम्बोधन	हे पते	पती	पतयः

पति शब्द का अन्य शब्दों के साथ समास होने पर 'हरि' शब्द के समान रूप होते हैं। यथा—नृपति, भूपति, महीपति, श्रीपति, सीतापति, सेनापति इत्यादि शब्दों के रूप हरि के समान चलते हैं।

ईकारान्त सुधी—बुद्धिमान व्यक्ति

प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधीभिः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पञ्चमी	सुधियः	सुधिभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
सम्बोधन	हे सुधीः	हे सुधियौ	हे सुधियः

शुष्की, पक्की, शुद्धधी और परमधी के रूप भी सुधी के समान होते हैं।

ईकारान्त ग्रामणी—गाँव का प्रधान पुरुष

प्रथमा	ग्रामणीः	ग्रामण्यौ	ग्रामण्यः
द्वितीया	ग्रामण्यम्	ग्रामण्यौ	ग्रामण्यः
तृतीया	ग्रामण्या	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभिः
चतुर्थी	ग्रामण्ये	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभ्यः
पञ्चमी	ग्रामण्यः	ग्रामणीभ्याम्	ग्रामणीभ्यः
षष्ठी	ग्रामण्यः	ग्रामण्योः	ग्रामण्याम्
सप्तमी	ग्रामण्याम्	ग्रामण्योः	ग्रामणीषु
सम्बोधन	हे ग्रामणीः	हे ग्रामण्यौ	हे ग्रामण्यः

सेनानी, अग्रणी, प्रधी, उन्नी आदि शब्दों के रूप ग्रामणी के समान होते हैं।

ईकारान्त नी—ले चलनेवाला

प्रथमा	नीः	नियौ	नियः
द्वितीया	नियम्	नियौ	नियः
तृतीया	निया	नीभ्याम्	नीभिः
चतुर्थी	निये	नीभ्याम्	नीभ्यः
पञ्चमी	नियः	नीभ्याम्	नीभ्यः
षष्ठी	नियः	नियोः	नियाम्
सप्तमी	नियाम्	नियो	नीषु
सम्बोधन	हे नीः	हे नियौ	हे नियः

उकारान्त भानु—सूर्य

प्रथमा	भानुः	भानू	भानवः
द्वितीया	भानुम्	भानू	भानून्
तृतीया	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
चतुर्थी	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचमी	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
षष्ठी	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
सप्तमी	भानौः	भान्वोः	भानुषु
सम्बोधन	हे भानो	हे भानू	हे भानवः

अणु, इक्षु, इषु, ऋज्ञु, ऋतु, गुरु, गोमायु, जन्तु, तन्तु, तरु, दस्यु, धातु, परशु, पशु, पांशु, प्रभु, बन्धु, वटु, विन्दु, साधु, भिक्षु, मनु, मृत्यु, बाहु, वायु, विभु, विष्णु, वेणु, शत्रु, शिशु, सूनु, सेतु, हेतु इत्यादि शब्दों के रूप भानु के समान होते हैं।

ऊकारान्त अग्निभू—कार्तिकेय

प्रथमा	अग्निभूः	अग्निभुवौ	अग्निभुवः
द्वितीया	अग्निभुवम्	अग्निभुवौ	अग्निभुवः
तृतीया	अग्निभुवा	अग्निभूभ्याम्	अग्निभूभिः
चतुर्थी	अग्निभुवे	अग्निभूभ्याम्	अग्निभूभ्यः
पंचमी	अग्निभुवः	अग्निभूभ्याम्	अग्निभूभ्यः
षष्ठी	अग्निभुवः	अग्निभुवोः	अग्निभुवाम्
सप्तमी	अग्निभुवि	अग्निभुवोः	अग्निभूषु
सम्बोधन	हे अग्निभूः	हे अग्निभुवौ	हे अग्निभुवः

अधिभू, जितभू, प्रतिभू, मनोभू, (कामदेव), स्वभू-स्वयम्भू इत्यादि के रूप में अग्निभू के समान होते हैं।

करभू, खलपू, हम्भू, वर्षाभू, सुलू, हूहू इत्यादि शब्दों में उव् न होकर सन्धि-नियमानुसार विभक्तियाँ जोड़ दी जाती हैं। पर हूहू इत्यादि कई शब्दों की द्वितीया के एकवचन और बहुवचन क्रम से हूहूम् और हूहून् होते हैं। यथा—

सुलूः सुल्वौ सुल्वः इत्यादि

ऋकारान्त धातृ—ब्रह्मा

प्रथमा	धाता	धातारौ	धातारः
द्वितीया	धातारम्	धातारौ	धातॄन्
तृतीया	धात्रा	धातृभ्याम्	धातृभिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी	धात्रे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पंचमी	धातुः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातुः	धात्रोः	धातॄणाम्
सप्तमी	धातरि	धात्रोः	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः	हे धातारौ	हे धातारः

अधिष्ठातृ, कर्तृ, क्रेतृ, जेतृ, ज्ञातृ, द्रष्टृ, दातृ, विधातृ, श्रोतृ, सवितृ, त्वष्टृ, हन्तृ इत्यादि शब्दों के रूप धातृ के समान होते हैं।

ऋकारान्त पितृ—पिता

प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पंचमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	हे पितः	हे पितरौ	हे पितरः

ऋकारान्त भ्रातृ—भाई

प्रथमा	भ्राता	भ्रातरौ	भ्रातरः
द्वितीया	भ्रातरम्	भ्रातरौ	भ्रातॄन्
तृतीया	भ्रात्रा	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभिः
चतुर्थी	भ्रात्रे	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
पञ्चमी	भ्रातुः	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
षष्ठी	भ्रातुः	भ्रात्रोः	भ्रातॄणाम्
सप्तमी	भ्रातरि	भ्रात्रोः	भ्रातृषु
सम्बोधन	हे भ्रातः	हे भ्रातरौ	हे भ्रातरः

ऐकारान्त—रै—धन, द्रव्य

प्रथमा	राः	रायौ	रायः
द्वितीया	रायम्	रायौ	रायः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पञ्चमी	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	रायोः	रासु
सम्बोधन	हे राः	हे रायौ	हे रायः

ओकारान्त गो—गाय, पृथ्वी

प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु
सम्बोधन	हे गौः	हे गावौ	हे गावः

औकारान्त ग्लौ—चन्द्र

प्रथमा	ग्लौः	ग्लावौ	ग्लावः
द्वितीया	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लावः
तृतीया	ग्लावा	ग्लौभ्याम्	ग्लौभिः
चतुर्थी	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
पञ्चमी	ग्लावः	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्यः
षष्ठी	ग्लावः	ग्लावोः	ग्लावाम्
सप्तमी	ग्लावि	ग्लावोः	ग्लौषु
सम्बोधन	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लावः

ईकारान्त श्री—लक्ष्मी

प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी	श्रिये, श्रियै	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पञ्चमी	श्रियः, श्रियाः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी	श्रियः, श्रियाः	श्रियोः	श्रियाम्, श्रीणाम्
सप्तमी	श्रियि, श्रियाम्	श्रियोः	श्रीषु
सम्बोधन	हे श्रीः	हे श्रियौ	हे श्रियः

धी, भी, ह्री इत्यादि के रूप श्री के समान होते हैं।

उकारान्त धेनु—गाय

प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पञ्चमी	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
षष्ठी	धेन्वा, धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्-धेनौ:	धेन्वो	धेनुषु
सम्बोधन	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनवः

उडु, चञ्चु, तनु, रज्जु, रेणु, स्नायु आदि शब्दों के रूप धेनु के समान होते हैं।

ऊकारान्त—वधू

प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभिः
पञ्चमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
सम्बोधन	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः

चमू, पुनर्भू, श्वश्रू, प्रसू, वीरसू आदि शब्दों के रूप वधू के समान होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋकारान्त—मातृ

प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातॄः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	हे मातः	हे मातरौ	हे मातरः

दुहितृ, ननान्दृ, यातृ, स्वसृ शब्द के रूपों में स्वसृ के रूप धातृ शब्द के समान होते हैं। परन्तु भेद केवल इतना है कि द्वितीया के बहुवचन में स्वसॄन् में स्थान पर स्वसॄः बनता है और दुहितृ, ननान्दृ तथा यातृ के रूप मातृ के समान बनते हैं। जिन ऋकारान्त शब्दों के ई प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग रूप बनाये जाते हैं उनके रूप नदी की तरह होते हैं।

ऐकारान्त रै—धन

प्रथमा	राः	रायौ	रायः
द्वितीया	रायम्	रायौ	रायः
तृतीया	राया	राभ्याम्	राभिः
चतुर्थी	राये	राभ्याम्	राभ्यः
पचमी	रायः	राभ्याम्	राभ्यः
षष्ठी	रायः	रायोः	रायाम्
सप्तमी	रायि	रायोः	रासु
सम्बोधन	हे राः	हे रायौ	हे रायः

ओकारान्त द्यो—आकाश

प्रथमा	द्यौः	द्यावौ	द्यावः
द्वितीया	द्याम्	द्यावौ	द्याः
तृतीया	द्यवा	द्योभ्याम्	द्योभिः
चतुर्थी	द्यवे	द्योभ्याम्	द्योभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचमी	द्योः	द्योभ्याम्	द्योभ्यः
षष्ठी	द्योः	द्यवोः	द्यवाम्
सप्तमी	द्यवि	द्यवोः	द्योषु
सम्बोधन	हे द्यौः	हे द्यावौ	हे द्यावः

स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

आकारान्त—लता

प्रथमा	लता	लते	लताः
द्वितीया	लताम्	लते	लताः
तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः
पंचमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः
षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु
सम्बोधन	हे लते	हे लते	हे लताः

अर्चना, आत्मजा, आज्ञा, आशा, इच्छा, कनिष्ठा, कन्या, करुणा, कला, कलिका, कविता, कान्ता, कुलटा, कृतज्ञता, कृपा, क्षपा, क्षमा, क्षुधा, गङ्गा, गणिका, गुहा, ग्रीवा, घण्टिका, घृणा, चिता, चिन्ता, चेष्टा, छटा, छाया, जंघा, जनता, जाया, जिह्वा, जीविका, ज्योत्स्ना, तन्द्रा, तमिस्रा, तारा, दशा, द्राक्षा, नासा, पण्डा, पादुका, पुत्तलिका, प्रभा, प्रमदा, प्रार्थना, बालिका, भार्य्या, भाषा, मदिरा, महिला, माला, मुक्ता, मुद्रा, मृत्तिका, मेखला, यवनिका, यूथिका, रेखा, लज्जा, ललना, वसुधा, वाञ्छा, वासना, वार्ता, शय्या, शिक्षा, शिखा, शिला, शोभा, सभा, सिकता, सुधा, सेना, सेवा, हत्या इत्यादि शब्दों के रूप लता के समान होते हैं।

इकारान्त—मति

प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पंचमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्याः	मतिषु
सम्बोधन	हे मते	हे मती	हे मतयः

अंगुलि, अन्त्येष्टि, अवनति, उन्नति, ऋद्धि, कान्ति, कीर्ति, कृति, कृषि, केलि, क्षिति, खनि, गति, चक्रवृद्धि, चुल्लि, छवि, जन्मभूमि, जाति, तिथि, त्रुटि, द्युति, धरणि, धूलि, धृति, नीति, पंक्ति, प्रकृति, भूति, भूमि, मुक्ति, मूर्त्ति, युवति, रात्रि, रीति, रुचि, वर्ति, विपत्ति, वृत्ति, वृष्टि, शक्ति, शान्ति, स्मृति, सृष्टि, हानि इत्यादि शब्दों के रूप मति के समान होते हैं।

ईकारान्त—नदी

प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पंचमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः

अटवी, उर्व्वी, कठिनी, कदली, कामिनी, काली, गौरी, कुमारी, कौमुदी, गर्भिणी, गृहिणी, जननी, तटनी, तरंगिनी, तर्ज्जनी, तन्त्री, दासी, धरणी, धात्री, नगरी, नन्दिनी, नारी, पत्नी, पुरी, पुस्ती, पृथ्वी, भगिनी, मञ्जरी, महिषी, मही, युवती, रजनी, राज्ञी, लेखनी, वाणी, वापी, वाहिनी, विभावरी, शर्वरी, श्रेणी इत्यादि शब्दों के रूप नदी के समान होते हैं।

किन्तु अवी, तरी, तन्त्री, लक्ष्मी और स्तरी के प्रथमा एकवचन में विसर्ग भी होता है। यथा, अवीः, तरीः इत्यादि। शेष रूप नदी के समान होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईकारान्त—स्त्री

प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	{ स्त्रियम् स्त्रीम्	स्त्रियौ	{ स्त्रियः स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पंचमी	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
षष्ठी	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
सम्बोधन	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रियः

औकारान्त नौ—नाव, डोंगी

प्रथमा	नौः	नावौ	नावः
द्वितीया	नावम्	नावौ	नावः
तृतीया	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
चतुर्थी	नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
पंचमी	नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
षष्ठी	नावः	नावोः	नावाम्
सप्तमी	नावि	नावोः	नौषु
सम्बोधन	हे नौः	हे नावौ	हे नावः

स्वरान्त नपुंसक लिङ्ग

अकारान्त—फल

प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
तृतीया	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
चतुर्थी	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
पंचमी	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
षष्ठी	फलस्य	फलयोः	फलानाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	फले	फलयोः	फलेषु
सम्बोधन	हे फल	हे फले	हे फलानि

अघ, अङ्क, अङ्ग, अनङ्ग, अज्ञान, अध्यात्म, अन्तर, अन्तरीक्ष, अपत्य, अभ्रत, अरविन्द, अर्श, अश्रु, अहिफेन, आलवाल, आसन, इन्द्रिय, इन्धन, उत्तरीय, उत्पल, उदर, उद्यान, उपाधान, ऋण, औषध. धन, वित्त, रत्न, सुख, दुख, अरण्य, कानन, कार्य्य, कर्त्तव्य, नेत्र, पुष्प, वचन, नगर, चक्र, भूषण, तृण, मूल, रक्त, ताम्र, रजत, पुस्तक, वस्त्र, वसन, गृह, मुख, वदन, कमल, गीत, वक्त्र, नयन, क्षेत्र, गरल, अमृत, लक्षण, दुक्ल, पित्तल, चरित्र, व्रातथान, ललाट, अंगुलीयक, चूर्ण, खनित्र, पत्रि, बीज, विष, चित्त, अस्त्र, शस्त्र, लवण, व्याकरण, व्रण, व्रत, शव, शष्र, शस्य, शीर्ष, साध्य, सादृश्य, साहस, साहित्य, सुवर्ण, सोपान इत्यादि शब्दों के रूप फल के समान होते हैं।

आकारान्त श्रीपा—लक्ष्मी का रक्षक

प्रथमा	श्रीपम्	श्रीपे	श्रीपाणि
द्वितीया	श्रीपम्	श्रीपे	श्रीपाणि
तृतीया	श्रीपेण	श्रीपाभ्याम्	श्रीपैः
चतुर्थी	श्रीपाय	श्रीपाभ्याम्	श्रीपेभ्यः
पंचमी	श्रीपात्-द्	श्रीपाभ्याम्	श्रीपेभ्यः
षष्ठी	श्रीपस्य	श्रीपयोः	श्रीपाणाम्
सप्तमी	श्रीपे	श्रीपयोः	श्रीपेषु
सम्बोधन	हे श्रीपम्	हे श्रीपे	हे श्रीपाणि

इकारान्त अक्षि—आँख

प्रथमा	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
द्वितीया	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृतीया	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
चतुर्थी	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
पञ्चमी	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी	अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
सप्तमी	अक्षिण, अक्ष्णि	अक्ष्णोः	अक्षिषु
सम्बोधन	हे अक्षे, हे अक्षि	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि

इकारान्त वारि—जल

प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	हे वारे, हे वारि	हे वारिणी	हे वारीणि

ईकारान्त–सुधी—उत्तम ध्यानी कुल

प्रथमा	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
द्वितीया	सुधि	सुधिनी	सुधीनि
तृतीया	सुधिया, सुधिना	सुधिभ्याम्	सुधिभिः
चतुर्थी	सुधिये, सुधिने	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
पञ्चमी	सुधियः, सुधिनः	सुधिभ्याम्	सुधिभ्यः
षष्ठी	सुधियः, सुधिनः	सुधियोः, सुधिनोः	सुधियाम्, सुधिनाम्
सप्तमी	सुधियि, सुधिनि	सुधियोः, सुधिनोः	सुधिषु
सम्बोधन	हे सुधे, हे सुधि	हे सुधिनी	हे सुधीनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उकारान्त

उकारान्त मधु—मदिरा

प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सम्बोधन	हे मधो हे मधु	हे मधुनी	हे मधूनि

ऊकारान्त सुलू—अच्छा काटनेवाला हथियार

प्रथमा	सुलू	सुलुनी	सुलूनि
द्वितीया	सुलू	सुलुनी	सुलूनि
तृतीया	सुल्वा सुलुना	सुलुभ्याम्	सुलुभिः
चतुर्थी	सुल्वे सुलुने	सुलुभ्याम्	सुलुभ्यः
पंचमी	सुल्वः सुलनः	सुलुभ्याम्	सुलुभ्यः
षष्ठी	सुल्वः सुलनः	सुल्वोः सुलुनोः	सुल्वाम् सुलूनाम्
सप्तमी	सुल्वि सुलुनि	सुल्वोः सुलुनोः	सुलुषु
सम्बोधन	हे सुलो हे सुलु	हे सुलुनी	हे सुलूनि

ऋकारान्त धातृ—धारण करनेवाली वस्तु

प्रथमा	धातृ	धातृणी	धातॄणि
द्वितीया	धातृ	धातृणी	धातॄणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	धात्रा, धातृणा	धातृभ्याम्	धातृभिः
चतुर्थी	धात्रे, धातृणे	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
पंचमी	धातुः, धातृणः	धातृभ्याम्	धातृभ्यः
षष्ठी	धातुः, धातृणः	धात्रोः, धातृणोः	धातृणाम्
सप्तमी	धातरि, धातृणि	धात्रोः, धातृणोः	धातृषु
सम्बोधन	हे धातः, हे धातृ	हे धातृणी	हे धातृणि

हकारान्त विश्ववाह् और

हकारान्त विश्ववाह्—भगवान्

प्रथमा	विश्ववाट् ड्	विश्ववाहौ	विश्ववाहः
द्वितीया	विश्ववाहम्	विश्ववाहौ	विश्वौहः
तृतीया	विश्वौहा	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भिः
चतुर्थी	विश्वौहे	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः
पंचमी	विश्वौहः	विश्ववाड्भ्याम्	विश्ववाड्भ्यः
षष्ठी	विश्वौहः	विश्वौहोः	विश्वौहाम्
सप्तमी	विश्वौहि	विश्वौहोः	विश्ववाट्सु, विश्ववाट्त्सु
सम्बोधन	हे विश्ववाट्, हे विश्ववाड्	हे विश्ववाहौ	हे विश्ववाहः

हकारान्त अनडुह्—बैल

प्रथमा	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
द्वितीया	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृतीया	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
चतुर्थी	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचमी	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
षष्ठी	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
सप्तमी	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु
सम्बोधन	हे अनड्वान्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः

वकारान्त सुदिव्—निर्मलाकाश दिवस

प्रथमा	सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः
द्वितीया	सुदिवम्	सुदिवौ	सुदिवः
तृतीया	सुदिवा	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः
चतुर्थी	सुदिवे	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
पंचमी	सुदिवः	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
षष्ठी	सुदिवः	सुदिवोः	सुदिवाम्
सप्तमी	सुदिवि	सुदिवोः	सुद्युषु
सम्बोधन	हे सुद्यौः	हे सुदिवौ	हे सुदिवः

व्यञ्जनान्त—हलन्त पुलिंग शब्द

संस्कृत साहित्य में व्यञ्जनान्त शब्द भी पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त होते हैं। अतः यहाँ आवश्यक व्यञ्जनान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप दिये जाते हैं।

हकारान्त लिह्—चाटनेवाला

प्रथमा	लिट्-ड्	लिहौ	लिहः
द्वितीया	लिहम्	लिहौ	लिहः
तृतीया	लिहा	लिड्भ्याम्	लिड्भिः
चतुर्थी	लिहे	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
पंचमी	लिहः	लिड्भ्याम्	लिड्भ्यः
षष्ठी	लिहः	लिहोः	लिहाम्
सप्तमी	लिहि	लिहोः	लिट्सु / लिट्त्सु
सम्बोधन	हे लिट्-ड्	हे लिहौ	हे लिहः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हकारान्त दुह्—दुहनेवाला

प्रथमा	धुक्-धुग्	दुहौ	दुहः
द्वितीया	दुहम्	दुहौ	दुहः
तृतीया	दुहा	धुग्भ्याम्	धुग्भिः
चतुर्थी	दुहे	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
पंचमी	दुहः	धुग्भ्याम्	धुग्भ्यः
षष्ठी	दुहः	दुहोः	दुहाम्
सप्तमी	दुहि	दुहोः	धुक्षु
सम्बोधन	हे धुक्-ग्	हे दुहौ	हे दुहः

नकारान्त राजन्—राजा

प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पंचमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	{ राज्ञि { राजनि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः

नकारान्त आत्मन्—आत्मा

प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः
चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पंचमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
सम्बोधन	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मानः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकारान्त वृत्रहन्—इन्द्र भगवान्

प्रथमा	वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः
द्वितीया	वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	वृत्रघ्नः
तृतीया	वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभिः
चतुर्थी	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
पंचमी	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
षष्ठी	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
सप्तमी	वृत्रघ्नि	वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु
सम्बोधन	हे वृत्रहन्	हे वृत्रहणौ	हे वृत्रहणः

नकारान्त मघवन्—इन्द्र

प्रथमा	मघवा	मघवानौ	मघवानः
द्वितीया	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
तृतीया	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
चतुर्थी	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पंचमी	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
षष्ठी	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
सप्तमी	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
सम्बोधन	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवानः

नकारान्त श्वन्—कुक्कुर

प्रथमा	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वितीया	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृतीया	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
चतुर्थी	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
पंचमी	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
षष्ठी	शुनः	शुनोः	शुनाम्
सप्तमी	शुनि	शुनोः	श्वसु
सम्बोधन	हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकारान्त युवन्—युवक

प्रथमा	युवा	युवानौ	युवानः
द्वितीया	युवानम्	युवानौ	यूनः
तृतीया	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
चतुर्थी	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
पंचमी	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
षष्ठी	यूनः	यूनोः	यूनाम्
सप्तमी	यूनि	यूनोः	युवसु
सम्बोधन	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः

नकारान्त पथिन्—मार्ग

प्रथमा	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पंचमी	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
षष्ठी	पथः	पथोः	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु
सम्बोधन	हे पन्थाः	हे पन्थानौ	हे पन्थानः

जकारान्त

जकारान्त ऋत्विज्—होम करनेवाला

प्रथमा	ऋत्विक्-ग्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
द्वितीया	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
तृतीया	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भिः
चतुर्थी	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
पंचमी	ऋत्विजः	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्यः
षष्ठी	ऋत्विजः	ऋत्विजोः	ऋत्विजाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	ऋत्विजि	ऋत्विजोः	ऋत्विक्षु
सम्बोधन	हे ऋत्विक्-ग्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः

चकारान्त पयोमुच—बादल

प्रथमा	पयोमुक्, पयोमुग्	पयोमुचौ	पयोमुचः
द्वितीया	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुचः
तृतीया	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भिः
चतुर्थी	पयोमुचे	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
पंचमी	पयोमुचः	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भ्यः
षष्ठी	पयोमुचः	पयोमुचोः	पयोमुचाम्
सप्तमी	पयोमुचि	पयोमुचोः	पयोमुक्षु
सम्बोधन	हे पयोमुक्, हे पयोमुग्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुचः

तकारान्त महत्—बड़ा, श्रेष्ठ

प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृतीया	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
चतुर्थी	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
पंचमी	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
षष्ठी	महतः	महतोः	महताम्
सप्तमी	महति	महतोः	महत्सु
सम्बोधन	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्तः

तकारान्त भवत्—आप

प्रथमा	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वितीया	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
तृतीया	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
चतुर्थी	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
पंचमी	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी	भवतः	भवतोः	भवताम्
सप्तमी	भवति	भवतोः	भवत्सु
सम्बोधन	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्तः

तकारान्त भगवत्—परमेश्वर

प्रथमा	भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः
द्वितीया	भगवन्तम्	भगवन्तौ	भगवतः
तृतीया	भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः
चतुर्थी	भगवते	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
पंचमी	भगवतः	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
षष्ठी	भगवतः	भगवतोः	भगवताम्
सप्तमी	भगवति	भगवतोः	भगवत्सु
सम्बोधन	हे भगवन्	हे भगवन्तौ	हे भगवन्तः

तकारान्त भूभृत्—राजा, पर्वत

प्रथमा	भूभृत्-द्	भूभृतौ	भूभृतः
द्वितीया	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृतीया	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
चतुर्थी	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
पंचमी	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
षष्ठी	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
सप्तमी	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु
सम्बोधन	हे भूभृत्-द्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः

सकारान्त पुम्स्—पुरुष

प्रथमा	पुमान्	पुमांसौ	पुमांस
द्वितीया	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः
तृतीया	पुंसा	पुम्भ्याम्	पुम्भिः
चतुर्थी	पुंसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
पंचमी	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
षष्ठी	पुंसः	पुसोः	पुंसाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	पुंसि	पुंसोः	पुंसु
सम्बोधन	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः

सकारान्त वेधस्—ब्रह्माजी

प्रथमा	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
द्वितीया	वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
तृतीया	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
चतुर्थी	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
पंचमी	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
षष्ठी	वेधसः	वेधसोः	वेधसाम्
सप्तमी	वेधसि	वेधसोः	{ वेधस्सु वेधःसु
सम्बोधन	हे वेधः	हे वेधसौ	हे वेधसः

शकारान्त तादृश्—उसके समान

प्रथमा	तादृक्	तादृशौ	तादृशः
द्वितीया	तादृशम्	तादृशौ	तादृशः
तृतीया	तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः
चतुर्थी	तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
पंचमी	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
षष्ठी	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
सप्तमी	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु
सम्बोधन	हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृशः

यादृश्, मादृश्, भवादृश्, त्वादृश्, एतादृश्, इत्यादि के रूप तादृश के समान होते हैं।

सकारान्त विद्वस्—विद्वान

प्रथमा	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वितीया	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचमी	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
षष्ठी	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
सप्तमी	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
सम्बोधन	हे विद्वन्	हे विद्वांसौ	हे विद्वांसः

सकारान्त श्रेयस्—अधिक प्रशंसनीय

प्रथमा	श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः
द्वितीया	श्रेयांसम्	श्रेयांसौ	श्रेयसः
तृतीया	श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः
चतुर्थी	श्रेयसे	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
पंचमी	श्रेयसः	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
षष्ठी	श्रेयसः	श्रेयसोः	श्रेयसाम्
सप्तमी	श्रेयसि	श्रेयसोः	{ श्रेयस्सु श्रेयःसु
सम्बोधन	हे श्रेयन्	हे श्रेयांसौ	हे श्रेयांसः

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिंग शब्द

हकारान्त उपानह्—जूता

प्रथमा	उपानत्–द्	उपानहौ	उपानहः
द्वितीया	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृतीया	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
चतुर्थी	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पंचमी	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
षष्ठी	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
सप्तमी	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
सम्बोधन	हे उपानत्–द्	हे उपानहौ	हे उपानहः

वकारान्त दिव्—आकाश

प्रथमा	द्यौः	दिवौ	दिवः
द्वितीया	दिवम्	दिवौ	दिवः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
चतुर्थी	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
पंचमी	दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
षष्ठी	दिवः	दिवोः	दिवाम्
सप्तमी	दिवि	दिवोः	द्युषु
सम्बोधन	हे द्यौः	हे दिवौ	हे दिवः

रेफान्त गिर्—वचन

प्रथमा	गीः	गिरौ	गिरः
द्वितीया	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृतीया	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
चतुर्थी	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पंचमी	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
षष्ठी	गिरः	गिरोः	गिराम्
सप्तमी	गिरि	गिरोः	गीर्षु
सम्बोधन	हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः

तकारान्त सरित्—नदी

प्रथमा	सरित्-द्	सरितौ	सरितः
द्वितीया	सरितम्	सरितौ	सरितः
तृतीया	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
चतुर्थी	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
पंचमी	सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
षष्ठी	सरितः	सरितोः	सरिताम्
सप्तमी	सरिति	सरितोः	सरित्सु
सम्बोधन	हे सरित्-द्	हे सरितौ	हे सरितः

चकारान्त वाच्—बात

प्रथमा	वाक्-ग्	वाचौ	वाचः
द्वितीया	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृतीया	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पंचमी	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
षष्ठी	वाचः	वाचोः	वाचाम्
सप्तमी	वाचि	वाचोः	वाक्षु
सम्बोधन	हे वाक्-ग्	हे वाचौ	हे वाचः

शकारान्त दिश्—दिशा

प्रथमा	दिक्-दिग्	दिशौ	दिशः
द्वितीया	दिशम्	दिशौ	दिशः
तृतीया	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
चतुर्थी	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
पंचमी	दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
षष्ठी	दिशः	दिशोः	दिशाम्
सप्तमी	दिशि	दिशोः	दिक्षु
सम्बोधन	हे दिक्-ग्	हे दिशौ	हे दिशः

षकारान्त आशिष्—आशीर्वाद

प्रथमा	आशीः	आशिषौ	आशिषः
द्वितीया	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
तृतीया	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
चतुर्थी	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पंचमी	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
षष्ठी	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
सप्तमी	आशिषि	आशिषोः	आशीष्षु / आशीःषु
सम्बोधन	हे आशीः	हे आशिषौ	हे आशिषः

रेफान्त वार्—पानी

प्रथमा	वाः	वारी	वारि
द्वितीया	वाः	वारी	वारि
तृतीया	वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः
चतुर्थी	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चमी	वारः	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
षष्ठी	वारः	वारोः	वाराम्
सप्तमी	वारि	वारोः	वार्षु
सम्बोधन	हे वाः	हे वारी	हे वारि

नकारान्त अहन्—दिन

प्रथमा	अहः	अह्नी–अहनी	अहानि
द्वितीया	अहः	अह्नी–अहनी	अहानि
तृतीया	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पञ्चमी	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
सप्तमी	अह्नि	अह्नोः	अहस्सु / अहःसु
सम्बोधन	हे अहः	हे अह्नी / हे अहनी	हे अहानि

तकारान्त ददत्—दाता

प्रथमा	ददत्–द्	ददती	ददति / ददन्ति
द्वितीया	ददत्–द्	ददती	ददन्ति
तृतीया	ददता	ददद्भ्याम्	दददि्भः
चतुर्थी	ददते	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
पंचमी	ददतः	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
षष्ठी	ददतः	ददतोः	ददताम्
सप्तमी	ददति	ददतोः	ददत्सु
सम्बोधन	हे ददत्–द्	हे ददती	हे ददति / हे ददन्ति

तकारान्त पचत्—पकानेवाला

प्रथमा	पचत्–द्	पचन्ती	पचन्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया	पचत्–द्	पचन्ती	पचन्ति
तृतीया	पचता	पचद्भ्याम्	पचद्भिः
चतुर्थी	पचते	पचद्भ्याम्	पचद्भ्यः
पञ्चमी	पचतः	पचद्भ्याम्	पचद्भ्यः
षष्ठी	पचतः	पचतोः	पचताम्
सप्तमी	पचति	पचतोः	पचत्सु
सम्बोधन	हे पचत्–द्	हे पचन्ती	हे पचन्ति

षकारान्त चक्षुष्—नेत्र

प्रथमा	चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
द्वितीया	चक्षुः	चक्षुषी	चक्षूंषि
तृतीया	चक्षुषा	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भिः
चतुर्थी	चक्षुषे	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
पञ्चमी	चक्षुषः	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
षष्ठी	चक्षुषः	चक्षुषोः	चक्षुषाम्
सप्तमी	चक्षुषि	चक्षुषोः	{ चक्षुःषु चक्षुष्षु
सम्बोधन	हे चक्षुः	हे चक्षुषी	हे चक्षूंषि

सकारान्त पयस्—दूध या पानी

प्रथमा	पयः	पयसी	पयांसि
द्वितीया	पयः	पयसी	पयांसि
तृतीया	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
चतुर्थी	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पञ्चमी	पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
षष्ठी	पयसः	पयसोः	पयसाम्
सप्तमी	पयसि	पयसोः	{ पयस्सु पयःसु
सम्बोधन	हे पयः	हे पयसी	हे पयांसि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वनाम शब्द

संस्कृत में सर्वनाम शब्दों की संख्या ३५ हैं। इनमें कुछ सर्वनाम शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी के समान संज्ञाओं के बदले प्रयुक्त होते हैं। कुछ विशेषणों के समान भी व्यवहार में लाये जाते हैं। सर्वनाम शब्दों की तालिका निम्न प्रकार है—

१. सर्व २. विश्व ३. उभ ४. उभय ५. डतर अर्थात् डतर जोड़कर बनाये हुए शब्द यथा कतर, यतर इत्यादि ६. डतम अर्थात् डतम जोड़कर बनाये हुए शब्द; यथा कतम, यतम इत्यादि ७. अन्य ८. अन्यतर ९. इतर १०. त्वत् ११. त्व १२. नेम १३. सम १४. सिम १५. पूर्व १६. पर १७ अवर १८. दक्षिण १९. उत्तर २०. अपर २१. अधर २२. स्व. २३. अन्तर २४ त्यद् २५. तद् २६. यद् २७. एतद् २८. इदम् २९. अदस् ३०. एक ३१. द्वि ३२. युष्मद् ३३. अस्मद् ३४. भवत् ३५. किम्।

इनमें त्वत और त्व दोनों ही अन्य के पर्याय हैं। नेम अर्ध का और सम सर्व का पर्याय है।

यह शब्द के लिये संस्कृत में इदम् और एतद् शब्द हैं। इसी प्रकार वह के लिये भी दो शब्द हैं तद् और अदस्। इनके प्रयोगों के सम्बन्ध में निम्न नियम प्रचलित हैं।

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्ट तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

अर्थात् इदम् शब्द के रूपों का प्रयोग तभी करना चाहिए जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध करना हो। यदि किसी बहुत ही निकटस्थ वस्तु का बोध करना हो तो एतद् शब्द के रूपों का प्रयोग करना उपयुक्त है। दूरस्थ वस्तु का बोध कराने के लिए अदस् शब्द के रूप तथा जो वस्तु सामने नहीं—परोक्ष है उसके ज्ञान के लिए तद् शब्द के रूपों का प्रयोग अधिक संगत है। जैसे—यदि दो पुरुष पास बैठे हुए हैं तो जो बहुत निकट बैठा है उसके विषय में एतद् शब्द और जो जरा दूर है उसके विषय में इदम् शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति दूर खड़ा है और उसके विषय में कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बात कहनी है तो अदस् शब्द का प्रयोग करेंगे। तद् शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के विषय में होगा जो इस समय दृष्टिगोचर नहीं है।

सर्वनाम शब्दों के रूप नीचे लिखे जाते हैं।

सर्व—पुलिङ्ग

प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

सर्व—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु
सम्बोधन	हे सर्वे	हे सर्वे	हे सर्वाः

सर्व—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु
सम्बोधन	हे सर्व	हे सर्वौ	हे सर्वे

विश्व, अन्य, इतर, कतर, अन्यतर इत्यादि शब्दों के रूप सर्व शब्द के समान चलेंगे।

इदम्—पुंलिङ्ग

प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
तृतीया	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

इदम्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	इयम्	इमे	इमा
द्वितीया	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमाः, एताः
तृतीया	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पञ्चमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः, एनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु

इदम्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्	इमे	इमानि
तृतीया	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एतद्—पुंलिङ्ग

प्रथमा	एषः	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्
तृतीया	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पञ्चमी	एतस्मात्, एतस्माद्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

एतद्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	एषा	एते	एताः
द्वितीया	एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः
तृतीया	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
चतुर्थी	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पञ्चमी	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
षष्ठी	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
सप्तमी	एतस्याम्	एतयोः; एनयोः	एतासु

एतद्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	एतत्, एतद्	एते	एतानि
द्वितीया	एतत्, एतद् एनत्, एनद्	एते, एने	एतानि, एनानि
तृतीया	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्माम्	एतेभ्यः
पंचमी	एतस्माद्, एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	ऐतेषु

तद्—पुंलिङ्ग

प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

तद्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	सा	ते	ताः
द्वितीया	ताम्	ते	ताः
तृतीया	तया	ताभ्याम्	ताभिः
चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पंचमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
षष्ठी	तस्याः	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्याम्	तयोः	तासु

तद्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	तत्	ते	तानि
द्वितीया	तत्	ते	तानि
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

अदस्—पुंलिङ्ग

प्रथमा	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	अमुम्	अमू	अमून्
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
चतुर्थी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पचमी	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

अदस्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	असौ	अमू	अमूः
द्वितीया	अमूम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पंचमी	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
षष्ठी	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमी	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

अदस्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	अदः	अमू	अमूनि
द्वितीया	अदः	अमू	अमूनि
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पंचमी	अमुष्मात	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

यद्—पुंलिङ्ग

प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्-द्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	या	ये	याः
द्वितीया	याम्	ये	याः
तृतीया	यया	याभ्याम्	याभिः
चतुर्थी	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
पंचमी	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
षष्ठी	यस्याः	ययोः	यासाम्
सप्तमी	यस्याम्	ययोः	यासु

यद्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	यत्	ये	यानि
द्वितीया	यत्	ये	यानि
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

किम्—पुंलिङ्ग

प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पंचमी	कस्मात्, द्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

किम्—स्त्रीलिङ्ग

प्रथमा	का	के	काः
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पंचमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
षष्ठी	कस्याः	कयोः	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयोः	कासु

किम्—नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	किम्	के	कानि
द्वितीया	किम्	के	कानि
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पंचमी	कस्मात्-द्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

युष्मद्—पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, और नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पंचमी	त्वत्, द्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम् वः
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

अस्मद्—पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग, और नपुंसक लिङ्ग

प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पंचमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संख्या वाचक शब्द

संस्कृत में संख्या वाचक शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ आवश्यक संख्या वाचक शब्दों के रूप दिये जाते हैं। एक शब्द के रूप केवल एकवचन और तीनों लिङ्गों में होते हैं।

एकशब्द—एक अर्थ का वाचक

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	एकवचन	एकवचन	एकवचन
प्रथमा	एकः	एकम्	एका
द्वितीया	एकम्	एकम्	एकाम्
तृतीया	एकेन	एकेन	एकया
चतुर्थी	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
पंचमी	एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः
षष्ठी	एकस्य	एकस्य	एकस्याः
सप्तमी	एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्

द्वि शब्द के रूप केवल द्विवचन में तथा तीनों लिङ्गों में होते हैं। नपुंसक लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में एक-से रूप होते हैं।

द्वि—दो

	पुंलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग
	द्विवचन	द्विवचन
प्रथमा	द्वौ	द्वे
द्वितीया	द्वौ	द्वे
तृतीया	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
चतुर्थी	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
पंचमी	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्
षष्ठी	द्वयोः	द्वयोः
सप्तमी	द्वयोः	द्वयोः

त्रि शब्द के रूप केवल बहुवचन में होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रि—तीन

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्रयः	त्रीणि	तिस्रः
द्वितीया	त्रीन्	त्रीणि	तिस्रः
तृतीया	त्रिभिः	त्रिभिः	तिसृभिः
चतुर्थी	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
पंचमी	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	तिसृभ्यः
षष्ठी	त्रयाणाम्	त्रयाणाम्	तिसृणाम्
सप्तमी	त्रिषु	त्रिषु	तिसृषु

चतुर (चार)

चतुर् शब्द के रूप तीनों लिङ्गों में केवल बहुवचन में ही होते हैं।

	पुंल्लिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
	बहुवचन	बहुवचन	बहुवचन
प्रथमा	चत्वारः	चत्वारि	चतस्रः
द्वितीया	चतुरः	चत्वारि	चतस्रः
तृतीया	चतुर्भिः	चतुर्भिः	चतसृभिः
चतुर्थी	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
पंचमी	चतुर्भ्यः	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः
षष्ठी	चतुर्णाम्	चतुर्णाम्	चतसृणाम्
सप्तमी	चतुर्षु	चतुर्षु	चतसृषु

पञ्चन् और इससे आगे वाली सभी संख्याओं में शब्द रूप केवल बहुवचन में और तीनों लिङ्गों में समान होते हैं।

पञ्चन्—पाँच

पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

	बहुवचन
प्रथमा	पञ्च
द्वितीया	पञ्च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	पञ्चभिः
चतुर्थी	पञ्चभ्यः
पंचमी	पञ्चभ्यः
षष्ठी	पञ्चानाम्
सप्तमी	पञ्चसु

षष्—छः **सप्तन्—सात**

पुंल्लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

	बहुवचन	
प्रथमा	षट्	सप्त
द्वितीया	षट्	सप्त
तृतीया	षड्भिः	सप्तभिः
चतुर्थी	षड्भ्यः	सप्तभ्यः
पंचमी	षड्भ्यः	सप्तभ्यः
षष्ठी	षण्णाम्	सप्तानाम्
सप्तमी	षट्सु	सप्तसु

अष्टन्—आठ

पुंल्लिङ्ग, नपुंसक लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

केवल बहुवचन

प्रथमा	अष्टौ, अष्ट
द्वितीया	अष्टौ, अष्ट
तृतीया	अष्टाभिः, अष्टभिः
चतुर्थी	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
पंचमी	अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः
षष्ठी	अष्टानाम्
सप्तमी	अष्टासु, अष्टसु

नवन्, दशन्, एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, चतुर्दशन्, पंचदशन्, षोडशन्, सप्तदशन्, अष्टादशन् शब्दों के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिङ्गों में एक-से होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊनविंशति से लेकर विंशति में अन्त होने वाले संख्यावाचक शब्दों के रूप केवल एक वचन में ही ह्रस्व इकारान्त रुचि के समान होते हैं। यथा—

विंशति

	एकवचन
प्रथमा	विंशतिः
द्वितीया	विंशतिम्
तृतीया	विंशत्या
चतुर्थी	विंशत्यै, विंशतये
पंचमी	विंशत्याः, विंशतेः
षष्ठी	विंशत्याः, विंशतेः
सप्तमी	विंशत्याम्, विंशतौ

त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पंचाशत् तथा शत् में अन्त होनेवाले अन्य संख्यावाचक शब्दों के रूप 'सरित्' के समान होते हैं।

	त्रिंशत् एकवचन	चत्वारिंशत् एकवचन
प्रथमा	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
द्वितीया	त्रिंशतम्	चत्वारिंशतम्
तृतीया	त्रिंशता	चत्वारिंशता
चतुर्थी	त्रिंशते	चत्वारिंशते
पंचमी	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
षष्ठी	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
सप्तमी	त्रिंशति	चत्वारिंशति

षष्टि, सप्तति, अशीति, नवति इत्यादि इकारान्त संख्यावाचक शब्दों के रूप 'त्रिंशति' के समान चलते हैं।

	षष्टि एकवचन	सप्तति एकवचन
प्रथमा	षष्टिः	सप्ततिः
द्वितीया	षष्टिम्	सप्ततिम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया	षष्ट्या	सप्तत्या
चतुर्थी	षष्ठ्यै, षष्ठये	सप्तत्यै, सप्ततये
पंचमी	षष्ठ्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
षष्ठी	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
सप्तमी	षष्ट्यां, षष्टौ	सप्तत्याम्, सप्ततौ

शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, अर्बुद, पद्म, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध, शब्द केवल नपुंसकलिङ्ग में होते हैं, और इनके रूप फल के समान तीनों वचनों में चलते हैं। कोटि शब्द के रूप रुचि के समान होते हैं।

क्रमवाचक Ordinals

(क) एक, द्वि, त्रि, चतुर् और षष् के क्रमवाचक अनियमित हैं। पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन् और दशन् के क्रमवाचक न् हटाकर म लगाने से बनते हैं। यथा पञ्चमः, सप्तमः, अष्टमः, नवमः और दशमः।

(ख) एकादशन् से नवदशन् (ऊनविंशति) तक केवल न् हटाने से क्रमवाचक शब्द बन जाते हैं। यथा—एकादशः, द्वादशः, त्रयोदशः, चतुर्दशः, पञ्चदशः, षोडशः, सप्तदशः, अष्टादशः, नवदशः—एकोनविंश—एकोनविंशतितमः।

(ग) विंशति से ऊपर तम लगाने से अथवा विंशति के ति और शेष व्यञ्जन के हटाने से क्रमवाचक संख्या शब्द बनते हैं। इस अवस्था में संयुक्त गणना-वाचकों का अन्त्य स्वर अ में बदल जाता है। परन्तु षष्ठि, सप्तति, अशीति और नवति को तम लगाने से ही क्रमवाचक शब्द बनते हैं। यथा—विंशत्तितमः, विंशः, त्रिंशत्तमः चत्वारिंशत्तमः, षष्टितमः, एकषष्टिः—एकषष्टितमः, शततमः, सहस्रतमः—इत्यादि।

एक शब्द के क्रमवाचक प्रथमः, आदिमः, अग्रिमः आदि, द्वि के द्वितीयः त्रि के तृतीयः चतुर के चतुर्थः और षष् के षष्ठः होते हैं। यथा—

क्रमवाचक

संख्या	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
एक	प्रथमः	प्रथमा	प्रथमम्
द्वि	द्वितीयः	द्वितीया	द्वितीयम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर	चतुर्थः	चतुर्थी	चतुर्थम्
षष्ठ	षष्ठः	षष्ठी	षष्ठम्
विंशति	विंशतितमः	विंशतितमी	विंशतितमम्

क्रमवाचक शब्दों के रूप पुंलिङ्गों में गज, नपुंसक लिङ्ग में फल और स्त्रीलिङ्ग में नदी के समान होते हैं।

तुलनात्मक विशेषण Degree of Comparison.

१—तुलना के द्वारा दो में से एक का उत्कर्ष जाना जाय तो शब्द के परे तरप् और अनेक में से एक का उत्कर्ष जाना जाय तो तमप् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। तरप और तमप् के लगने से ई और ऊ का विकल्प से ह्रस्व होता है।

२—गुणवाचक विशेषण के परे तरप् और तमप् के स्थान में क्रम से ईयसुन् और इष्ठन् प्रत्ययों को जोड़ा जाता है। ईयसुन् और इष्ठन् प्रत्ययों के लगने से मत्, वत्, विन्, इन् और तृ प्रत्ययान्त विशेषणों से इन प्रत्ययों का लोप हो जाता है। यथा—बलवान्—बलीयस्, बलिष्ठः, मतिमान्—मतीयस्, मतिष्ठः।

३—ईयसुन् और इष्ठन् प्रत्यय के आने पर व्यञ्जन के पूर्ववर्ती ऋकार के स्थान पर र् हो जाता है। यथा—कृश्—क्रशीयस्, क्रशिष्ठः, दृढ—द्रढीयस्, द्रढिष्ठः।

तालिका

कुशलः	कुशलतरः	कुशलतमः
विद्वान्	विद्वत्तरः	विद्वत्तमः
धनी	धनितरः	धनितमः
महान्	महत्तरः	महत्तमः
लघुः	लघुतरः, लघीयान्	लघुतमः, लघिष्ठः
पाचकः	पाचकतरः	पाचकतमः
पटुः	पटीयस् (पटीयान्)	पटिष्ठः
प्रशस्यः	श्रेयस् (श्रेयान्), ज्यायान्	श्रेष्ठः, ज्येष्ठः
वृद्धः	ज्यायस् (ज्यायान्)	ज्येष्ठः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तिकः	नेदीयस् (नेदीयान्)	नेदिष्ठः
अल्पः	अल्पीयस् (अल्पीयान्)	अल्पिष्ठः
	कनीयस् (कनीयान्)	कनिष्ठः
उरुः (विशाल)	वरीयस् (वरीयान्)	वरिष्ठः
क्षिप्रः (शीघ्र)	क्षेपीयस् (क्षेपीयान्)	क्षेपिष्ठः
क्षुद्रः	क्षोदीयस् (क्षोदीयान्)	क्षोदिष्ठः
गुरुः	गरीयस् (गरीयान्)	गरिष्ठः
दीर्घः	द्राघीयस् (द्राघीयान्)	द्राघिष्ठः
दूरः	द्रवीयस् (द्रवीयान्)	द्रविष्ठः
प्रियः	प्रेयस् (प्रेयान्)	प्रेष्ठः
तृप्रः	त्रपीयस् (त्रपीयान्)	त्रपिष्ठः
बहु	भूयस् (भूयान्)	भूयिष्ठः
बहुल	बंहीयस् (बंहीयान्)	बंहिष्ठः
बाढम्	साधीयस् (साधीयान्)	साधिष्ठः
युवन्	यवीयस् (यवीयान्)	यविष्ठः
	कनीयस् (कनीयान्)	कनिष्ठः
विपुलः	ज्यायस् (ज्यायान्)	ज्येष्ठः
वृन्दारकः	वृन्दीयस् (वृन्दीयान्)	वृन्दिष्ठः
स्थिरः	स्थेयस् (स्थेयान्)	स्थेष्ठः
स्थूलः	स्थवीयस् (स्थवीयान्)	स्थविष्ठः
स्फेर	स्फेयस् (स्फेयान्)	स्फेष्ठः
ह्रस्वः	ह्रसीयस् (ह्रसीयान्)	ह्रसिष्ठः
मृदु	म्रदीयस् (म्रदीयान्)	म्रदिष्ठः
भृश्	भ्रशीयस् (भ्रशीयान्)	भ्रशिष्ठः
पृथु	प्रथीयस्	प्रथिष्ठः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थोऽध्यायः

स्त्रीप्रत्यय

स्त्रीलिङ्ग शब्द दो प्रकार के होते हैं—मूल स्त्रीलिङ्ग शब्द और प्रत्यय के योग से बने स्त्रीलिङ्ग शब्द। जिन शब्दों का अर्थ मूल से ही स्त्रीवाचक है और रूप पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में नहीं होते, उनको मूल स्त्रीवाचक शब्द कहते हैं। यथा—

लता, रमा, माला, शाला, मति, कृति, धेनु, वधू, नौ, मातृ, विद्यु, आपद्, शरत्, प्रतिपत्, समिध्, उषस्, आशिष्, ककुभ्, वाच्, गिर् आदि।

प्रत्यय के योग से बने स्त्रीलिङ्ग शब्द मूल से स्त्रीलिङ्ग नहीं होते; किन्तु स्त्रीप्रत्यय जोड़ देने से उनमें स्त्रीत्व आता है; ऐसे शब्द जोड़ीदार होते हैं अर्थात् पुंल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनों लिंगों में व्यवहृत होते हैं। अतः—

स्त्रीप्रत्यय—वे प्रत्यय हैं, जिनके लगने पर पुंल्लिग शब्द स्त्रीलिंग हो जाते हैं स्त्रीप्रत्यय कुल आठ हैं—

टाप्, डाप्, चाप् (आ); ङीप्, ङीष्, ङीन् (ई); ऊङ् (ऊ) और ति।

टाप् (आ)

१ अजाद्यतष्टाप् ४।१।४—अज, एड, कोकिल, चटक, अश्व, मूषिक, बाल, होड, पाक, वत्स, विलात, पूर्वापहाण, अपरापहाण, कुञ्च, उष्णिह, देवविश, ज्येष्ठ, कनिष्ठ, मध्यम, दंष्ट्र शब्दों में तथा अकारान्त शब्दों में स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए टाप् (आ) प्रत्यय लगता है। यथा—

अज + टाप् = अज + आ = अजा (बकरी), अश्व + टाप् = अश्व + आ + अश्वा, चटक + टाप् = चटक + आ = चटका (गौरैया), एडक + आ = एडका (भेड़ी), मूषिक + आ = मूषिका, बाल + आ = बाला,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वत्स + आ = वत्सा (बछिया), होड + आ = होडा (छोकरी), मन्द + आ = मन्दा (कन्या), विलात + आ = विलाता (कन्या), कोकिल + आ = कोकिला, ज्येष्ठ + आ = ज्येष्ठा, कनिष्ठ + आ = कनिष्ठा, मध्यम + आ = मध्यमा।

अकारान्त शब्द—दक्ष—दक्षा, कृश—कृशा, चपल—चपला, क्रूर + क्रूरा, सरल—सरला, तरल—तरला, दृढ—दृढा, कुशल—कुशला, प्रबल—प्रबला, अचल—अचला, निपुण—निपुणा, मलिन—मलिना, चतुर—चतुरा, दक्षिण—दक्षिणा, उत्तर—उत्तरा, पूर्व—पूर्वा, पश्चिम—पश्चिमा, प्रथम—प्रथमा, द्वितीय—द्वितीया, तृतीय—तृतीया, मनोहर—मनोहरा, अनुकूल—अनुकूला, प्रतिकूल—प्रतिकूला।

२ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ७।३।४४—टाप् प्रत्यय जोड़ने के पूर्व यदि शब्द में 'क' अन्त में आवे और उसके पूर्व अ हो तो अ के स्थान में 'इ' हो जाती है। परन्तु यह नियम तभी लगता है, जब क किसी प्रत्यय का हो और टाप् के पूर्व सुप् प्रत्ययों में से कोई न लगा हो। यथा—

मूषक + टाप (आ) = मूषिका, कारक + आ = कारिका, सर्वक + आ = सर्विका, मायक + आ = मायिका, पाचक + आ = पाचिका, नाटक + आ = नाटिका, पालक + आ = पालिका, बालक + आ = बालिका, नायक + आ नायिका, दाक्षिणात्यक + आ = दाक्षिणात्यिका, गायक + आ = गायिका, घातक + आ = घातिका, परिव्राजक + आ = परिव्राजिका, दायक + आ = दायिका, दारक + आ = दारिका।

(क) यदि क किसी प्रत्यय का न हो तो पूर्ववर्ती अकार का इकार नहीं होता। यथा—

शङ्क + टाप् = शङ्क + आ = शङ्का—यहाँ पर 'क' किसी प्रत्यय का नहीं है, किन्तु धातु का है।

(ख) इत्व विधायक नियम के अपवाद—

३—आशिषि चोपसंख्यानम् (वा०) आशीर्वाद अर्थ में वर्तमान शब्दों को इत्व नहीं होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवतात्—जीवक + आ = जीवका, नन्दतात् = नन्दक = आ = नन्दका, भवतात् = भवक + आ = भावका ।

४ उत्तरपदलोपे चोपसंख्यानम् (वा०) उत्तरपद का जहाँ लोप हुआ हो, वहाँ इत्व नहीं होता । यथा—देवदत्तिका = देवका, यज्ञदत्तिका = यज्ञका ।

५ क्षिपका, ध्रुवका; नक्षत्र अर्थ में तारका, कन्यका और अष्टका शब्दों में ककार के पूर्ववर्ती अकार को इकार नहीं होता । यथा—अष्टक + आ = अष्टका, कन्यक + आ = कन्यका, तारक + आ = तारका, कारक + आ = कारका, चटक + आ = चटका, अधित्यक+आ = अधित्यका, उपत्यक + आ = उपत्यका ।

डाप् (आ)

६ **डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्** ४।१।१३—बहुव्रीहि समास होने से मन्नन्त शब्द और अन् प्रत्ययान्त शब्दों के उत्तर विकल्प से डाप् (आ) प्रत्यय होता है । यथा—

मन्नन्त—पाम + डाप् = पाम + आ = पामा, पामे, पामाः; सीम + आ = सीमा, सीमे, सीमाः । अन् भागान्त—बहूनि सन्त्यस्यां पर्वाणि बहुपर्वा—बहुपर्व + आ = बहुपर्वा, बहुपर्वे, बहुपर्वाः—पक्षान्तर में—बहुपर्वा, बहुपर्वाणौ, बहुपर्वाणः ।

७ **ऊन उपधालोपिनोऽन्यतरस्याम्** ४।१।२८—जिन अन् भागान्त शब्दों की उपधा का लोप होता है, उनके परे बहुव्रीहि समास होने से विकल्प से डाप् और ङीप् प्रत्यय होते हैं । यथा—

बहवः सन्त्यत्र राजानः—बहुराजा, बहुराजे, बहुराजाः; पक्ष में बहुराज्ञी, बहुराज्ञ्यौ, बहुराज्ञ्यः । पक्षान्तर में बहुराजा, बहुराजानौ, बहुराजानः ।

चाप् (आ)

८ **यङश्चाप्** ४।१।७४—जातिवाची यङ् प्रत्ययान्त शब्दों को स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए चाप् (आ) प्रत्यय जुड़ता है । यथा—

आम्बष्ठ्य + चाप् = आम्बष्ठ्य + आ = आम्बष्ठ्या, सौवीर्य+आ = सौवीर्या, कारीषगन्ध्य + आ = कारीषगन्ध्या, वाराह्य + वाराह्या ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९ षाच्च यञः (वा०)—षकार से परे यञ् भागान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए चाप् प्रत्यय लगता है। यथा—
शार्कराद्य + आ = शार्कराद्या, पौतिमाष्य + आ = पौतिमाष्या, गौकद्य + आ = गौकद्या।

१० आवट्याच्च ४।१।७५ – जातिवाची आवट्य शब्द से चाप् प्रत्यय होता है। यथा—आवट्य + आ = आवट्या।

११ सूर्याद्देवतायां चाव् वक्तव्यः (वा०)—सूर्य से देवता अर्थ में स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से चाप् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—सूर्य + आ = सूर्या—सूर्य नामक देवता की स्त्री; विकल्पाभाव पक्ष में सूर्य + ङीष् = सूर्य + ई = सूरी—कुन्ती।

ङीप् (ई)

१२ ऋन्नेभ्यो ङीप् ४।१।५—ऋकारान्त और नकारान्त पुंल्लिङ्ग शब्दों में ङीप् (ई) जोड़ देने से स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाये जाते हैं। यथा—

(क) ऋकारान्त—दातृ + ङीप् = दातृ + ई = दात्री, गन्तृ + ई = गन्त्री, हन्तृ + ई = हन्त्री, धातृ + ई = धात्री, कर्तृ + ई = कर्त्री, भोक्तृ + इ = भोक्त्री, संवादयितृ + ई = संवादयित्री, जनयितृ + ई = जनयित्री, प्रसवितृ + ई = प्रसवित्री।

(ख) नकारान्त—तेजस्विन् + ई = तेजस्विनी, मायाविन् + ई = मायाविनी, गुणिन् + ई = गुणिनी, कामिन् + ई = कामिनी, यशस्विन् + ई = यशस्विनी, तपस्विन् + ई = तपस्विनी, मानिन् + ई = मानिनी, मेघाविन् + मेधाविनी, मनोहारिन् + ई = मनोहारिणी, अधिकारिन् + ई = अधिकारिणी, उपकारिन् + ई = उपकारिणी, अनुरागिन् + ई=अनुरागिणी, प्रियवादिन् + ई=प्रियवादिनी, विलासिन् + ई = विलासिनी।

अपवाद—

१३ न षट् स्वस्रादिभ्यः ४।१।१० – स्वसृ इत्यादि ऋकारान्त शब्दों में ङीप् और टाप् प्रत्यय नहीं लगते हैं। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वसा, माता, दुहिता, माता, ननान्दा, तिस्रः, चतस्रः (ये शब्द स्वाभाविक स्त्रीवाची हैं)।

२४ **अल्लोपोऽनः** ६।४।१३४—ङीप् होने से अन् भागान्त शब्दों की उपधा का लोप होता है। यथा—

राजन् = ङीप् = राजन् + ई = राज्न् + ई = राज् न् (ञ्) ई = राज्ञी।
स्वरान्त शब्दों के अन्तिम स्वर का भी लोप हो जाता है। यथा—
सुमङ्गल + ई = सुमङ्गल् + ई = सुमङ्गली।

२५ **टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः** ४।१।१५—टित्, ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नच्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, क्वरप् कञ्, आदि प्रत्ययों से बने अकारान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय लगता है। यथा—

टित्—वनेचर—वनेचरी, सेनाचर—सेनाचरी; ढ—वैनतेय—वैनतेयी (गरुड़ की स्त्री), गाङ्गेय—गाङ्गेयी, सारमेय—सारमेयी; अण्—कुम्भकार—कुम्भकारी; अञ्—तापस—तापसी; द्वयसच्—जानुद्वयस—जानुद्वयसी: दघ्नच्—जानुदघ्न—जानुदघ्नी; मात्रच्—जानुमात्र—जानुमात्री; तयप्—चतुष्टय—चतुष्टयी, दशतय—दशतयी; ठक्—धार्मिक—धार्मिकी; ठञ्—मासिक—मासिकी, लावणिक—लावणिकी; कञ्—यादृश्—यादृशी, तादृश्—तादृशी; क्वरप्—नश्वर—नश्वरी, गत्वर—गत्वरी।

२६ उ और ऋ लोप होने वाले प्रत्ययों के योग से बने शब्दों के उत्तर में ङीप् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

उकारेत्—भवत्—भवती, इयत्—इयती, श्रीमत्—श्रीमती, बुद्धिमत्—बुद्धिमती, पुत्रवत्—पुत्रवती, लज्जावत्—लज्जावती, बलवत्—बलवती, प्रभावत्—प्रभावती, कृतवत्—कृतवती, प्रेयस्—प्रेयसी, श्रेयस्—श्रेयसी, गरीयस्—गरीयसी, लघीयस्—लघीयसी, कनीयस्—कनीयसी।

ऋकारेत्—सत्—सती, रुदत्—रुदती, शृण्वत्—शृण्वती, बिभ्रत्—बिभ्रती, कुर्वत्—कुर्वती, गृह्णत्—गृह्णती, जानत्—जानती।

विशेष नियम (क) ङीप् होने से भ्वादि, दिवादि और चुरादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणीय धातु के उत्तर शतृ प्रत्यय को न् का आगम होता है। यथा—भ्वादि—धावत्—धावन्ती, गच्छत्—गच्छन्ती, पतत्—पतन्ती, तिष्ठत्—तिष्ठन्ती, चलत्—चलन्ती, पश्यत्—पश्यन्ती; दिवादि—दीव्यत्—दीव्यन्ति, नश्यत्—नश्यन्ती, जीर्यत्—जीर्यन्ती, मुह्यत्—मुह्यन्ती। चुरादि—कारयत्—कारयन्ती, स्मारयत्—स्मारयन्ती, स्थापयत्—स्थापयन्ती, पालयत्—पालयन्ती। तुदादि गणीय और अदादि गणीय धातुओं में विकल्प से न् का आगम होता है। यथा—तुदत्—तुदन्ती-तुदती, इच्छत्—इच्छन्ती—इच्छती। अदादिगणीय—यात्—यान्ती-याती, 'मात्—मान्ती-माती, स्नात्—स्नान्ती-स्नाती।

(ख) ङीप् होने से स्मतृ प्रत्ययान्त शब्दों को विकल्प से न् का आगम होता है। यथा—

भविष्यत्—भविष्यन्ती. करिष्यत्—करिष्यन्ती-करिष्यती, दास्यत्—दास्यन्ती-दास्यती, यास्यत्—यास्यन्ती-यास्यती।

१७ पादोऽन्यतरस्याम्—पाद भागान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाने में विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है। यथा—

द्विपाद्—द्विपदी, त्रिपाद्—त्रिपदी, चतुष्पाद्—चतुष्पदी।

१८ **यञश्च** ४।१।१६—यञ् प्रत्ययान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय जुड़ता है।

१६ **हलस्तद्धितस्य** ६।४।१५०—ङीप् प्रत्यय होने से हल् वर्ण के परवर्ती य: प्रत्यय का लोप होता है। यथा—

गार्ग्य+ङीप्=गार्ग्य+ई=गार्ग+ई=गार्गी, वात्स्य—वत्सी, आगस्त्य—आगस्ती, माण्डव्य—माण्डवी, मौद्गल्य—मौद्गली।

२० **द्विगो** ४।१।२१—द्विगुसंज्ञक अकारान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है।

यथा—पञ्चमूली, दशमूली, अष्टाध्यायी, अष्टसहस्री, त्रिलोकी।

२१ **पुरुषात् प्रमाणेऽन्यतरस्याम्** ४।१।२४—तद्धित का लोप हुआ हो तो प्रमाण अर्थ में पुरुषान्त द्विगु शब्दों से विकल्प से ङीप् प्रत्यय होता है। यथा—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्या; परिखायाः सा द्विपुरुषा—द्विपुरुषी, त्रिपुरुषा—त्रिपुरुषी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस सूत्र में प्रमाण ग्रहण इसलिए किया है कि—द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता द्विपुरुषा, त्रिपुरुषा में विकल्प से ङीप् न हो और तद्धित लुक् इसलिए कहा है कि द्विपुरुषी, त्रिपुरुषी आदि समाहार में निषेध न हो।

२२ **दामहायनान्ताच्च** ४।१।२७—जिन शब्दों के आदि में संख्या और अन्त में दामन या हायन हों, उन शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है। यथा—द्वे दाम्नी यस्याः सा द्विदाम्नी, त्रिदाम्नी, द्विहायनी, त्रिहायणी, चतुर्हायणी।

२३ **वयसि प्रथमे** ४।१।२०—वृद्धा अवस्था को छोड़ अन्य अवस्थाएँ विदित हों तो अकारान्त शब्दों से ङीप् प्रत्यय होता है। यथा—
कुमारी, किशोरी, वधूटी, चिरण्टी, कलभी, वर्करी।

२४ **अन्तर्वत् पतिवतोर्नुक्** ४।१।३२—अन्तर्वत् और पतिवत् शब्द से ङीप् प्रत्यय और नुक् का आगम होता है। यथा—अन्तर्वत्नी, पतिवत्नी।

२५ **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे** ४।१।३३—यज्ञफल भागित्व को प्रकट करने के लिए पति शब्द के उपरान्त ङीप् प्रत्यय लगता है और इस स्त्रीप्रत्यय के पूर्व न् का आगम होता है। यथा—
पति-पत्नी—यज्ञफलभोक्त्री, वशिष्ठस्य पत्नी, दिलीपस्य पत्नी।

विशेष—

यदि यज्ञफलभोक्त्री अर्थ न हो तो स्त्रीत्व होने पर भी पति शब्द में कोई परिवर्तन नहीं होता। यथा—
शकुन्तला एव अस्य आश्रमस्य पतिः—शकुन्तला ही इस आश्रम की स्वामिनी है। यहाँ यज्ञ सम्बन्ध न होने से पति शब्द का पत्नी नहीं बना।

२६ **विभाषा सपूर्वस्य** ४।१।३४—पूर्वपद सहित पति शब्द हो तो विकल्प से ङीप् और न् का आगम होता है। यथा—वृद्धपतिः—वृद्धपत्नी, स्थूलपतिः—स्थूलपत्नी, जीवपतिः—जीवपत्नी।

२७ **नित्यं सपत्न्यादिषु** ४।१।३५—सपत्नी आदि शब्दों में पति शब्द से निपातन के द्वारा नित्य ङीप् और न् का आगम होता है। यथा—समानः पतिरस्याः सा सपत्नी, एकपत्नी, वीरपत्नी इत्यादि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८ **वनो र च** ४।१।७—वन् प्रत्ययान्त शब्दों तथा उन समासों में, जहाँ ऐसे शब्द उत्तर पद में हों, ङीप् प्रत्यय लगता है और न् के स्थान पर र् हो जाता है। यथा—

पीवन्—पीवरी, धीवन्—धीवरी, अति धीवर—अति धीवरी, पारदृश्वन्—पारदृश्वरी।

२९ **मनोरौ वा** ४।१।३८—मनु शब्द से स्त्रीलिङ्ग बनाने में ङीप् प्रत्यय लगता है और मनु शब्द को औकार और पक्ष में ऐकारादेश होता है। यथा—मनोः स्त्री = मनायी, मनावी और मनुः।

ङीष् (ई)

३० **षिद्गौरादिभ्यश्च** ४।१।४१—षित् शब्दों—नर्तक, खनक, पथिक, प्रभृति तथा गौरादि गण के शब्दों—गौर, मनुष्य, मत्स्य, शृंग, पिङ्गल, हय, गवय, ऋष्य, द्रुण, हरिण, कोकण, अणक, आपलक, शष्कुल, बदर, उभय, नट, मङ्गल के अनन्तर ङीष् (ई) प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—नर्तक + ङीष् = नर्तकी, खनक + ङीष् = खनक + ई = खनकी, पथिक + ई पथिकी, गौरी, कुमार—कुमारी, किशोर—किशोरी, सुन्दर-सुन्दरी, तरुण-तरुणी, पितामह—पितामही, मतामह—मातामही, नद—नदी, पट—पटी, कदल—कदली, स्थल—स्थली, काल—काली, नाग—नागी, मण्डल—मण्डली, सल्लक—सल्लकी, वेतस—वेतसी, अमलक—आमलकी, तूण—तूणी, द्रोण—द्रोणी, बदर—बदरी, कबर—कबरी।

३१ **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** ४।१।६३—जाति अर्थ में जातिवाचक अकारान्त शब्दों के उत्तर ङीष् प्रत्यय लगता है। यथा—

सिंह + ई = सिंही, व्याघ्र—व्याघ्री, मृग—मृगी, मल्लूक—मल्लूकी, हरिण—हरिणी, कुरङ्ग—कुरङ्गी, शूकर—शूकरी, कुक्कुर—कुक्कुरी, जम्बूक—जम्बूकी, शृगाल—शृगाली, विडाल—विडाली, घोटक—घोटकी, महिष—महिषी, हंस—हंसी, सारस—सारसी, चक्रवाक—चक्रवाकी, मानुष—मानुषी, ब्राह्मण—ब्राह्मणी, गोप—गोपी, चाण्डाल—चाण्डाली, पिशाच—पिशाची, राक्षस—राक्षसी, निशाचर—निशाचरी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२ **पुंयोगादाख्यायाम्** ४।१।४८—पुंल्लिङ्ग शब्द जो नर का द्योतक है, उससे स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीप् प्रत्यय जोड़ा जाता है। पर पालकान्त शब्दों के अनन्तर ङीष् प्रत्यय नहीं जुड़ता। यथा—ब्राह्मणस्य जाया—ब्राह्मणी, शूद्रस्य जाया—शूद्री, गोपस्य जाया—गोपी, गणकस्य जाया—गणकी, नापितस्य जाया—नापिती, निषादस्य जाया—निषादी। गोपालकस्य जाया—गोपालिका, पशुपालकस्य जाया—पशुपालिका—यहाँ पालकान्त होने से ङीष् नहीं हुआ।

३३ **जानपदकुण्डगोणस्थलभाजनागकालनीलकुशकामुककवराद्-वृत्त्यमत्राऽऽवपनाकृत्रिमाश्राणास्थौल्यवर्णानाच्छादनाऽयोवि-कारमैथुनेच्छाकेशवेशेषु** ४।१।४२—जानपद, कुण्ड, गोण, स्थल, भाज, नाग, काल, नील, कुश, कामुक और कवर शब्दों से वृत्ति, अमत्र, आव-पन—माप, अकृत्रिमा, श्रवण—पकाने योग्य आदि एकादश अर्थों में क्रमशः ङीष् प्रत्यय होता है।

जानपद + ङीष् = जानपदी वृत्तिः, जानपदी रीतिः, कुण्डी—अमत्रपात्रम्, अन्यत्र कुण्डा, गोणी—माप विशेष, अन्यत्र गोणा, स्थली—अकृत्रिमा भूमिः, अन्यत्र स्थला, भाजी—पकाने योग्य शाक, अन्यत्र भाजा, नागी—अति मोटी, अन्यत्र नागा, काली—काले वर्ण की, अन्यत्र काला, नीली—जो वस्त्र न हो, नहीं तो नीला शाटी, कुशी—लोहे का फाला, अन्यत्र कुशा, कामुकी—मैथुनेच्छवाली, अन्यत्र कामुका, कवरी—बालों का सँभालना।

३४ नील शब्द से औषधी और प्राणी अर्थ में ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—नीली औषधिः, नीली गौः, नीली वडवा, नीली गवयी। संज्ञा अर्थ में विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है; यथा—नीली, नीला।

३५ **इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाद ऽऽचार्या-णामानुक्** ४।१।४९—इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, आचार्य, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल, उपाध्याय शब्दों में ङीष् लगने के पूर्व आनुक् (आन) जोड़ दिया जाता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्र + ङीष् = इन्द्र + आन् + ई = इन्द्राणी, भवानी, हिमानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी, आचार्याणी, अरण्यानी, यवानी—खराब गौ, यवनानी—यवनों की लिपि, मातुलानी, उपाध्यायानी।

३६ अर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा (वा०)—अर्य्य और क्षत्रिय शब्दों से ङीष् प्रत्यय और आन् का आगम विकल्प से होता है। यथा—

अर्य्या, अर्य्याणी, क्षत्रियाणी, क्षत्रिया।

३७ **क्रीतात् करणपूर्वात्** ४।१।५०—करणकारकवाची पूर्वपदयुक्त क्रीत शब्दान्त प्रातिपदिकों से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—

वस्त्रेण क्रीता सा वस्त्रक्रीती, बसनक्रीती, रथक्रीती आदि।

३८ धर्म विधि से पाणिग्रहण—विवाह अर्थ प्रकट हो तो पाणिग्रहण शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—पाणिगृहीति भार्या। अन्य किसी प्रकार से पाणिग्रहण किया गया हो वहाँ पाणिग्रहण शब्द से टाप् प्रत्यय होता है। यथा—पाणिगृहीता नारी।

३९ **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** ४।१।५४—बहुव्रीहि समास होने पर अवयव वाचक शब्द के उत्तर विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—

चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा, सुकेशी, सुकेशा, ताम्रनखी, ताम्रनखा।

४० **नखमुखात्संज्ञायाम्** ४।१।५८—संज्ञावाची नखान्त और मुखान्त शब्दों से ङीष् प्रत्यय नहीं होता। यथा—शूर्प्पणखा, वज्रणखा, गौरमुखा, कालमुखा। संज्ञा नहीं होने पर ताम्रमुखी कन्या - ताम्र के समान मुखवाली।

४१ **दिक्पूर्वपदान्ङीष्**—दिक् पूर्वपद हो जिसके उस स्वाङ्गवाची शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—

प्राङ्मुखी, प्रत्यङ्मुखी, प्राङ्नासिका—इत्यादि।

४२ वाहान्त शब्दों से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—दित्यौही, प्रष्ठौही, विश्वौही।

४३ **पाककर्णपर्णपुष्पफलमूलबालोत्तरपदाच्च** ४।१।६४—जिन शब्दों के उत्तरपद में पाक, कर्ण, पर्ण, पुष्प, फल, मूल और बाल हों, उन शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओदनपाकी, शंकुकर्णी, शालपर्णी, शङ्खपुष्पी, दामीफली, दर्भमूली, गोवाली।

४४ **इतो मनुष्यजातेः** ४।१।६५—मनुष्यजातिवाची इकारान्त शब्दों से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—अवन्ती, कुन्ती, दाक्षी, प्लाक्षी।

४५ **नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च** ४।१।५५—नासिका, उदर, ओष्ठ जंघा, दन्त, कर्ण और शृङ्ग शब्दों से विकल्प से ङीष् होता है। यथा—तुंगनासिकी, तुंगनासिका, दीर्घोदरी, दीर्घोदरा।

४६ **वोतो गुणवचनात्** ४।१।४४—उकारान्त गुणवाचक शब्दों से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से ङीष् प्रत्यय होता है। यथा—

मृदु + ङीष् = मृदु + ई = मृद्वी—मृदुः साध्वी—साधुः, पट्वी—पटुः पर उपधा में संयुक्त वर्ण हो तो ङीष् प्रत्यय नहीं जुड़ता। यथा—पाण्डुः—स्त्रीलिङ्ग और पुंल्लिङ्ग दोनों में होगा।

४७ **बह्वादिभ्यश्च** ४।१।४५—बहु आदि गण के शब्दों से स्त्रीलिङ्ग करने के लिए ङीष् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—बहु + ङीष् = बह्वी, बहुः—बहुत स्त्री।

४८ क्तिन् प्रत्ययान्त भिन्न इकारान्त कृत्प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीत्व करने के लिए विकल्प से ङीष् प्रत्यय लगता है। यथा—रात्रि + ङीष् = रात्री—रात्रिः। राजी, राजिः।

आली, आलिः, कटी, कटिः, रजनी, रजनिः, शारी, शारिः, यष्टी, यष्टिः, अही, अहिः, कपी, कपिः, मुनी, मुनिः, शकटी, शकटिः, सखी।

४९ क्ति प्रत्यय से बने हुए इकारान्त शब्दों के उत्तर ङीष् नहीं होता। यथा—गतिः, स्थितिः, कृतिः, मतिः, भक्तिः, मुक्तिः, बुद्धिः।

शक्ति और पद्धति शब्द में विकल्प से ङीष् होता है। यथा—

शक्ती, शक्तिः, पद्धती, पद्धतिः।

ङीन् (ई)

५० **शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** ४।१।७३—शार्ङ्गरव, कापटव आदि गण के जाति वाचक शब्दों से परे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीन् प्रत्यय होता है। यथा—शार्ङ्गरव + ङीन् = शार्ङ्गरव + ई = शार्ङ्गरवी—शृङ्गारु ऋषि के वंश की कन्या।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद + ङीन् = विद + ई = बैदी — विद ऋषि के वंश की कन्या।

५१ नृनरयोर्वृद्धिश्च (वा०)—ङीन् प्रत्यय परे रहने पर नृ और नर शब्दों में वृद्धि आदेश होता है। यथा—नृ + ङीन्=नृ + ई=नारी।

ऊङ् (ऊ)

५२ ऊङुतः ४।१।६६—मनुष्यवाचक उकारान्त शब्दों से जिनकी उपधा में य न हो ऊङ् प्रत्यय लगता है। यथा = कुरुः—कुरूः, कद्रूः, अलाबूः, कर्कन्धूः, ब्रह्मबन्धूः।

५३ तनु आदि शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ऊङ् प्रत्यय नहीं लगता। यथा—तनूः, तनुः, चञ्चूः, चञ्चुः।

५४ रज्जु आदि शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय नहीं लगता। यथा—रज्जुः, धेनुः, आखुः, हनुः, कमण्डलुः; कृकवाकुः, कृत-याहुः, अध्वर्युः।

संज्ञा अर्थ में कद्रू और कमण्डलु शब्द से स्त्रीत्व विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा—कद्रूः, कमण्डलूः। संज्ञा भिन्न अर्थ में कमण्डलुः रहता है।

५५ पङ्गुः शब्द से ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा—पंगूः।

५६ श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च (वा०)—श्वशुर शब्द के उकार तथा अकार का लोप होता है और ऊङ् प्रत्यय भी। यथा—श्वशुर + ऊङ् = श्वशुर् + ऊ = श्वश्रूः।

५७ ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९—उपमा अर्थ में ऊरू के उत्तर ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा—रम्भे इवास्या ऊरू = रम्भोरूः, करभाविवास्या ऊरूःकरभोरूः, करिकराविवास्या ऊरूः = करिकरोरूः।

५८ वाम इत्यादि के परवर्ती ऊरू के उत्तर ऊङ् प्रत्यय होता है। यथा—वामोरूः, सहितोरूः, सहोरूः, लक्ष्मणोरूः, शफोरूः।

ति

५९ यूनस्तिः ४।१।७७—युवन् शब्द से स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए ति प्रत्यय जुड़ता है और प्रत्यय से पूर्व के नकार का लोप होता है। यथा—युवन् + ति=युवतिः, युवती, यूनी; श्वन-शुनी, मघवन्-मघोनी-मघवती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कतिपय अध्ययनीय शब्द

पुंल्लिङ्ग रूप	स्त्रीलिङ्ग रूप
राजा	राज्ञी
श्वा–कुत्ता	शुनी
विद्वान्	विदुषी
मघवा–इन्द्र	मघोनी, मघवती
मनुष्यः	मानुषी
मातुलः	मातुली, मातुलानी
मत्स्यः	मत्सी
कुरुः	कुरूः
गृहपतिः	गृहपतिः, गृहपत्नी
श्वशुरः	श्वश्रूः
समानपतिः	सपत्नी
एकपतिः	एकपत्नी
वीरपतिः	वीरपत्नी
ग्रामपतिः	ग्रामपतिः, ग्रामपत्नी
अधिपतिः	अधिपतिः
तुदन्	तुदन्ती, तुदती
दीव्यन्	दीव्यन्ती
बोधयन्	बोधयन्ती
गरीयान्	गरीयसी
भयङ्कर	भयङ्करी
सखा	सखी
मुनिः	मुनी, मुनिः
मृदुः	मृद्वी, मृदुः
साधुः	साध्वी, साधुः
युवा	युवतिः, यूनी, युवती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुराजः	बहुराजा, बहुराज्ञी
सुकेशः	सुकेशी, सुकेशा
महाराजः	महाराज्ञी
अग्निः	अग्नायी
नश्वरः	नश्वरी
धीवरः	धीवरी
मनुः	मनायी, मनावी, मनुः
शूद्रः	शूद्रा, शूद्री, शूद्राणी
सूर्यः	सूर्या, सूरी
आचार्यः	आचार्या, आचार्यानी
क्षत्रियः	क्षत्रिया, क्षत्रियी, क्षत्रियाणी
उपाध्यायः	उपाध्याया, उपाध्यायी, उपाध्यायिनी
सभापतिः	सभापतिः, सभापत्नी
पाण्डुः	पाण्डुः
पठन्	पठन्ती
आर्यः	अर्या, अर्याणी, अर्यी
कमण्डलुः	कमण्डलूः, कमण्डलुः
कद्रुः	कद्रूः, कद्रुः
धीवन्	धीवरी
पीवन्	पीवरी
चञ्चुः	चञ्चूः
इन्द्रः	इन्द्राणी
गोपः	गोपी, गोपा
गोपालकः	गोपालिका
धाता	धात्री
मनस्वी	मनस्विनी
छात्रः	छात्री, छात्रा
भ्रुः	भ्रूः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कतिपय शब्द-युग्मों में अर्थभेद—

१ { क्षत्रियाणी, क्षत्रिया—क्षात्र धर्म से युक्त स्त्री अथवा क्षत्रिय जाति की स्त्री।
क्षत्रियी—एक क्षत्रिय की स्त्री।

२ { अर्याणी, अर्या स्वामिनी या वैश्या अर्थात् वैश्य जाति की स्त्री।
अर्यी—एक स्वामि या वैश्य की स्त्री।

३ { शूद्रा—शूद्र जाति की सामान्य स्त्री।
शूद्री, शूद्राणी - शूद्र जाति के व्यक्तिविशेष की स्त्री।

४ { उपाध्याया—शिक्षा देनेवाली स्त्री।
उपाध्यायी, उपाध्यायिनी—उपाध्याय की स्त्री।

५ { आचार्या—आध्यात्मिक शिक्षा देनेवाली नारी।
आचार्यानी—आचार्य की स्त्री।

६ { यवानी—खराब जौ, जिनसे अंकुर न निकलें।
यवनानी—यवन लिपि।

७ { भाजी—पकाने योग्य तरकारी।
भाजा—पकाने की योग्यता से रहित तरकारी।

८ { स्थला—कृत्रिम भूमि।
स्थली—अकृत्रिम भूमि।

९ { गोपी—गोपस्य स्त्री—गोप जाति के व्यक्तिविशेष की स्त्री।
गोपा—गोपा तु गोपकन्यका—गोप जाति की सामान्य नारी।

१० { नीला—सामान्य वस्तुओं के वर्णवाची-यथा—कुवलयदल नीला कोकिला, नीला शाटी, नीला मेघसंहतिः।
नीली—प्राणि और ओषधि वाचक - यथा—नीली औषधिः, नीली वडवा, नीली गौः।

११ { कुशा—कुशा नाम की घास - यथा—कुशा रज्जुः।
कुशी—लौह विकार—फाल।

१२ { कामुकी—मैथुन करने की इच्छा।
कामुका—धनादि पदार्थ लेने की इच्छा।

१३ { पतिवत्नी—सौभाग्यवती स्त्री—जीवति भर्तरि।
पतिमती—अधिनायकवाली—यथा—पतिमती सेना।

१४ { अन्तर्वत्नी—गर्भिणी स्त्री।
अन्तर्वती—अन्तरवाली भूमि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५ { गोणी—अनाज रखने का वस्त्र निर्मित पात्रविशेष।
गोणा—साधारण अर्थ में संयुक्त संज्ञा। }

१६ { पाणिगृहीती—धार्मिक विधि से परिणीत भार्या।
पाणिगृहीता—जिस किसी तरह से ग्रहण की गयी स्त्री। }

१७ { कुण्डी—पात्री।
कुण्डा—जारजा, अर्गला = वेडा। }

१८ { कवरा—चित्र-विचित्र वर्णवाली—चितकवरी।
कवरी—केशवेशः—वेणी। }

१६ { धनक्रीती—धन के द्वारा खरीदी गयी कोई भी वस्तु।
धनक्रीता—धन के द्वारा खरीदी गयी स्त्री—यथा—सा हि तस्य धनक्रीता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी। }

२० { चन्द्रभागी—चन्द्रिका—चाँदनी।
चन्द्रभागा—नदी। }

२१ { द्विपुरुषी—दो पुरुषा गहरी—द्वौ पुरुषौ प्रमाणमस्या खातायाः।
द्विपुरुषा—दो पुरुषों के द्वारा खरीदी गयी—द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां क्रीता। }

२२ { त्रिपुरुषी—तीन पुरुषा गहरी।
त्रिपुरुषा—तीन पुरुषों के द्वारा खरीदी गयी। }

२३ { सभापतिः—किसी सभा में अध्यक्ष का आसन ग्रहण करनेवाली नारी।
सभापत्नी—सभापति की स्त्री। }

२४ { सूर्या—सूर्य देवता की स्त्री।
सूरी—कुन्ती। }

२५ { नागी—स्थूला—नागी भवति स्थौल्यं चेत्, नागा अन्या।
नागा—जातिवाचक, हस्तिनी और सर्पिणी। }

२६ { शर्वरी—रात्रिः।
गर्वरी—सन्ध्या। }

२७ { पृतना—सेना।
पूतना—राक्षसी। }

२८ { सुगेषणा—किन्नरी।
सुदेषणा—विराट् पत्नी। }

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२६ { वधूटी—युवति, प्रथमवया स्त्री ।
चिरण्टी—अप्राप्तवया स्त्री ।

३० { पतिः—स्वामिनी—यथा—ग्रामस्य पतिः इयं ब्राह्मणी ।
पत्नी—यज्ञफलभोक्त्री—यज्ञ का फल प्राप्त करनेवाली; यथा—वशिष्ठस्य पत्नी—वशिष्ठानुष्ठित यज्ञफलभोक्त्री । अथवा—पुरुष के धन की स्वामिनी—अस्य पुंसः वित्तस्य स्वामिनी ।

३१ { चन्द्रमुखा—संज्ञा विशेष ।
चन्द्रमुखी—चन्द्रमा के समान मुखवाली ।

३२ { शूर्पणखी—शूर्पमिवनखा अस्या—शूर्प के समान नखवाली ।
शूर्पणखा—नामविशेष ।

अनुशीलनी

१ निम्नलिखित शब्दों के स्त्रीलिङ्ग बनाइये ।
ब्राह्मण, कर्तृ, मत्स्यः, महाराज, श्वा, रजकः, नश्वरः, कोकिलः, अश्वः, पीवन्, तरुणः, नायकः, रज्जुः, इच्छन्, कामिन्, श्वशुरः ।

२ निमाङ्कितों के लिए एक शब्द प्रयुक्त कीजिये—
आचार्यस्य जाया, मृग इव नयनेऽस्याः, समानः पतिरस्याः, गर्भिणी नारी, परिणयेन पाणिः गृहीतः यस्याः सा, यूनो जाया, अस्ति पतिर्यस्याः सा, क्षत्रियवर्णे जाता स्त्री, स्वयमध्यापयति या सा, लज्जा अस्या विद्यते सा, विदुषो जाया, करिकराविवास्या ऊरू, एका पतिरस्या, पञ्चपतयोऽस्या, वीरः पतिरस्याः, मातुलस्य जाया, शर्वस्य जाया, दुष्टो यवः, महत् हिमं, पानमस्या ऊधः, घटवदस्या ऊधः, द्वे अस्या दाम्नी, द्वे अस्या हायने, बहूनि सन्त्यस्यां पर्वाणि, बहवः सन्त्यत्र राजानः, नास्ति—अस्याः शिशुः ।

३ प्रमुख स्त्री प्रत्ययों को सोदाहरण समझाइये ।

४ ङीप् प्रत्यय का उदाहरण सहित विवेचन कीजिये ।

५ ऊङ् प्रत्यय के चार उदाहरण दीजिये ।

अव्यय

ऐसे शब्द जिनके रूप में कोई विकार—परिवर्तन उत्पन्न न हो और जो सदा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक से—सभी विभक्ति, सभी वचन और सभी लिङ्गों में एक समान रहें, अव्यय कहलाते हैं।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्नव्येति तदव्ययम।

लिङ्ग, विभक्ति और वचन के अनुसार जिनके रूपों में व्यय—घटती-बढ़ती न हो, वे अव्यय हैं। यथा—उच्चैः (ऊँचे), नीचैः (नीचे), अभितः (चारों ओर) आदि।

अव्यय पाँच प्रकार के होते हैं—(१) उपसर्ग, (२) क्रियाविशेषण, (३) समुच्चयादिबोधक (Conjunctiens), (४) मनोविकारसूचक (Interjections) और (५) अतिरिक्त अव्यय।

उपसर्ग

जो अव्यय क्रिया के पूर्व आते हैं, उन्हें उपसर्ग कहते हैं। उपसर्ग लगाने से क्रिया के अर्थ में परिवर्तन या वैशिष्ट्य आ जाता है। उपसर्ग की स्थिति तीन प्रकार की होती है—

धात्वर्थं बाधते कश्चित्कश्चित्तमनुवर्तते।
विशिनष्टितमेवाऽर्थमुपसर्गगतिस्त्रिधा ॥

कोई उपसर्ग धातु के मुख्यार्थ को बाधकर नवीन अर्थ का बोध कराता है, कोई धात्वर्थ का ही अनुवर्तन करता है और कोई विशेषण होकर उसी धातु-अर्थ को और भी स्पष्ट कर देता है।

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराऽऽहार-संहार-विहार-परिहारवत् ॥

उपसर्ग के योग से धातु का अर्थ कुछ का कुछ हो जाता है। हरति—ले जाता है, अपहरति—चुराता है, अनुहरति—नकल करता है, परिहरति—छोड़ता है, आहरति—लाता है, प्रहरति—मारता है, विहरति—विहार करता है, उपहरति—उपहार देता है, आदि।

उपसर्ग २२ हैं—प्र, परा, अप्, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, सु, उद्, अभि, अति, प्रति, परि और उप।

१ प्र—प्रकर्ष—अधिकता, जैसे प्रभवति नृपः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२ परा—विपरीत—पराजयते (हारता है), पराभवति ।

३ अप—दूर—अपहार:—दूर ले जाना, अपकरोति—हानि या बुरा करता है।

४ सम्—अच्छी तरह संस्कारः—अच्छी तरह किया हुआ काम ।

५ अनु—पीछे, साथ—रामनुगच्छति लक्ष्मणः ।

६ अव—नीचे, दूर, अभाव—अवतारः—नीचे आना, अवमानः—नीचा मानना।

७-८ निस्—निर—निषेध, बाहर, दूर—निस्सारः—सार रहित, रामस्त्वं निराकरोति ।

९-१० दुस्, दुर्—कठिन, बुरा—दुष्करोऽस्ति—कठिन है, दुर्योधनस्य दुर्नीतिरफलम् ।

११ वि—अलग होना, विना - वियोगः—विरह, विश्लिष्यति—अलग करता है।

१२ आङ्—तक, कम—दिलीप आसमुद्रं पृथिव्याः पतिरासीत् ।

१३ नि—अन्दर, नीचे—दुष्टान् नियमति—दुष्टों को आधीन या नीचे करता है।

१४ अधि—ऊपर—अधिरोहति—ऊपर चढ़ता है ।

१५ अपि—भी, निकट—देवदत्तोऽपि नागतः ।

१६ अति—बाहुल्य अथवा उल्लंघन—अतिक्रमः—सीमा का उल्लंघन, अतिनिद्रा—अधिक नींद ।

१७ सु—अच्छा, सहज—सुकृतं—अच्छा कार्य, सुगम—सहज ।

१८ उस्—ऊपर, ऊँचा, श्रेष्ठ—उत्तमः, उद्भूतः, उत्साहः ।

१९ अभि—ओर—अभिगमनम्—किसी ओर जाना ।

२० प्रति—ओर, उलटा—प्रतिकारः—बदला, त्वं पितरं प्रति गच्छ ।

२१ परि—चारों ओर—पृथिवी सूर्यं परिगच्छति = पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है ।

२२ उप—निकट—उपमानम्—मान के समीप उपासना—निकट बैठना, प्रार्थना ।

क्रियाविशेषण

क्रियाविशेषण संस्कृत में कई प्रकार के होते हैं। कुछ क्रियाविशेषण स्वः आदि अव्ययों में परिगणित हैं; कुछ सर्वनामों से बनते हैं—जैसे—इदानीम्, यथा, तथा आदि; कुछ संख्यावाची शब्दों से बनते हैं—जैसे—एकधा, द्विधा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिधा आदि और कुछ संज्ञाओं में तद्धित प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं जैसे—पुत्रवत्, भस्मसात् आदि।

नीचे अकारादि क्रम से प्रमुख क्रियाविशेषणों को दिया जाता है—

अकस्मात्=हठात्, इकबारगी
अग्रतः=आगे
अग्रे=पहले
अचिरम्, अचिरात्, अचिरेण } शीघ्र, तुरन्त
अजस्रम्=निरन्तर, सदा
अञ्जसा=ठीक से, निश्चय से
अन्तर्=अन्दर
अतः=इसलिए
अतीव=बहुत
अत्र=यहाँ
अथ=तब, फिर
अथकिम्=हाँ, तो क्या
अद्य=आज
अधः, अधस्तात् } नीचे
अपरम्=और
अपरेद्युः=दूसरे दिन
अधुना=अब
अतिशम्=निरन्तर
अन्तरेण=बारे में, बिना
अन्तरा=बिना, बीच में
अन्तरे=बीच में
अन्यच=और

अन्यत्र=दूसरी जगह
अन्यथा=दूसरी तरह
अभितः=चारों ओर
अभीक्ष्णम्=निरन्तर
अर्वाक्=पहले
अलम्=बस, पर्याप्त
असकृत्=कई बार
असम्प्रति, असाम्प्रतम् } अनुचित
आरात्=दूर, समीप
इतः=यहाँ से
इतस्ततः=इधर-उधर
इति=इस प्रकार
इत्थम्=इस तरह
इदानीम्=इस समय
इह=यहाँ
ईषत्=कुछ, थोड़ा
उच्चैः=ऊँचे
उभयतः=दोनों ओर
ऋतम्=सच
ऋते=बिना
एकदा=एक बार
एकधा=एक प्रकार
एकपदे=एक साथ
एतर्हि=अब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एव=ही

एवम्=इस तरह

कच्चित्, कच्चन } क्या

कथम्=कैसे

कथञ्चन, कथञ्चित् } किस प्रकार

कदा=कब

कदाचित्=शायद, कभी

कदापि=कभी

कदापि न=कभी नही

किञ्च=और

किन्तु = लेकिन

किम्=क्या ? क्यों ?

किमुत=और कितना

किंवा=या

किल=सचमुच

कुतः=कहाँ से

कुत्र = कहाँ

कुत्रचित्=कहीं

कृतम्=बस, हो गया

केवलम्=सिर्फ

क्व=कहाँ

क्वचित्=कहीं

खलु=निश्चय करके

चिरम्=देर तक

जातु=कभी भी

झटिति=जल्दी

तत्=इसलिए

ततः=फिर

तत्र=वहाँ

तदा=तब

तदानीम् = तब

तथा=उस तरह

तथाहि=जैसे

तस्मात्=इसलिए

तर्हि=तब, तो

तावत्=तब तक

तिरः, तिर्यक्=तिरछे

तूष्णीम्=चुपचाप

दिष्ट्या=सौभाग्य से

दूरम्=दूर

दोषा=रात्रि

द्राक्=शीघ्र

ध्रुवम्=निश्चय

न=नहीं

नवरम्=परन्तु

नाना=हर तरह से

नाम=नामवाला, नामक

निकषा=निकट

नीचैः=नीचे

नूनम्=निश्चित

नो = नहीं

परम्=किन्तु, फिर

परश्वः=परसों

परितः=चारों ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परेद्युः=दूसरे दिन कल
पर्याप्तम्=काफी
पश्चात्=पीछे
पुनः=फिर
पुरतः, पुरः, पुरस्तात् = आगे
पुरा = पहले
पूर्वेद्युः=पहले दिन
पृथक् = अलग-अलग
प्रकामम्=यथेष्ठ, बहुत
प्रतिदिन=हर रोज
प्रत्युत्=उलटे
प्रसह्य=जबर्दस्ती
प्राक् = पहले
बलात्=जबर्दस्ती
बहिः = बाहर
भूयः=बार-बार, अधिक
भृशम्=अधिकाधिक
मनाक् = थोड़ा
मिथः=परस्परम्
मुधा=व्यर्थ, बेकार
मुहुः=बार-बार
मृषा=झूठ
यत्=जो, क्योंकि
यतः = क्योंकि
यत्र=जहाँ
यथा=जैसे
यथा-तथा = जैसे-तैसे
यथा-यथा = जैसे-जैसे

यदा = जब
यावत्=जब तक
युगपत्=साथ
विना=बिना
वृथा=बेकार
वै=निश्चय
शनैः=धीरे-धीरे
श्व=कल-आनेवाला
शाश्वत्=सदा
सर्वथा=सब प्रकार से
सर्वदा=सदा
सह=साथ
सहसा=एकबारगी
सहितम्=साथ
साकम्=साथ
सकृत्=एक बार
सनातनम्=बराबर
सद्यः=तुरन्त
सना=सब दिन।
सपदि=तुरन्त, शीघ्र
समन्तात्=चारों ओर
समम्=बराबर-बराबर
समया=निकट
समीपे, समीपम्=निकट
समीचीनम्=यथार्थ
सम्प्रति=इस समय, अभी
सम्यक्=भली प्रकार
सर्वतः = सभी ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वत्र=सब कहीं
साम्प्रतम्=अब, उचित
सायम्=शाम को
सुष्ठु=अच्छी तरह
स्वस्ति=आशीर्वाद
साक्षात्=सामने
सार्धम्=साथ
हि=निश्चय से, इसलिये
ह्यः=कल

समुच्चयीबोधक

समुच्चयादिबोधक अव्यय के सात भेद हैं—

(१) संयोजक-च, अथ, अथो, उत, किंच, तु आदि।
(२) वियोजक-वा, किंवा, तु, किन्तु आदि।
(३) संकेतार्थ—यदि, चेत्, नोचेत्, यद्यपि, तथापि।
(४) कारणवाचक-हि, तत्, तेन इत्यादि।
(५) प्रश्नवाचक-अङ्ग, अङ्गस्वित्, उत्, किं, किन्तु, किमुत, ननु, नु इत्यादि।
(६) कालवाचक-यावत्, तावत्, यदा, तदा, कदा इत्यादि।
(७) विधि अथवा निषेधार्थक-अङ्ग, अथ, किम्, आम्, अद्धा।

अथ कार्यारम्भ और इति कार्यान्त का सूचक है। च शब्द और अर्थ का सूचक है। जहाँ हिन्दी में और दो जोड़े हुए शब्दों के बीच में आता है, वहाँ संस्कृत में च शब्द दोनों के उपरान्त आता है। यथा—रामो लक्ष्मणश्च सीतया सह आगच्छताम्।

मनोविकारसूचक अव्यय

(१) हन्त—हर्ष और खेदसूचक; हन्त! सविज्ञानमस्य दर्शनम्। हन्त! व्याधिना पीडितोऽस्मि।

(२) आः, हुम्, हम्—क्रोधसूचक; आः कथमिदं सञ्जातम्; हुम् किं विदधाति; हम् ते कविवरा विपरीत बोधा।

(३) हा, हाहा, हन्त—शोक सूचक—हा! निधनता त्वया जर्जरी कृतोऽस्मि, हहा! रोगेण पीडितोऽस्मि, हन्त! त्वया कृतमिदम्।

(४) वत—दयासूचक, खेदसूचक—वत! शत्रुभिराक्रान्तोऽस्मि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) अहो, अहह—विस्मयसूचक—अहो ! बत सिंहस्यं; अहह ! बुद्धि-प्रकर्षः पाश्चात्यानाम् ।

(६) किम्, धिक्–धिक्कारसूचक–धिक् त्वामपराधिनम्; किंकृतं त्वया ।

(७) अङ्ग, अयि, अये, भोः—आदरसहित बुलाने के काम में आते हैं । यथा—अङ्ग, सुशर्मन् ! हे शिष्य ! भो गुरो !

अपि, अरे, रेरे—अवज्ञा से बुलाने के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । यथा—अयि दुर्विनीते ' भर्तारमुल्लंघ्ययसि, अरे अरे मूढ ! गुरुवाक्यं नाद्रियसे । रेरे वञ्चक !

अतिरिक्त अव्यय

तद्धितों और कृत् प्रत्ययों के संयोग से भी कुछ अव्यय बनते हैं । यथा—तद्धित प्रत्ययों में—तसिल् प्रत्ययान्त, त्रस् प्रत्ययान्त, दा प्रत्ययान्त, दानीम् प्रत्ययान्त; अधुना, कर्हि, यर्हि, तर्हि; दिक् और कालवाचक—दुरः, पश्चात्, उत्तरेण; धा प्रत्ययान्त एकधा; च्वि प्रत्ययान्त—भस्मीभूय, शुक्लीभूय, साति प्रत्ययान्त—अग्निसात्, धूलिसात्; कृत्वसुच् प्रत्ययान्त—द्विकृत्वः, त्रिकृत्वः आदि अव्यय हैं । कृदन्तों में स्मारं-स्मारं, गन्तुम्, पिबध्यै, कृत्वा आदि अव्यय के समान प्रयुक्त होते हैं ।

धातु रूपावली

भू—होना (परस्मैपदी)

वर्तमान—लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भवति	भवतः	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथः	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवावः	भवामः

आज्ञा—लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

विधि—लिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
म० पु०	भवे	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

भूतकाल—लङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भविष्यत् काल—लृट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

अस्—होना परस्मैपदी

वर्तमान—लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति
म० पु०	असि	स्थः	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः

आज्ञा—लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अस्तु-स्तात्,	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि-स्तात्,	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

विधि—लिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

भूतकाल—लङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसीः	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

भविष्यत्काल—लृट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

श्रु-सुनना (परस्मैपदी)

वर्तमान-लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	श्रृणोति	श्रृणुतः	श्रृण्वन्ति
म० पु०	श्रृणोषि	श्रृणुथः	श्रृणुथ
उ० पु०	श्रृणोमि	श्रृणुवः, श्रृण्वः	श्रृणुमः, श्रृण्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज्ञा—लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

विधि-लिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
म० पु०	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

भूतकाल—लङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन
म० पु०	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणुवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम्, अशृणम

भविष्यत्काल—लृट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
म० पु०	श्रोष्यषि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
उ० पु०	श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

उभयपदी कृ—करना (परस्मैपदी)

वर्तमान-लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उ० पु०	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज्ञा-लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	करोतु, कुरुतात्	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

विधि-लिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
म० पु०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

भूतकाल-लङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

भविष्यत् काल-लृट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
म० पु०	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उ० पु०	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

आत्मनेपद

वर्तमान-लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म० पु०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ० पु०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

आज्ञा-लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म० पु०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ० पु०	करवै	करवावहै	करवामहै

विधि-लिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० पु०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूतकाल–लङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत्
म० पु०	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम
उ० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

भविष्यत्काल–लृट्

प्र० पु०	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
म० पु०	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उ० पु०	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

स्था (तिष्ठ्)—ठहरना (परस्मैपदी)

वर्तमान–लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

आज्ञा–लोट्

प्र० पु०	तिष्ठतु, तिष्ठतात्	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
म० पु०	तिष्ठ, तिष्ठतात्	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उ० पु०	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

विधि-लिङ्

प्र० पु०	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेपु
म० पु०	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उ० पु०	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

भूतकाल–लङ्

प्र० पु०	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
म० पु०	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उ० पु०	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

भविष्यत्काल–लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्यवः	स्थास्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लभ्— पाना (आत्मनेपदी)

वर्तमान-लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	लभते	लभेते	लभन्ते
म० पु०	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उ० पु०	लभे	लभावहे	लभामहे

आज्ञा-लोट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
म० पु०	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उ० पु०	लभै	लभावहै	लभामहै

विधि-लिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
ए० व०	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
द्वि० व०	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उ० पु०	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

भूतकाल-लङ्

प्र० पु०	अलभत	अलभताम्	अलभन्त
म० पु०	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उ० पु०	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

भविष्यत्काल-लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

उभयपदी ब्रू—बोलना (परस्मैपदी)

वर्तमान-लट्

प्र० पु०	ब्रवीति	ब्रूतः	ब्रुवन्ति
म० पु०	ब्रवीषि	ब्रूथः	ब्रूथ
उ० पु०	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

आज्ञा-लोट्

प्र० पु०	ब्रवीतु, ब्रूतात्	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
म० पु०	ब्रूहि, ब्रूतात्	ब्रूतम्	ब्रूत
उ० पु०	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि-लिङ्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
म० पु०	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उ० पु०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

भूतकाल-लङ्

प्र० पु०	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्
म० पु०	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
उ० पु०	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम

भविष्यत्काल-लृट्

प्र० पु०	वक्ष्यति	वक्ष्यतः	वक्ष्यन्ति
म० पु०	वक्ष्यसि	वक्ष्यथः	वक्ष्यथ
उ० पु०	वक्ष्यामि	वक्ष्यावः	वक्ष्यामः

आत्मने पदी

वर्तमान-लट्

प्र० पु०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

अज्ञा-लोट्

प्र० पु०	ब्रूताम्	ब्रूवाताम्	ब्रुवताम्
म० पु०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्यम्
उ० पु०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

विधि-लिङ्

प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
म० व०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम	ब्रुवीध्वम्
उ० व०	ब्रुवीथ	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

भूतकाल-लङ्

प्र० पु०	अब्रूत	अब्रुवाताम्	अब्रुवत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
म० पु०	अब्रूथाः	अब्रुवाथाम्	अब्रूध्वम्
उ० पु०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

सामान्यभविष्य-लृट्

प्र० पु०	वक्ष्यते	वक्ष्येते	वक्ष्यन्ते
म० पु०	वक्ष्यसे	वक्ष्येथे	वक्ष्यध्वे
उ० पु०	वक्ष्ये	वक्ष्यावहे	वक्ष्यामहे

उभयपदी दा–देता (परस्मैपद)

वर्तमान–लट्

प्र० पु०	ददाति	दत्तः	ददाति
म० पु०	ददासि	दत्थः	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्वः	दद्मः

आज्ञा–लोट्

प्र० पु०	ददातु, दत्तात्	दत्ताम्	ददतु
म० पु०	देहि, दत्तात्	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

विधि—लिङ्

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म० पु०	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

भूतकाल—लिङ्

प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

भविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र० पु०	दत्ते	ददाते	ददते
म० पु०	दत्से	ददाथे	दद्ध्वे
उ० पु०	ददे	दद्वहे	दद्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
म० पु०	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ० पु०	ददै	ददावहै	ददामहै

विधि—लिङ्

प्र० पु०	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
म० पु०	ददीथा	ददीयाथाथाम्	ददीध्वम्
उ० पु०	ददीय	ददीवहि	ददीमहि

भूतकाल—लङ्

प्र० पु०	अदत्त	अदयाताम्	अददत
म० पु०	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उ० पु०	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

भविष्यत्—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० व०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहें	दास्यामहे

उभयपदी-चुर—चुराना (परस्मैपद)

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
म० पु०	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उ० पु०	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु
म० पु०	चोरय	चोरयतम्	चोरयत
उ० पु०	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम

विधि—लिङ्

प्र० पु०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः
म० पु०	चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत
उ० पु०	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम

भूतकाल—लङ्

प्र० पु०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
म० पु०	अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत
उ० पु०	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

भविष्यत—लृट्

प्र. पु.	चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति
म. पु.	चोरयिष्यसि	चोरयिष्यथः	चोरयिष्यथ
उ. पु.	चोरयिष्यामि	चोरयिष्याव	चोरयिष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र. पु.	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
म. पु.	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
उ. पु	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र. पु.	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
म. पु.	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
उ. पु.	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै

विधि—लिङ्

प्र. पु.	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेरन्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
म. पु.	चोरयेथाः	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
उ. पु.	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

भूतकाल—लङ्

प्र. पु.	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
म. पु.	अचोरयथाः	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
उ. पु.	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

भविष्य—लृट्

प्र. पु.	चोरयिष्यते	चोरयिष्येते	चोरयिष्यन्ते
म. पु.	चोरयिष्यसे	चोरयिष्येथे	चोरयिष्यध्वे
उ. पु.	चोरयिष्ये	चोरयिष्यावहे	चोरयिष्यामहे

उभयपदी तन्—फैलाना (परस्मैपद)

वर्तमान—लट्

प्र. पु.	तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
म. पु.	तनोषि	तनुथः	तनुथ
उ. पु.	तनोमि	तनुवः, तन्वः	तनुमः, तन्मः

आज्ञा—लोट्

प्र. पु.	तनोतु, तनुतात्	तनुताम्	तन्वन्तु
म. पु.	तनु	तनुतम्	तनुत
उ. पु.	तनवानि	तनवाव	तनवाम

विधि—लिङ्

प्र. पु.	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः
म. पु.	तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात
उ. पु.	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम

भूतकाल—लङ्

प्र. पु.	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
म. पु.	अतनोः	अतनुतम्	अतनुत
उ. पु.	अतनवम्	अतनुव, अतन्व	अतनुम, अतन्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भविष्यत—लृट्

	ए० व०	द्वि० व०	ब० व०
प्र. पु.	तनिष्यति	तनिष्यतः	तनिष्यन्ति
म. पु.	तनिष्यसि	तनिष्यथः	तनिष्यथ
उ. पु.	तनिष्यामि	तनिष्यावः	तनिष्यामः

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र. पु.	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म. पु.	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ. पु.	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, तन्महे

आज्ञा—लोट्

प्र. पु.	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
म. पु.	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ. पु.	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

विधि—लिङ्

प्र. पु.	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
म. पु.	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उ, पु.	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

भूतकाल—लङ्

प्र. पु.	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म. पु.	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
उ. पु.	अतन्वि	अतनुवहि, अतन्वहि	अतनुमहि, अतन्महि

भविष्य—लृट्

प्र. पु.	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
म. पु.	तनिष्यसे	तनियेष्थे	तनिष्यध्वे
उ. पु.	तनिष्ये	तनिष्यावहे	तनिष्यामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उभयपदी ज्ञा—जानना (परस्मैपद)

वर्तमान—लट्

प्र. पु.	जानाति	जानीतः	जानन्ति
म. पु.	जानासि	जानीथः	जानीथ
उ. पु.	जानामि	जानीवः	जानीमः

आज्ञा—लोट्

प्र. पु.	जानातु, जानीतात्	जानीताम्	जानन्तु
म. पु.	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उ. पु.	जानानि	जानाव	जानाम

विधि—लिङ्

प्र. पु.	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म. पु.	जानीयाः	जानीयाताम्	जानीयात
उ, पु.	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

भूतकाल—लङ्

प्र. पु.	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म. पु,	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उ. पु.	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

भविष्य—लृट्

प्र. पु.	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
म. पु.	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथ
उ. पु.	ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र. पु.	जानीते	जानाते	जानते
म. पु.	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उ. पु,	जाने	जानीवहे	जानीमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज्ञा—लोट्

प्र. पु.	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
म. पु.	जानीध्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उ. पु.	जानै	जानावहै	जानामहै

विधि—लिङ्

प्र. पु.	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
म. पु.	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उ. पु.	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

भूतकाल—लङ्

प्र. पु.	अजानीत	अजानाताम्	अजानत्
म. पु.	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उ. पु.	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

भविष्य—लृट्

प्र. पु.	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
म. पु.	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उ. पु.	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नातक संस्कृत व्याकरण

पञ्चमोऽध्यायः

कारक विचार

करोति क्रियां जनयतीति कारकम्—क्रिया के उत्पादक को कारक कहते हैं अथवा क्रियान्वयी कारकम्—क्रिया के साथ जिसका सम्बन्ध हो, उसे कारक कहते हैं। संस्कृत में कारक छः हैं।

कर्त्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणं इत्याहुः कारकाणि षट्॥

अर्थात् कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक हैं। संस्कृत के वैयाकरणों ने सम्बन्ध को कारक नहीं माना है; यतः सम्बन्ध कारक का क्रिया के साथ सम्बन्ध नहीं है। यथा—"श्यामः रामस्य धनमचोरयत्" इस वाक्य में अचोरयत् क्रिया के साथ न तो रामस्य का किसी भी प्रकार का सम्बन्ध है और न रामस्य में अचोरयत् क्रिया का जनकत्व—उत्पादकत्व ही है। अतः षष्ठी को विभक्ति तो माना है, पर कारक नहीं।

विभक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है—"संख्याकारकबोधयित्री विभक्तिः" जिसके द्वारा संख्या और कारक का बोध हो, वह विभक्ति है। रामस्य से संख्या का बोध होता है, अतः वह षष्ठी विभक्ति तो है, पर कारक नहीं।

विभक्ति और कारक में एक अन्तर यह भी है कि कारक कुछ है और विभक्ति कुछ हो जाती है। यथा कर्त्ता में सर्वदा प्रथमा और कर्म में द्वितीया विभक्ति ही नहीं होती; बल्कि कर्त्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति भी होती है। जैसे "रावणो रामेण हतः" इस वाक्य में हनन क्रिया का वास्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विक कर्त्ता राम है, पर राम प्रथम विभक्ति में नहीं है, तृतीया विभक्ति में रखा गया है। इसी प्रकार हनन क्रिया का वास्तविक कर्म रावण है, उसे द्वितीया विभक्ति में न रखकर प्रथमा विभक्ति में रखा गया है।

प्रथमा

१. प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा २।३।४६—केवल प्रातिपदिकार्थ—शब्द का अर्थ, लिङ्ग मात्र, परिमाण मात्र अथवा वचन मात्र बतलाने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है। प्रातिपदिक शब्द का अर्थ—'नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः' जिस—शब्द की जिस अर्थ के साथ नियम से उपस्थिति हो, उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। यथा—प्रातिपदिकार्थ में—उच्चैः, नीचैः, कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्।

(क) संस्कृत के वैयाकरणों के अनुसार प्रातिपदिक—शब्द में जब तक प्रत्यय नहीं लगता, तब तक उसका अर्थ नहीं जाना जा सकता है। प्रातिपदिक (crude form) में सुप् आदि विभक्तियों को जोड़ने से ही अर्थ प्रकट होता है। उदाहरण के लिए यों समझना चाहिए कि विभक्ति रहित राम शब्द का उच्चारण करें तो यह निरर्थक होगा। जब रामः उच्चारण करते हैं तभी इस शब्द का अर्थ प्रकट होता है। इसीलिए संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण में ही विभक्ति प्रत्ययों को नहीं जोड़ते, बल्कि अव्ययों में भी प्रथम विभक्ति के प्रत्यय लगाते हैं। यथा—उच्चैः, नीचैः आदि अव्ययों में प्रथमा विभक्ति न लगावें तो इनका अर्थ ही प्रकट न होगा। अतः इस सूत्र का मथितार्थ यह है कि किसी भी शब्द का अर्थमात्र प्रकट करने के लिए प्रथमा विभक्ति होती है। यथा रामः, कृष्णः, जलम्, ज्ञानम्, बाला, इत्यादि। लिङ्गमात्र में—तटः, तटी, तटम्।

परिमाणमात्र में परिमाण—वजन मात्र का ज्ञान कराने के लिए—'द्रोणोव्रीहिः' यहाँ प्रथमा विभक्ति से द्रोण का परिमाण विदित होता है।

वचनमात्र में—एकः, द्वौ, बहवः।

२. सम्बोधने च २।३।४७—सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—हे राम, हे रामौ, हे रामाः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया

३. कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म १।४।४९—किसी वाक्य में प्रयोग किये गये पदार्थों में से जिसको कर्त्ता सब से अधिक चाहता है, उसे कर्म कहते हैं। अर्थात् कर्त्ता के लिए जो अत्यन्त ईप्सित—अभीष्ट है, उसी की कर्म संज्ञा होती है। जैसे माषेष्वश्वं बध्नाति—उड़द के खेत में घोड़े को बाँधता है, इस वाक्य में बाँधनेवाला अपनी बाँधने की क्रिया के द्वारा अश्व को ही वशंगत करना चाहता है। अतः बन्धन व्यापार द्वारा अश्व ही कर्त्ता को अभीष्ट है, उड़द नहीं। उड़द की चाह अश्व को हो सकती है और उसके प्रलोभन से उसका बांधना सुगमतर हो सकता है, परन्तु कर्त्ता को उसकी चाह नहीं है। अतः माषेषु में कर्म संज्ञा नहीं हुई।

क्रियाविशेष द्वारा जो कर्त्ता को अत्यन्त अभीष्ट है, उसीकी कर्म संज्ञा होती है। जैसे—'पयसा ओदनं भुङ्क्ते' दूध से भात खाता है, वाक्य में दूध भी भात की तरह कर्त्ता को प्रिय है, पर कर्त्ता अपने भोजन व्यापार द्वारा जिसे सबसे अधिक पाना चाहता है, वह भात है, दूध नहीं। यतः दूध पेय है, यह तो केवल भोजन क्रिया के सम्पादन में सहायक है, अतः यहाँ पर पयसा की कर्म संज्ञा नहीं है, ओदनं की है।

४. कर्मणि द्वितीया २।३।२—अनुक्त कर्म को बतलाने के लिए कर्म कारक में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा—हरिं भजति, ग्रामं गच्छति, वेदं पठति।

अभिहित—उक्त (क्रियाफल से सहित) कर्म में प्रातिपदिकार्थमात्र होने से प्रथमा विभक्ति ही होती है। यथा—हरिः सेव्यते, लक्ष्म्या सेवितः, शतेन क्रीतः, विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयंछेत्तुमसाम्प्रतम्। इन प्रयोगों में क्रिया फल सहित है, अतः यहाँ प्रथमा और तृतीया विभक्तियाँ हुई हैं।

५. तथायुक्तं चानीप्सितम् १।४।५०—इच्छा न रहने पर भी कर्त्ता अपने व्यापार द्वारा जिसको आनुषङ्गिकरूप से अनायास प्राप्त कर लेता है, उसे अनीप्सित कर्म कहते हैं। अनीप्सित के दो भेद हैं, उपेक्ष्य और द्वेष्य। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति, ओदनं भुञ्जानो विषं भुंक्ते। प्रथम वाक्य में ग्राम जाना ही कर्त्ता को अभिलषित है, तृण का छूना नहीं। यहाँ तृण उपेक्ष्य कर्म है। द्वितीय वाक्य में कर्त्ता को भात खाना ही अभीष्ट है, जहर खाना नहीं। पर यही विष अनीप्सित होते हुए भी तो भोजन व्यापार रूप क्रिया से सटा हुआ है। अतः यह द्वेष्य कर्म है।

६. अकथितञ्च १।४।५१—अपादान आदि के द्वारा अविवक्षित कारक अकथित कर्म कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि संस्कृत में कुछ धातुएँ ऐसी हैं, जो साधारण कर्म के अतिरिक्त एक कर्म और रखती हैं, जिसे अकथित कर्म कहते हैं। यथा "जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषम्" (मेघदूत)—में आपको प्रधान पुरुष के रूप में जानता हूँ, "धेनुं दोग्धि पयः"; प्रथम वाक्य में 'प्रकृतिपुरुषं' और द्वितीय वाक्य में 'धेनुं' गौण कर्म हैं। द्विकर्मक धातुएँ निम्न सोलह हैं—

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

दुह् (दुहना), याच् (मांगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना) रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (बोलना), शासु (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरना), कृष् (खींचना) और वह् (ढोना) ये सोलह धातुएँ तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखनेवाली धातुएँ द्विकर्मक होती हैं। या—

(१) गां दोग्धि पयः— गाय से दूध दुहता है। यहाँ गाय सामान्यतः अपादान है, पर उक्तनियम के अनुसार गौण कर्म है।

(२) बलिं याचते वसुधाम्—बलि से पृथ्वी मांगता है।

(३) तण्डुलान् ओदनं पचति—चावलों से भात पकाता है। चावल करणार्थक है, पर वक्ता की इच्छा उसे करण कहने की नहीं है, अतः यह गौणकर्म है।

(४) गर्गान् शतं दण्डयति—गर्गों पर एक सौ रुपये दण्ड लगते हैं।

(५) व्रजमवरुणद्धि गाम्—गाय को बाड़े में घेरता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६) माणवकं पन्थानं पृच्छति—माणवक-बच्चे से रास्ता पूछता है।

(७) वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्ष के फलों को इकट्ठा करता है।

(८) माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा—माणवक से धर्म कहता है।

(९) शतं जयति देवदत्तम्—देवदत्त से एक सौ जीत लेता है।

(१०) सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति—क्षीर सागर से अमृत मथता है।

(११) देवदत्तं शतं मुष्णाति—देवदत्त से एक सौ चुराता है।

(१२-१६) ग्रामं अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा—बकरी को गाँव से ले जाता है।

६—अकर्मकधातुर्भियोंगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्म संज्ञक इति वाच्यम् (वा०)—अकर्मक धातुओं के योग में देश, काल, भाव तथा गन्तव्य पथ भी कर्म संज्ञक होते हैं। यथा—

(१) कुरून् स्वपिति—कुरु देश में सोता है (कुरुन् यहाँ देशव्यञ्जक है)

(२) मासमास्ते—महीने भर रहता है (मासम् कालव्यञ्जक है)

(३) गोदोहमास्ते—गाय दुहने की वेला तक रहता है ('गोदोहम्' भावव्यञ्जक है।

(४) क्रोशमास्ते—कोस भर में रहता है (क्रोशम् मार्गव्यञ्जक है)

७. गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्त्ता स णौ १।४।५२—गत्यर्थक, बुद्धयर्थक, ज्ञानार्थक तथा प्रत्यवसानार्थक—भोजनार्थक धातुओं में और जिनका कर्म कोई शब्द या साहित्यिक विषय हो, उन धातुओं में एवं अकर्मक धातुओं में साधारणदशा—अणिजन्त अवस्था का कर्त्ता णिजन्त—प्रेरणा में कर्म हो जाता है; परन्तु कर्म में कोई परिवर्तन नहीं होता। यथा—

साधारण रूप	प्रेरणार्थक रूप
शत्रवः स्वर्गमगच्छन्	शत्रून् स्वर्गमगमयत्
स्वे वेदार्थम् अविदुः	स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्
देवा अमृतम् आश्नन्	देवान् अमृतम् आशयत्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिः वेदम् अध्यैत विधिं वेदमध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आस्त पृथ्वीं सलिले आसयत्

"गमयति देवदत्तो यज्ञदत्तं" में यदि कोई दूसरा व्यक्ति देवदत्त से ऐसा करने की प्रेरणा करता है, तब वाक्य इस प्रकार होगा—

"गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः" विष्णुमित्र देवदत्त को प्रेरित करता है कि वह यज्ञदत्त को जाने के लिए कहे। यहाँ देवदत्त द्वितीया में नहीं रखा गया क्योंकि वह प्रेरणार्थक क्रिया का करता है, साधारण क्रिया का नहीं।

८. हृक्रोरन्यतरस्याम् १।४।५३—हृ एवं कृ धातुओं के साधारण—अणिजन्त अवस्था का कर्त्ता णिजन्त प्रेरणा में विकल्प से कर्म होता है। यथा—

हरति कटं भृत्यः का प्रेरणा में हारयति कटं भृत्यं भृत्येन वा तथा करोति कटं भृत्यः का कारयति कटं भृत्यं भृत्येन वा हो जायगा।

९. अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् (वा०)—अभि पूर्वक वद् तथा दृश् के आत्मनेपद के रूपों का कर्त्ता प्रेरणार्थक में द्वितीया अथवा तृतीया में रखा जाता है। यथा—

अभिवदति देवं भक्तः अभिवादयते देवं भक्तं भक्तेन वा।
पश्यति देव भक्तः दर्शयते देवं भक्तं भक्तेन वा।

इनके आत्मनेपदी न होने पर दर्शयति देवं भक्तम् तथा अभिवादयति देवं भक्तेन ये प्रयोग होंगे।

१०. जल्पतिप्रभृतीनामुपसंख्यानम् (वा०)—जल्प, भाष् इत्यादि धातुओं के प्रकृत दशा के कर्त्ता णिजन्त—प्रेरणा में कर्म हो जाते हैं। यथा—

पुत्रो धर्मं जल्पति भाषते वा का पुत्रं धर्मं जल्पयति भाषयति वा होगा।

अपवादः—

११. नीवह्योर्न (वा०)—नी और वह् धातुओं के प्रेरणार्थक रूपों के प्रयोग में साधारण दशा का कर्त्ता, कर्म न होकर करण ही रहता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भृत्यो भारं नयति वहति वा के स्थान पर भृत्येन भारं नाययति वाहयति वा ही होगा।

१२. नियन्तृकर्त्तृकस्य वहेरनिषेधः (वा०)—नी और वह् धातुओं का कर्त्ता नियन्ता हो तो प्रकृत दशा का कर्त्ता कर्म ही होगा। यथा—

वाहा रथं वहन्ति का वाहयति रथं वाहान् सूतः होगा।

१३. आदिखाद्योर्न (वा०)—अद् और खाद् धातुओं के कर्त्ता उनके प्रेरणार्थक रूपों में कर्म न होकर करण ही होंगे। यथा—

वटुरन्नमत्ति खादति वा के स्थान पर प्रेरणार्थक प्रयोग—वटुनान्नमादयति खादयति वा होगा।

१४. भक्षेरहिंसार्थकस्य न (वा०)—अहिंसार्थक भक्ष् धातु का साधारण दशा का कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म न होकर करण होता है। यथा—

भक्षति अन्नं वटुः के स्थान पर भक्षयति अन्नं वटुना होगा। किन्तु हिंसार्थक होने पर 'भक्षयन्ति सस्यं बलीवर्दाः' के स्थान पर प्रेरणार्थक रूप 'भक्षयति सस्यं बलीवर्दान्' ही होगा।

१५. दृशेश्च (वा०)—दृश् धातु के प्रयोग में साधारण अवस्था का कर्त्ता णिजन्त अवस्था में कर्म हो जाता है। यथा—दर्शयति हरिभक्तान् साधुम्। गतिबुद्धि सूत्र में ज्ञान सामान्य की वाचक बुध् धातु का ग्रहण होने से ज्ञानविशेष की वाचक स्मृ, घ्रा इत्यादि धातुओं के कर्त्ता प्रेरणार्थक में कर्म नहीं होते। यथा—स्मारयति घ्रापयति वा देवदत्तेन।

१६. अधिशीङ्स्थासां कर्म १।४।४६—शी, स्था और आस् धातुओं के पूर्व यदि अधि उपसर्ग लगा हो तो इन क्रियाओं के आधार की कर्म संज्ञा होती है। यथा—अधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः। अधीसनं गोत्रभिदोऽधितस्थौ।

१७. अभिनिविशश्च १।४।४७—अभि और नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के पहले आते हैं, तो विश् के आधार को कर्म कारक होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिनिविशते सन्मार्गम् । धन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते । विभाषा सूत्र की अनुवृत्ति आने से कहीं-कहीं द्वितीया नहीं भी होती है । यथा—पापेऽभिनिवेशः ।

१८. **उपान्वध्याङ्वसः** १।४।४८—यदि वस् धातु के पूर्व उप, अनु, अधि और आ में से कोई भी उपसर्ग लगा हो तो क्रिया के आधार को कर्मकारक होता है । यथा—हरिः वैकुण्ठं उपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति वा ।

१९. **अभुक्त्यर्थस्य न** (वा०)—जब वस् धातु का अर्थ उपवास करना होता है, तब उपवस् का आधार कर्म नहीं होता, अधिकरण ही रहता है । यथा—वने उपवसति—वन में उपवास करता है ।

२०. उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥

उभयतः, सर्वतः, धिक्, उपर्युपरि, अधोऽधः तथा अध्यधि शब्दों की जिससे सन्निकटता पायी जाय, उनमें द्वितीया होती है । यथा—

उभयतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के दोनों ओर ग्वाले हैं ।
सर्वतः कृष्णं गोपाः—कृष्ण के सभी ओर ग्वाले हैं ।
धिक् कृष्णाभक्तम्—कृष्ण की भक्ति नहीं करने वाले को धिक्कार है ।
धिक् पिशुनम्—चुगलखोर को धिक्कार है ।
उपर्युपरि लोकं हरिः—हरि लोक के ठीक ऊपर हैं ।
अध्यधि लोकम्—संसार के ठीक नीचे ।
अधोऽधोलोकम्—लोक के ठीक नीचे ।

२१. अभितः परितः समयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि (वा०)—अभितः—चारो ओर, परितः—सब ओर, समया—समीप, निकषा—समीप, हा और प्रति—ओर शब्दों की जिनमें सन्निकटता पायी जाय, उनमें द्वितीया होती है । यथा—

अभितः कृष्णम्, परितः कृष्णम्, ग्रामं समया, निकषा लङ्काम्, हा कृष्णाभक्तम् । परिजनः राजानम् अभितः तस्थौ—नौकर राजा के चारों ओर खड़े थे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२. अन्तरान्तरेण युक्ते २।३।४—अन्तरा–बीच में और अन्तरेण–विषय में, विना शब्दों की जिसमें सन्निकटता पायी जाय, उसमें द्वितीया होती है। यथा—अन्तरा त्वां मां हरिः। अन्तरेण हरिं न सुखम्।

२३. कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे २।३।५—जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार रहे तो समय और मार्गवाचक शब्दों में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

मासं कल्याणी, मासं अधीते, मासं गुडधानाः, क्रोशं कुटिला नदी, क्रोशमधीते, क्रोशं गिरि।

अत्यन्त संयोग न होने पर द्वितीया विभक्ति नहीं होती। यथा—

मासस्य द्विरधीते; क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः।

२४. कर्मप्रवचनीयाः १।४।८३—कर्म प्रवचनीय संज्ञा उन पदों की होती है, जो न तो किसी विशेष क्रिया के द्योतक होते हैं, न षष्ठी सदृश सम्बन्धों के वाचक ही और न अन्य किसी क्रियापद को ही लक्षित करते हैं, तो भी ये विभक्ति के विधायक माने गये हैं। कर्मप्रवचनीयों के द्वारा विशेष अर्थ लक्षित होता है। कर्मप्रवचनीयों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

२५. अनुर्लक्षणे १।४।८४—जब अनु किसी विशेष हेतु को लक्षित करता है, तो उसकी कर्मप्रवचनीय संज्ञा हो जाती है। यथा—जपमनुप्रावर्षत् जप समाप्त होते ही वृष्टि हो गयी।

२६. तृतीयार्थे १।४।८५—अनु जब तृतीया अर्थ को प्रकट करता हो तो कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—नदीमन्ववसिता सेना (नद्या सह सम्बद्धा इत्यर्थः)

२७. हीने १।४।८६—अनु जब हीन अर्थ को द्योतित करता है, तो उसकी कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—अनुहरिं सुरा—देवता हरि के बाद हैं—

२८. उपोऽधिके च १।४।८७—अधिक तथा हीन अर्थ का वाचक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने पर उप भी कर्म प्रवचनीय संज्ञक होता है। यथा—उप हरिं सुराः—देवता हरि से हीन है। अधिकार्थ में सप्तमी होती है—यथा—उपपरार्धे हरेर्गुणाः—परार्ध्य से अधिक ही हरि के गुण हैं।

२९. लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः १।४।९०—जब अंगुलि निर्देश करना हो, इत्थंभूत—ये इस प्रकार के हैं, यह बतलाना हो; भाग—यह उनके हिस्से में पड़ा या पड़ता है, यह प्रकट करना हो अथवा पुनरुक्ति दिखलानी हो तो प्रति, परि और अनु कर्म प्रवचनीय कहे जाते हैं और द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

(१) वृक्षं प्रति विद्योतते विद्युत्—वृक्ष पर बिजली चमकती है (लक्षण)
(२) भक्तो विष्णुं प्रति पर्यनुवा—विष्णु के ये भक्त हैं (इत्थंभूत)
(३) लक्ष्मीर्हरिं प्रति पर्यनुवा—लक्ष्मी विष्णु के हिस्से में पड़ी (भाग)
(४) वृक्षं वृक्षं प्रति सिञ्चति—प्रत्येक वृक्ष को सींचता है (वीप्सा)

३०. अभिरभागे १।४।९१—भाग को छोड़ अन्य सभी उपर्युक्त अर्थों में अभि कर्मप्रवचनीय होता है। यथा—हरिमभिवर्तते, भक्तो हरिमभि, देवंदेवमभिषिञ्चति।

३१. अधिपरी अनर्थकौ १।४।९३—अनर्थक अपरिवर्तित अर्थवाली धातु के साथ लगे हुए अधि और परि कर्मप्रवचनीय होते हैं। यथा—

कुतोऽध्यागच्छति, कुतः पर्यागच्छति। इन प्रयोगों में गम् धातु का अर्थ अधि और परि उपसर्ग लगने पर भी वही रहता है, उपसर्ग वश अर्थ बदलता नहीं, अतः उक्त उपसर्गों का लगना निरर्थक है।

३२. सुः पूजायाम् १।४।९४—पूजा अर्थ हो तो सु अव्यय की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—सुसिक्तम्—अच्छी तरह सींचा हुआ; सुस्तुतम्—अच्छी तरह स्तुति किया हुआ।

३३. अतिरतिक्रमणे च १।४।८५—अतिक्रमण अर्थात् उल्लङ्घन अर्थ और पूजा अर्थ में अति की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—अतिदेवान् कृष्णः—कृष्ण सब देवताओं की अपेक्षा पूज्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३४. अपिः पदार्थसम्भावनान्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु १।४।८६—पदार्थ, संभावना, अन्ववसर्ग—यथेच्छित आज्ञा करना, गर्हा, और समुच्चय अर्थों में अपि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—

पदार्थ—सर्पिषोऽपि स्यात्—घृत भी हो।

संभावना—अपि स्तुयाद्विष्णुम्—बड़े शक्तिशाली विष्णु की स्तुति करें।

अन्ववसर्ग—अपिस्तुहि—स्तुतिकर—यहाँ अपि शब्द आज्ञा द्योतक है।

गर्हा—धिग्देवदत्तं अपिस्तुयाद्वृषलम्—यदि शूद्र की स्तुति करे तो देवदत्त को धिक्कार है।

समुच्चय—अपिसिञ्च, अपिस्तुहि—सींच भी और स्तुति भी कर।

तृतीया

३५. साधकतमं करणम् १।४।४२—अपने कार्य की सिद्धि में कर्त्ता जिसकी सबसे अधिक सहायता लेता है, उसे करण कहते हैं। यथा—'रामेण बाणेन हतो वाली' वाक्य में कर्त्ता राम, वाली को मारने में सबसे अधिक सहायता बाण की लेता है, यों तो हाथ और धनुष भी सहायक हैं, पर ये अत्यन्त सहायक नहीं हैं, अतः इन्हें करणकारक नहीं माना जायगा। तात्पर्य यह है कि जो क्रिया फल की निष्पत्ति में अत्यन्त उपकारक होता है, उसकी ही करण संज्ञा होती है। "गङ्गायां घोषः" में गङ्गा घोष—झोपड़ी बनाने में अत्यन्त साधक नहीं है, साधन अवश्य है; क्योंकि गङ्गा के किनारे पर ही झोपड़ी है; अतः इस वाक्य में गङ्गा को तृतीया नहीं हुई।

३६. कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८—अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—रामेण रावणः हतः; रामः जलेन घटं प्रक्षालयति।

३७. प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् (वा०)—प्रकृति—स्वभावादि अर्थों में तृतीया होती है। यथा—प्रकृत्या चारुः—स्वभाव से सुन्दर। प्रायेण याज्ञिकः, गोत्रेण गार्ग्यः, समेनैति, विषमेणैति, द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति, सुखेन दुःखेन वा याति, शिशुः क्लेशेन स्थातुं शक्नोति, आत्मानुरूपां विधिनोपमेये (कुमार० १।१८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३८, दिवः कर्म च १।४।४३—दिव् धातु के साधकतम कारक की विकल्प से कर्म संज्ञा होती है, यथाः—अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति—पाशों से या पाशों को खेलता है।

३९. संज्ञोऽन्यतरस्याम् कर्मणि २।३।२२—समपूर्वक ज्ञा धातु के कर्म की विकल्प से करण संज्ञा होती है। यथा—पित्रा पितरं वा संजानीते—पिता के साथ मेल से रहता है।

४०. अपवर्गे तृतीया २।३।६—फल प्राप्ति या कार्य सिद्धि को अपवर्ग कहते हैं और अपवर्ग का बोध कराने के लिए कालसातत्यवाची एवं मार्ग सातत्यवाची शब्दों में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाको अधीतः। द्वादशवर्षैः व्याकरणं श्रूयते (पञ्चतन्त्र १), क्रोशेन पुस्तकं पठितवान्—कोस भर में पुस्तक पढ़ डाली।

४१. सहयुक्तेऽप्रधाने २।३।१९—सह के योग में अप्रधान को—जो प्रधान का साथ देता है, तृतीया विभक्ति होती है। यथा—
पुत्रेण सहागतः पिता।

४२. एवं साकं सार्धं समंयोगेऽपि। विनापि तद्योगं तृतीया (सिद्धान्तकौमुदी)—इसी प्रकार साकं, सार्धं और समम् के योग में भी अप्रधान में तृतीया होती है। यथा—लक्ष्मणः रामेण साकं गच्छति, हनुमान् वानरैः सार्धं जानकीं मार्गयामास, देवदत्तः यज्ञदत्तेन समं स्नाति।

सह अथवा सहायकार्थ शब्दों के विना भी सह अर्थ प्रकट होता हो तो तृतीया विभक्ति होती है। इसमें 'वृद्धो यूना' यह पाणिनि का सूत्र ही प्रमाण है।

४३. पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम् २।३।३२—पृथक्, विना, नाना, शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया या पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—पृथग् रामेण रामात् रामं वा, जलेन, जलाद्, जलं विना कमलं स्थातुं न शक्नोति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४४. येनाङ्गविकारः २।३।२०—जिस विकृत अङ्ग के द्वारा अङ्गी का विकार मालूम हो, उस अङ्ग में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

अक्ष्णा काणः— एक आँख का काना।

पादेन खञ्जः—पैर का लँगड़ा।

कर्णेन बधिरः—कान का बहरा।

४५. तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम् २।३।७२—तुला और उपमा इन दो शब्दों को छोड़कर शेष सब तुल्यार्थक शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—तुल्यः सदृशः समो वा कृष्णस्य कृष्णेन वा। तुला और उपमा के साथ तृतीया नहीं होती, केवल षष्ठी होती है। यथा—तुला उपमा वा कृष्णस्य नास्ति।

विशेषः— कालिदास और माघ ने तुला और उपमा शब्दों के साथ भी तृतीया विभक्ति का प्रयोग किया है। इसका कारण यही लगता है कि "निरंकुशाः कवयः"—कवियों पर वैयाकरणों का बन्धन नहीं रहता है। यथा—

१. तुलां यदारोहति दंतवाससा (कुमार० ५।३४)—जब वह इन्द्र की समता को प्राप्त होता है।

२. नभसा तुलां समारुरोह (रघु० ८।१५)—आकाश की समता को प्राप्त हो गया।

३. स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना (शिशु० १।४)—भस्म से सफेद शम्भु के समान स्पष्ट उपमा वाला।

यद्यपि उपर्युक्त प्रयोगों की सिद्धि खींच-तान के साथ मल्लिनाथ ने की है, पर वह सन्तोषजनक नहीं।

४६. हेतौ २।३।२३—जिस कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है, या होता है, उसमें तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

१. दण्डेन घटः—दण्डे के कारण घड़ा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. गुरौ भक्त्या प्रीतास्मि (रघु० २।६३)—गुरु के प्रति तेरी भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ।

३. पुण्येन दृष्टो हरिः—पुण्य के कारण हरि दिखलायी पड़े।

४. अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है।

५. तेनापराधेन दण्ड्योऽसि—उस अपराध के कारण दण्डनीय हो। हेतु में पञ्चमी भी होती है। यथा—विनयात् पात्रताम् याति।

४७. गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका (सिद्धान्त कौमुदी)—वाक्य में क्रिया प्रयुक्त न होने पर भी यदि अर्थमात्र से समझ ली जाय तो वह क्रिया कारकविधान में प्रयोजिका बन जाती है। यथा—'अलं श्रमेण' का अर्थ है श्रमेण साध्यं नास्ति।

४८. इत्थं भूतलक्षणे २।३।२१—जो जिस प्रकार से जाना जाय उसके लक्षण में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

१. जटाभिस्तापसः—जटाओं से तपस्वी जान पड़ता है।

२. स्वरेण रामभद्रमनुहरति (उत्त० रा०)—स्वर में राम के सदृश है।

विशेष—

इत्थंभूत लक्षण में—विशेष चिह्न के द्वारा—ज्ञप्ति होने पर कहीं-कहीं सप्तमी भी होती है। यथा—धनदेन समस्त्यागे—त्याग में कुबेर समान है।

४९. कार्यं, अर्थं, प्रयोजन, गुण तथा इसी प्रकार उपयोग या प्रयोजन प्रकट करनेवाले शब्दों के योग में उपयोज्य या आवश्यक वस्तु की तृतीया विभक्ति होती है। यथा—

(१) देवपादानां सेवकैर्नप्रयोजनम् (पञ्च० १)—श्रीमान् को नौकरों की क्या आवश्यकता है।

(२) तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम् (पञ्च० १)—धनी लोगों का कोई-कोई कार्य तिनके से भी हो जाता है।

(३) कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः (हितोपदेश)—उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ है, जो न विद्वान् है और न धर्मात्मा।

५०. अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया (वा०)—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निन्दित व्यवहार हो तो दाण् धातु के प्रयोग में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। यथा—दास्या संयच्छते कामुकः।

शिष्ट व्यवहार में चतुर्थी ही होती है, यथा—

भार्यायै संयच्छति।

चतुर्थी

५१. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् १।४।३२—दान कार्य के द्वारा कर्त्ता जिसे सन्तुष्ट करता है उसे सम्प्रदान कहते हैं।

५२. क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम् (वा०)—किसी भी क्रिया के द्वारा जो अभिप्रेत हो, वह सम्प्रदान है। यथा—'पत्ये शेते' पति अनुकूल बनाने की क्रिया का अभिप्रेत पति ही है, अतएव पति सम्प्रदान है।

५३. यजेः कर्मणः करणसंज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्म संज्ञा (वा०)—यज् धातु के कर्म की करण संज्ञा और सम्प्रदान की कर्म संज्ञा होती है। यथा—

पशुना रुद्रं यजते अर्थात् पशुं रुद्राय ददाति—भगवान् रुद्र को पशु देता या चढ़ाता है।

५४. चतुर्थी सम्प्रदाने २।३।१३—सम्प्रदान में चतुर्थी होती है। यथा—विप्राय गां ददाति।

५५. रुच्यर्थानां प्रीयमाणः १।४।३३—रुच् धातु तथा रुच् के समान अर्थवाली अन्य धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है और सम्प्रदान को चतुर्थी होती है। यथा—

हरये रोचते भक्तिः, बालकाय मोदकाः रोचन्ते।

५६. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः १।४।३४—श्लाघ्, ह्नुङ्, स्था और शप् धातुओं के योग में जिसको जनाया जाय, उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—गोपी स्मरात्कृष्णाय श्लाघते ह्नुते तिष्ठते शपते वा—गोपी कामदेव के वश से श्रीकृष्ण के अर्थ अपनी श्लाघा करती है, सपत्नी से कृष्ण को दूर करती है, स्थित होकर कृष्ण को अपना अभिप्राय बताती है तथा कृष्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए अपना उपालम्भ करती है। यहाँ श्लाघ्, हुङ्, स्था और शप् धातु का ज्ञीप्स्यमान कृष्ण है, अतः कृष्ण को सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी हुई है।

५७. धारेरुत्तमर्णः १।४।३५—धृङ्—उधार लेना—कर्ज लेना, धातु के योग में महाजन—कर्ज देनेवाले की सम्प्रदान संज्ञा होती है और सम्प्रदान को चतुर्थी विभक्ति होती है। तात्पर्य यह है कि ऋण देने वाला उत्तमर्ण और ऋण लेने वाला अधमर्ण कहलाता है। उत्तमर्ण की सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः—हरि भक्त के लिए मोक्ष को धारते हैं। यहाँ उत्तमर्ण भक्त है, अतः भक्त को चतुर्थी हुई है।

श्यामः अश्वपतये शतं धारयति—श्याम ने अश्वपति से एक सौ कर्ज लिया।

५८. स्पृहेरीप्सितः १।४।३६—स्पृह् धातु के योग में जिसे चाहा जाय, वह सम्प्रदान संज्ञक होता है। सम्प्रदान को चतुर्थी विभक्ति में रखते हैं। यथा—पुष्पेभ्यः स्पृहयति—फूलों की चाहना करता है।

विशेष—

स्पृह् धातु से बने हुए शब्दों के योग में ईप्सित कभी-कभी सम्प्रदान के रूप में देखा जाता है, यथा—योगेभ्यः स्पृहयालवः (वैराग्यशतक, ६४)—भोगों का इच्छुक; कथमन्ये करिष्यन्ति पुत्रेभ्यः पुत्रिणः स्पृहाम् (वेणी सं० अं० ३)—फिर दूसरे गृहस्थ पुत्रों की इच्छा कैसे करेंगे ?

साधारणतया स्पृह् धातु से प्रत्यय निष्पन्न शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी (रघु० ३।५)

५९. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः १।४।३७—क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्या तथा असूय् धातुओं के योग में तथा इन धातुओं के समान अर्थ वाली धातुओं के योग में जिनके ऊपर क्रोधादि किये जाते हैं, उनकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—

हरये क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति, असूयति वा—हनुमान पर रावण क्रोध करता है, द्रोह—अपकार करता है, ईर्ष्या करता है, दोष निकालता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६०. क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म १।४।३८—जब क्रुध् और द्रुह् धातु सोपसर्ग होती हैं तब जिसके प्रति क्रोध या द्रोह् किया जाता है, वह कर्म संज्ञक होता है, सम्प्रदान संज्ञक नहीं। यथा—

क्रूरमभिक्रुध्यति, संद्रुह्यति—क्रूर के ऊपर क्रोध करता है, द्रोह करता है। मच्छरीरमभिद्रोग्धुं (मुद्रा० १)—मेरे शरीर पर आघात पहुँचाने के लिए; न खलु तामभिक्रुद्धो गुरुः (विक्रमो० ३)—क्या गुरुजी उस पर गुस्सा नहीं हुए ?

६१. प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्त्ता १।४।४०—प्रति और आङ् उपसर्ग से परे श्रु धातु के योग में प्रेरणा रूप व्यापार में पूर्व का कारक सम्प्रदान संज्ञक होता है। यथा—कृष्णो विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा—कृष्ण ब्राह्मण को गाय देने की प्रतिज्ञा करते हैं; प्रति शुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् (रघु० १५।४)—काकुत्स्थ ने उन लोगों से विघ्न हटाने की प्रतिज्ञा कर दी।

६२. राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः १।४।३९—राध् और ईक्ष् धातुओं के योग में विविध प्रकार के प्रश्न करनेवाला सम्प्रदान संज्ञक होता है। यथा—कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः।

६३. अनुप्रतिगृणश्च १।४।४१—अनु और प्रति उपसर्ग से परे गृ धातु के प्रयोग में पूर्व का कारक सम्प्रदान संज्ञक होता है। यथा—होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति होता—प्रथम कहता है, पश्चात् अध्वर्यु उपदेश करता है। यहाँ पूर्व कारक होता में चतुर्थी हुई है।

६४. परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् १।४।४४—निश्चित काल के लिए वेतन इत्यादि पर किसी को रखा जाना परिक्रयण कहलाता है, उस परिक्रयण में जो करण होता है, उसकी विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होती है। यथा—शतेन शताय वा परिक्रीतः।

६५. तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या (वा०)—जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाय, उस प्रयोजन में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्तये हरिं भजति—मुक्ति के लिए हरि को भजता है।

धनाय प्रयतते—धन के लिए प्रयत्न करता है।

काव्यं यशसे—काव्य यश के लिए किया जाता है।

यूपया दारुः—खम्भा बनाने के लिए लकड़ी

६६. क्लृपि संपद्यमाने च (वा०)—जब कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम में चतुर्थी होती है। यथा—

भक्तिः ज्ञानाय कल्पते, सम्पद्यते, जायते वा—भक्ति ज्ञान के लिए होती है।

६७. उत्पातेन ज्ञापितेच (वा०)—उत्पात के द्वारा ज्ञापित वस्तु में चतुर्थी होती है। यथा—वाताय कपिला विद्युत्—रक्ताभ विद्युत् आँधी की सूचना देती है।

मांसौदनाय व्याहरति मृगः—हिरण की आवाज मांस-भोजन प्राप्ति की सूचना देती है।

६८—हितयोगे च (वा०)—हित और सुख के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

ब्राह्मणाय हितं सुखम् वा—ब्राह्मण के लिए हितकर या सुखकर।

हितमामयाविने—रोगी के लिए हितकर।

६९. क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः २।३।१४—तुमुन् प्रत्ययान्त धातु के परोक्ष प्रयोग में कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

फलेभ्योयाति—फलान्याहर्तुं याति—फलों को लेने के लिए जाता है।

नमस्कुर्मो नृसिंहाय—नृसिंहमनुकूलयितुमित्यर्थः—नृसिंह को अनुकूल करने के लिए हम लोग नमस्कार करते हैं।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य—स्वयम्भुवं प्रीणयितुं नमस्कृत्य—ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके।

वनाय गां मुमोच—वनं गन्तुं—वन जाने के लिए गाय छोड़ दी।

७०. तुमर्थाच्च भाववचनात् २।३।१५—किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोड़ने से जो अर्थ निकलता है, उसको प्रकट करने के लिए उसी धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करने पर उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

यागाय याति—यष्टुं याति—यज्ञ करने के लिए जाता है।

दानाय धनमर्जयति—दातुं धनमर्जयति—दान देने के लिए धन कमाता है।

७१. नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च २।३।१६—नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है।

हरये नमः—हरि को नमस्कार हो।

प्रजाभ्यः स्वस्ति—प्रजा का कल्याण हो।

अग्नये स्वाहा—अग्नि को यह आहुति है।

पितृभ्यः स्वधा—पितरों को यह अर्पित है।

इन्द्राय वषट्—इन्द्र को बलि अर्पित है।

(क) अलम् शब्द के चार अर्थ हैं—भूषण, पर्याप्त, सामर्थ्य, समाप्ति और निषेध। अलं के योग में चतुर्थी तभी होती है, जब अलम् का अर्थ—पर्याप्त–सामर्थ्य होता है। यथा—

दैत्येभ्यो हरिः अलम्—हरि दैत्यो के लिए समर्थ हैं।

अलं मल्लो मल्लाय—मल्ल दूसरे मल्ल के लिए काफी है।

(ख) सामर्थ्य अर्थ देने वाले प्रभु आदि शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य—यहाँ सामर्थ्य अर्थ देने वाले प्रभु शब्द के योग में भुवनत्रय को षष्ठी विभक्ति हो गई है।

पाणिनि के "तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः" सूत्र से ज्ञात होता है कि प्रभु शब्द के योग में चतुर्थी और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं।

७२. उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी (वा०)—उपपद विभक्ति–पद के सम्बन्ध में होनेवाली विभक्ति से कारक विभक्ति—क्रिया के सम्बन्ध में होनेवाली विभक्ति बलवान् होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अव्ययों के योग में जो विभक्तियाँ प्रयुक्त होती हैं, उन्हें उपपद विभक्ति कहते हैं। अतः नमस्करोति क्रिया के योग में नमः अव्यय की अपेक्षा चतुर्थी विभक्ति नहीं होगी, बल्कि नमस्करोति क्रियापद की अपेक्षा द्वितीया विभक्ति होगी। कहीं-कहीं चतुर्थी भी होती है। यथा—

मुनित्रयं नमस्कृत्य (सिद्धान्तकौ०)—मुनित्रय को नमस्कार करके।

धातारं प्रणिपत्य (कुमार० २।३)—ब्रह्मा को प्रणाम कर।

तस्मै प्रणिपत्य नन्दी (कुमार० ३।६०) नन्दी उसको प्रणाम करके।

तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम (काद०)—भक्तिपूर्वक उसको नमस्कार किया।

आर्यं प्रणिपत्य (मुद्रा० १) आर्य को नमस्कार कर।

७३—कथ्, ख्या, शंस् एवं चक्ष् धातुओं के अनुक्त कारक तथा निपूर्वक प्रेरणार्थक विद् धातु के साधारण दशा के कर्ता का कर्मरूप में प्रयोग न होकर सम्प्रदान रूप में प्रयोग होता है। यथा—

आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् (शकु० अंक १)—देवि ! तुमसे सत्य कहता हूँ।

यस्मै ब्रह्मपरायणं जगौ (उत्तर० ४)—जिसे वेद पढ़ाया।

एहि, इमां वनस्पति सेवां काश्यपाय निवेदयावहे (शकु० अंक ४)—आओ वृक्षों की यह सेवा कण्व ऋषि को निवेदित करें।

७४—भेजना अर्थवाली धातुओं के प्रयोग में जिस व्यक्ति के पास कोई भेजा जाता है, वह चतुर्थी में तथा जिस स्थान पर भेजा जाता है, वह द्वितीया विभक्ति में रखा जाता है। यथा—

भोजेन दूतो रघवे विसृष्टः (रघु० ५।३९)—महाराज भोज ने रघु के पास दूत भेजा।

माधवाय पद्मावतीं प्रहिण्वता देवरातेन (मालती मा० अंक १)—देवरात ने पद्मावती के पास माधव को भेजा।

७५. मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु २।३।१७—प्राणी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़ अनादर अर्थ में दिवादि मन् धातु के योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है। विकल्पाभाव में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

न त्वां तृणं तृणाय वा मन्ये—मैं तुमको तिनके के बराबर नहीं समझता।

७६. जहाँ अनादर न दिखलाकर समता या तुलना का भाव प्रकट किया जाय, वहाँ केवल द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—त्वां तृणं मन्ये—तुम्हें तृणवत् समझता हूँ।

७७. अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्विति वाच्यम् (वा०)—जहाँ प्राणि का निषेध किया है, उस स्थान में नौ, काक, अन्न, शुक, शृगाल, इनका निषेध नहीं समझना चाहिये। यथा—न त्वां नावमन्नं वा मन्ये।

अनादर अर्थ में प्राणी होने पर भी चतुर्थी हो जाती है। यथा—न त्वां शुने श्वानं वा मन्ये—मैं तुमको कुत्ता भी नहीं मानता।

७८—गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि २।३।१२—गत्यर्थक धातुओं का कर्म मार्ग न हो और क्रिया के निष्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़े तो उस कर्म में द्वितीया और चतुर्थी विभक्ति हो जाती हैं।

ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति।

जब गत्यर्थक धातु का कर्म मार्ग होता है, तो केवल द्वितीया होती है। यथा—पन्थानं गच्छति। जहाँ शारीरिक व्यापार नहीं करना पड़ता, वहाँ भी केवल द्वितीया होती है। यथा—मनसा हरिं भजति। यहाँ हरि के पास जाने में केवल मन से काम लिया जा रहा है, शरीर से नहीं। अतः 'हरि' में केवल द्वितीया ही होगी, चतुर्थी नहीं। इसी प्रकार निम्न प्रयोगों में केवल द्वितीया ही हुई है—

नरपतिहितकर्त्ता द्वेषतां याति लोके।
तदाननं मृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ।
विद्या ददाति विनयं, विनयात् याति पात्रताम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते।
पश्चादुमाख्या सुमुखी जगाम।

७९. चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थहितैः २।३।७३—आशीर्वाद अर्थ में आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ और हित के योग में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है, पक्ष में षष्ठी विभक्ति हो जाती है। यथा—

आयुष्यं चिरंजीवितं कृष्णाय कृष्णस्य वा भूयात्। मद्रं भद्रं कुशलं निरामयं सुखं शं अर्थः प्रयोजनं हितं पथ्यं वा भूयात्।

पञ्चमी

८०. ध्रुवमपायेऽपादानम् १।४।२४—जिससे किसी वस्तु का विश्लेष होता है, उसे अपादान कहते हैं।

८१. अपादाने पञ्चमी २।३।२८—अपादान में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—ग्रामादायाति—ग्राम से आता है; धावतो अश्वात्पतति—दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है। प्रासादात् अपतत्—छत से गिरता है।

८२. जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वा०)—जुगुप्सा, विराम और प्रमाद तथा इनके समानार्थक शब्दों के साथ पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—पापाज्जुगुप्सते विरमति, धर्मात्प्रमाद्यति, न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः। कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः।

(मेघदूत १ श्लो०)।

अपवाद—

जिसके विषय में भूल या असावधानी होती है, उसमें सप्तमी का भी प्रयोग होता है।

यथा—न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः (मनुस्मृति २।२१३)।

८३. भीत्रार्थानां भयहेतुः १।४।२५—जिसके कारण डर मालूम हो अथवा जिसके डर के कारण रक्षा करनी हो, उस कारण को पञ्चमी होती है।

यथा—चौराद् बिभेति, सर्पाद् भयम्, रक्ष मां नरकपातात्,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भीमाद् दुःशासनं त्रातुम्, चौरात् त्रायते। भयहेतु न हो तो सप्तमी हो जाती है। यथा—अरण्ये बिभेति त्रायते वा।

८४. पराजेरसोढः १।४।२६—परा पूर्वक जि धातु के योग में जो असह्य होता है, उसकी अपादान संज्ञा होती है और पञ्चमी विभक्ति हो जाती है। यथा—

अध्ययनात् पराजयते—अध्ययन से भागता है (अध्ययन उसके लिए कष्टप्रद है)। परन्तु हराने के अर्थ में द्वितीया ही होती है; यथा—शत्रून् पराजयते अर्थात् शत्रुओं को पराजित करता है।

८५. वारणार्थानामीप्सितः १।४।२७—जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता है, वह अपादान होता है। यथा—

यवेभ्यो गां वारयति—जौ से गाय को रोकता है।

मित्रं पापात् निवारयति—मित्र को पाप से दूर रखता है।

८६. अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति १।४।२८—जब कोई अपने को किसी से छिपाता है, तो जिससे छिपाता है, वह अपादान होता है। यथा—

मातुर्निलीयते कृष्णः—कृष्ण अपनी माता से छिपता है।

८७. आख्यातोपयोगे १।४।२९—नियमपूर्वक विद्या ग्रहण करने में पढ़ानेवाले की अपादान संज्ञा होती है। यथा—

उपाध्यायाद् अधीते, मया तीर्थादभिनयविद्या शिक्षिता। तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि (उत्तर०)

नियम न होने पर षष्ठी होती है; यथा—नटस्य गाथां शृणोति।

८८. जनिकर्तुः प्रकृतिः १।४।३० जन धातु के कर्त्ता का आदिकारण अपादान होता है। यथा—

ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते, कामात्क्रोधोऽभिजायते।

जिससे कोई उत्पन्न होता है, उसमें प्रायः सप्तमी भी होती है; यथा—

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ (मनु० ३।१७४); शुकनासस्यापि रेणुकायां तनयो जातः (कादम्बरी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८९. भुवः प्रभवश्च १।४।३१—उत्पन्न होनेवाले का जो प्रभव—उत्पत्ति स्थान होता है, वह अपादान कहलाता है। यथा—हिमवतो गङ्गा प्रभवति।

९०. ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च (वा०)—ल्यप् का लोप होने पर कर्म और अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

प्रासादात्प्रेक्षते—प्रासादमारुह्यप्रेक्षते, आसनात्प्रेक्षते—आसने उपविश्य प्रेक्षते, महल पर चढ़कर देखता है और आसन पर बैठ कर देखता है। श्वशुराज्जिह्रेति—श्वशुरं वीक्ष्य जिह्रेति—श्वशुर को देखकर लजाती है।

९१. प्रश्नाख्यानयोश्च (वा०)—प्रश्न और आख्यानवाची शब्दों से पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—कुतो भवान्पाटलिपुत्रात्।

९२. यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी (वा०)—जिस स्थान या समय से किसी दूसरे स्थान या समय की दूरी दिखायी जाती है, वह स्थान या समय पञ्चमी विभक्ति में रखा जाता है।

९३. तद्युक्ताध्वनः प्रथमासप्तम्यौ (वा०)—और जो स्थान की दूरी दिखायी जाती है, उसका वाचक शब्द प्रथमा या सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है। यथा—"वनाद्ग्रामो योजनं योजने वा" इस वाक्य में वन से दूरी दिखायी गयी है, अतः वन को पंचमी विभक्ति में रखा गया है और जितनी दूरी दिखायी गयी है, उसे प्रथमा या सप्तमी में रखा गया है। अतः योजनं या योजने हुआ है।

९४. कालात् सप्तमी च वक्तव्या (वा०)—समय की दूरी का वाचक सप्तमी विभक्ति में रखा जाता है। यथा—

कार्त्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्त्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है। अस्मात् दिवसात् दीपावली दशसु दिवसेषु।

९५. पञ्चमी विभक्ते २।३।४२—ईयसुन् अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक भेद दिखाया जाता है, उसमें पञ्चमी होती है। यथा—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् (गीता)

सत्यादप्यनृतं श्रेयः (वेणी ३); मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः (रघु०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४।५६) चैत्ररथादनूने वृन्दावने (रघु० ६।५०)—अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते (हितो०), मौनात् सत्यं विशिष्यते।

९६. अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते २।३।२९—अन्य, इतर, आरात्, ऋते और दिग्वाचक प्रत्यक्, उदीच्, प्रभृति शब्दों तथा दक्षिणा, उत्तरा प्रभृति शब्दों एवं दक्षिणाहि, उत्तराहि प्रभृति शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

(१) अन्यो भिन्न इतरो वा कृष्णात्।
(२) आराद्वनात्
(३) ऋते कृष्णात्
(४) पूर्वो ग्रामात्
(५) चैत्रात्पूर्वः फाल्गुनः
(६) दक्षिणा ग्रामात्
(७) दक्षिणाहि ग्रामात्

९७. प्रभृति, आरभ्य, बहिः, अनन्तरम्, परम् और ऊर्ध्वम् के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

(१) शैशवात् प्रभृति पोषिताम् (उत्तर० १)—बचपन से ही पाली-पोसी हुई।

(२) मालत्याः प्रथमावलोकनदिवसादारभ्य (मालती० ६)—मालती के प्रथम दर्शन के दिन से।

(३) निवसन्नावसथे पुराद् बहिः (रघु० ८।१४)—नगर के बाहर किसी निवास स्थान में रहते हुए।

(४) पाणिपीडनविधेरनन्तरम् (कुमार० ८।१) उसके पाणिग्रहण के बाद।

(५) अस्मात्परम् (शकु० ६)—इस पुरुष के बाद

(६) ऊर्ध्वं म्रियेय मुहूर्त्ताद्धि (भट्टि० १८।३६)—एक क्षणभर के बाद मर जाऊँगा।

९८. अपपरी वर्जने १।४।८८—अप और परि ये दो अव्यय वर्जन अर्थ में कर्मप्रवचनीय होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९९. आङ् मर्यादावचने १।४।८९—आङ् अव्यय मर्यादा अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक होता है।

१०० पञ्चम्यपाङ्परिभिः २।३।१०—कर्मप्रवचनीय संज्ञक अप, परि और आङ् के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

(१) अप परि वा हरेः संसारः—भगवान् को छोड़कर अन्यत्र संसार है।

(२) आ मुक्तेः संसारः—मुक्ति पर्यन्त संसार है।

(३) आपरितोषात् विदुषाम् (शकु० १)—विद्वानों को सन्तोष हो जाने तक।

(४) आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि (शकु०)—आरम्भ से सुनना चाहता हूँ।

(५) आकैलासात् (मेघदूत ११)—कैलास तक।

१०१ प्रतिः प्रतिनिधिप्रतिदानयोः १।४।८२—प्रतिनिधि और प्रतिदान अर्थ में प्रति अव्यय कर्मप्रवचनीयसंज्ञक होता है।

१०२. प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात् २।३।११—प्रतिनिधि एवं प्रतिदान अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक प्रति अव्यय के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

(१) प्रद्युम्नः कृष्णात्प्रति—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं।

(२) तिलेभ्यः प्रतियच्छति माषान्—तिलों के बदले में उड़द देता है।

१०३, अकर्त्तर्यृणेपञ्चमी २।३।२४—कर्ता को छोड़कर हेतुभूत ऋण से पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—शताद्बद्धः।

१०४. विभाषागुणेऽस्त्रियाम् २।३।२५—हेतु या कारण प्रकट करने वाले गुणवाचक स्त्रीलिङ्ग भिन्न शब्द विकल्प से तृतीया या पञ्चमी विभक्ति में रखे जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा—जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः—वह अपनी मूर्खता के कारण पकड़ा गया।

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च (रघु० २।६३)।

विशेष—

(१) गुणवाचक न होने पर अस्त्रीलिङ्ग होते हुए भी तृतीया होती है।

यथा—धनेन कुलम्।

(२) गुणवाचक होने पर भी स्त्रीलिङ्ग होने से तृतीया ही होती है।

यथा—बुद्ध्या मुक्तः—वह अपनी बुद्धि के कारण छोड़ दिया गया।

(३) कभी-कभी स्त्रीलिङ्ग संज्ञा भी इसी अर्थ में पञ्चमी में प्रयुक्त होती है। यथा—नास्ति घटोऽनुपलब्धेः।

(४) वाद-विवाद करने या तर्क पूर्ण उत्तर देने के लिए पञ्चमी विभक्ति प्रायः सम्पूर्ण कार्य-कारण सम्बन्ध का बोध कराती है।

यथा—पर्वतो वह्निमान् धूमात्।

१०५. करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्ववचनस्य २।३।३३—अद्रव्यवाची स्तोक, अल्प, कृच्छ्र, कतिपय के करण में तृतीया और पञ्चमी होती है। यथा—

(१) स्तोकेन स्तोकात् वा मुक्तः।

(२) अल्पेन अल्पाद्वा, कृच्छ्रेण कृच्छ्राद्वा, कतिपयेन कतिपयाद्वा मुक्तः।

१०६. दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च २।३।३५—अद्रव्यवाची दूर अर्थवाले और समीप अर्थवाले शब्दों से द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

(१) दूरं दूरात् दूरेण दूरेवा ग्रामस्य,

(२) अन्तिकं अन्तिकात् अन्तिकेन अन्तिके वा ग्रामस्य।

अद्रव्यवाची कहने के कारण दूरः पन्थाः में द्वितीया, पञ्चमी नहीं हुई, क्योंकि पन्था द्रव्य वाची है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठी

१०७. षष्ठी शेषे २।३।५० प्रातिपादिक और कारक के अतिरिक्त जो स्वस्वामित्व भावादि सम्बन्ध है, वह शेष कहलाता है और शेष में षष्ठी विभक्ति होती है। मुख्यतः सम्बन्ध चार प्रकार का है—स्वस्वामी भाव सम्बन्ध, जन्यजनक भाव सम्बन्ध, अवयवावयवि सम्बन्ध और स्थान्यादेश।

यथा—साधोर्धनं पितुः पुत्रः पशोः पादो ब्रुवोवचिः।
उदाहृतश्चतुर्द्धा यः कविभिः परिशीलितः॥

अर्थात्—'साधोर्धनं' में स्वस्वामीभाव सम्बन्ध है, यतः साधु धनका स्वामी है; 'पितुः पुत्रः' में जन्य-जनक भाव सम्बन्ध है; 'पशोः पादः' में अवयव-अवयवी भाव सम्बन्ध है यतः 'पशु पैर' में पशु अवयवी है और पैर अवयव तथा 'ब्रुवोवचिः' में स्थान्यादेश सम्बन्ध है; यतः ब्रू के स्थान पर वचि आदेश होता है। इन सम्बन्धों के अतिरिक्त कार्यकारणादि और भी सम्बन्ध हैं; सम्बन्ध में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

राज्ञः पुरुषः—(स्वस्वामि भाव सम्बन्ध)

१०८. कर्मादीनामपि सम्बन्ध मात्र विवक्षायां षष्ठ्येव (सिद्धान्त कौमुदी)—कर्मादि में भी सम्बन्ध मात्र की विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति हो जाती है। यथा—

सतां गतम्, सर्पिषो जानीते, मातुः स्मरति, एधोदकस्योपस्कुरुते, भजे शम्भोश्चरणयोः, फलानां तृप्तः।

१०९. षष्ठी हेतुप्रयोगे २।३।२६—हेतु शब्द के प्रयोग में जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है, वह और हेतु शब्द दोनों ही षष्ठी में रखे जाते हैं। यथा—

अन्नस्य हेतोः वसति—अन्न प्राप्ति के प्रयोजन से रहता है।
अध्ययनस्य हेतोः वसति—अध्ययन के लिए रहता है।
अल्पस्य हेतोः बहुहातुमिच्छन्।

११० सर्वनाम्नस्तृतीया च २।३।२७—जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है, तो सर्वनाम और हेतु शब्द दोनों में तृतीया, पञ्चमी या षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कस्य हेतोः वसति, कस्मात् हेतोः अत्र वसति, केन हेतुना अत्र वसति।

१११. निमित्त पर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम् (वा०)—निमित्त शब्द का अर्थ रखनेवाले—कारण, हेतु, प्रयोजन, शब्दों का प्रयोग होने पर सभी विभक्तियाँ होती हैं। यथा—किं निमित्तं वसति, केन निमित्तेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मात् निमित्तात्, कस्य निमित्तस्य, कस्मिन् निमित्ते।

इस वार्तिक में दिया गया प्रायः शब्द इस बात का द्योतक है कि जब सर्वनाम का प्रयोग नहीं रहता, तब प्रथमा, द्वितीया नहीं होती, शेष विभक्तियाँ ही होती हैं। यथा—

ज्ञानेन निमित्तेन, ज्ञानाय निमित्ताय, ज्ञानात् निमित्तात्, ज्ञानस्य निमित्तस्य, ज्ञाने निमित्ते।

११२. षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन २।३।३०—अतसुच् (तस्) प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

(१) ग्रामस्य दक्षिणतः, पुरः, पुरस्तात्, उपरि, उपरिष्टात्।
(२) यः पुरस्ताद्यतीनाम् (मालविका १)
(३) तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतोः (मेघदूत)
(४) अपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया (रघुवंश २।२)

११३. दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम् २।३।३४—दूर, अन्तिक तथा इसके समान अर्थ रखनेवाले शब्दों का प्रयोग होने पर षष्ठी तथा पञ्चमी होती है। यथा—

दूरं निकटं ग्रामस्य ग्रामाद्वा, प्रत्यासन्नो माधवी मण्डपस्य

११४. एनपा द्वितीया २।३।३१—एनप्प्रत्ययान्त शब्दों के योग में द्वितीया और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

(१) दक्षिणेन ग्रामस्य ग्रामं वा
(२) दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु (महाभारत ६।८।२)
(३) दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् (शकु० १)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) धनपतिगृहानुत्तरेण (मेघदूत ७८)

११६. ज्ञोविदर्थस्य करणे २।३।५१—ज्ञानार्थक ज्ञाधातु के प्रयोग में शेष विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

सर्पिषो ज्ञानम्—घी की जानकारी।

११६. अधीगर्थदयेशां कर्मणि २।३।५२—अधिपूर्वक इ धातु—स्मरण करना, दय्, ईश्—समर्थ होना तथा इन धातुओं का अर्थ रखनेवाली अन्य धातुओं के कर्म में भी षष्ठी होती है। यथा—मातुः स्मरणम्, सर्पिषो दयनम्, ईशनं वा।

ननु प्रभवत्यार्यः शिष्यजनस्य (मालविका० १)—क्यों श्रीमान् अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव रखते हैं।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः (मालती ४)

यदि प्रभविष्यामि आत्मनः (शकु० १)

स्मरन् राघववाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः।

रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः (भट्टि० ८।११९)।

विशेष—

सामान्यतः स्मृ धातु के योग में द्वितीया विभक्ति ही होती है। यथा—स्मरसि गोदावरीम् (उत्तर राम०) इस प्रकार प्रपूर्वक भू धातु तथा उससे बने शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति भी होती है। यथा प्रभवति मल्लो मल्लाय।

११७. कृञः प्रतियत्ने २।३।५३—शेष विवक्षा—सम्बन्ध विवक्षा होने पर कृञ् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

एधोदकस्योपस्करणम्—इन्धन, जल इत्यादि का इकट्ठा करना।

११८. रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः २।३।५४—भावकर्तृक ज्वर धातु को छोड़ रुजार्थक धातुओं के कर्म में शेष विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

चौरस्य रोगस्य रुजा।

११९. अज्वरिसन्तापयोरितिवाच्यम् (वा०)—ज्वर धातु के साथ-साथ सम् पूर्वक तप् धातु का भी निषेध समझना चाहिए। यथा—चौरज्वरः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौरसन्तापोवा। यहाँ भावकर्तृक ज्वर धातु तथा सन्ताप धातु के कर्म में शेष विवक्षा में षष्ठी विभक्ति प्राप्त थी, परन्तु उक्त वार्त्तिक ने निषेध कर दिया।

१२०. आशिषिनाथः २।३।५५—आशीर्वाद अर्थवाली नाथ धातु के साथ शेष विवक्षा होने पर कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—सर्पिषो-नाथनम्—घृत सम्बन्धी आशीर्वाद अर्थ न हो तो षष्ठी नहीं होती। यथा—माणवकनाथनम्—माणवक सम्बन्धी याञ्चा।

१२१. जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम् २।३।५६—हिंसार्थक जस् (णिजन्त), नि तथा प्र पूर्वक हन्, क्रथ (णिजन्त), नट् (णिजन्त) तथा पिष् धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

चौरस्योज्जासनम्, चोरस्य निप्रहणनम्, निहननम्, प्रहणनम् वा।

निजौजसौज्जासयितुं जगद्द्रुहाम् (माघ १।३७)—जगत् के द्रोहियों को अपने बल से मारने के लिए,

चौरस्योन्नाटनम्, चौरस्य क्राथनम्, वृषलस्य पेषणम्।

क्रमेण पेष्टुं भुवनद्विषामपि (माघ १।४०)

१२२. यवहृपणोः समर्थयोः २।३।५७—समान अर्थवाली वि और अव पूर्वक हृ तथा पण् धातुओं के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। ये धातुएँ जुआ तथा क्रय-विक्रय व्यवहार में समानार्थक मानी जाती हैं। यथा—

शतस्य व्यवहरणं पणनं वा—सौ का व्यवहार या जुआ।

विशेष—

इस अर्थ में प्रायः द्वितीया का प्रयोग भी देखा जाता है। यथा—

पणस्व कृष्णां पाञ्चालीम् (महाभारत)—पञ्चालराज की कन्या द्रौपदी को दाँव पर रख दो।

१२३. दिवस्तदर्थस्य २।३।५८—द्यूत एवं क्रय-विक्रय व्यवहार में दिव् धातु के कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

शतस्य दीव्यति—सौ का जुआ खेलता है।

दिव् धातु का उपर्युक्त अर्थ न होने पर कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मणं दीव्यति—ब्राह्मण की स्तुति करता है।

१२४. विभाषोपसर्गे २।३।५९—उपसर्ग पूर्वक दिव् धातु के योग में उपर्युक्त अर्थ हो तो विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति।

१२५. प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवता सम्प्रदाने २।३।६१—देवता के अर्थ में दान देने में वर्तमान प्रेष्य और ब्रुव् धातुओं के हविर्विशेष के वाचक कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—अग्नये छागस्य हविषो वपाया: प्रेष्य अनुब्रूहि वा।

१२६. कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे २।३।६४—कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ के समान अर्थवाले प्रत्ययों के प्रयोग में कालवाची अधिकरण में शेष विवक्षा होने पर षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्। द्विरह्नो भोजनम्।

१२७. कर्तृकर्मणोः कृति २।३।६५—कृत् प्रत्यय के योग में कर्त्ता और कर्म को षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

कृष्णस्य कृति—कृष्ण का कार्य (कृ + क्तिन्); जगतः कर्त्ता कृष्णः। रामस्य गतिः, वेदस्य अध्येता, क्रतूनामाहर्ता।

१२८. गुणकर्मणि वेष्यते (वा०)—कृदन्त के गौणकर्म में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—नेता अश्वस्य स्रुघ्नस्य स्रुघ्नं वा।

कृदन्त कहने का अर्थ यह है कि तद्धित में षष्ठी विभक्ति नहीं होगी। यथा—कृतपूर्वीकटम्।

१२९. उभयप्राप्तौ कर्मणि २।३।६६—जहाँ कर्त्ता, कर्म दोनों आये हों, वहाँ कृदन्त के योग में कर्म में ही षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन

१३०. स्त्री प्रत्यययोरकारकयोर्नायं नियमः (वा०)—अक् और आकार कृत् प्रत्ययान्त शब्द यदि स्त्रीलिंग में हों तो उक्त नियम नहीं लगता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् कर्त्ता और कर्म दोनों में षष्ठी विभक्ति हो जाती है। यथा—भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः।

१३१. शेषे विभाषा (वा०)—अन्य स्त्रीलिङ्ग कृत् प्रत्ययों के योग में कर्त्ता में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—विचित्रा जगतः कृतिर्हरेर्हरिणा वा। इस वाक्य में कर्त्ता हरि को विकल्प से षष्ठी विभक्ति हुई है।

१३२. स्त्री प्रत्यय इत्येके, केचिदविशेषणविभाषामिच्छन्ति (सिद्धान्त-कौमुदी) कुछ आचार्यों के मतानुसार यह विकल्प स्त्रीलिंग कृत् प्रत्ययों के कर्त्ता के विषय में ही नहीं, अपितु अन्य लिंगों में कृत् प्रत्ययों के कर्त्ता के विषय में भी है। यथा—

शब्दानामनुशासनमाचार्येण आचार्यस्य वा।

१३३. क्तस्य च वर्तमाने २।३।६७—वर्तमान अर्थ में विहित क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा।

१३४. अधिकरणवाचिनश्च २।३।६८—अधिकरणवाची क्त प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—इदमेषामासितं गतं शयितं भुक्तं वा। 'आसितं' अधिकरण में क्त प्रत्यय होकर बना है, अतः इसके योग में एषां को षष्ठी विभक्ति हुई है।

१३५. न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृणाम् २।३।६९—लादेश प्रत्यय—शतृ, शानचादि में अन्त होने वाले शब्द; उ, अकप्रत्ययान्तशब्द, अव्यय, निष्ठा संज्ञक क्त और क्तवतु प्रत्ययान्त शब्द, खल प्रत्यय के अर्थ में होने वाले प्रत्ययान्त शब्द एवं तृन् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति का निषेध है। यथा—

कुर्वन् कुर्वाणो वा सृष्टिं हरिः—शतृ और शानच् के उदाहरण।

हरिं दिदृक्षुः—हरि को देखने का इच्छुक (उ प्रत्यय का उदाहरण)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दैत्यान् घातको हरिः—हरि दैत्यों के हन्ता हैं (अक् प्रत्यय का उदाहरण)

संसारं सृष्ट्वा—संसार रच कर (क्त्वा प्रत्ययान्त)

अव्यय में—जगत् सृष्ट्वा, सुखं कर्तुम् ।

निष्ठा में—विष्णुना हता दैत्याः, दैत्यान् हतवान् विष्णुः ।

खलार्थ में—ईषत्करः प्रपञ्चो हरिणा ।

तृन् प्रत्याहार में—सोमं पवमानः, आत्मानं मण्डयमानः, वेदमधीयन्, कर्त्ता कटान् ।

१३६. कमेरनिषेधः (वा०)—कमुकान्तौ धातु से उकञ् प्रत्ययान्त शब्दों के योग में षष्ठी का निषेध नहीं होता ।

लक्ष्म्याः कामुकः ।

१३७ द्विषः शतुर्वा (वा०)—द्विष् में शतृ प्रत्यय जोड़ने पर विकल्प से षष्ठी हो जाती है । यथा—मुरस्य मुरं वा द्विषत् ।

यहाँ कारक षष्ठी का ही निषेध किया गया है, शेषे षष्ठी होती है । यथा—ब्राह्मणस्य कुर्वन् , नरकस्य जिष्णुः ।

१३८. अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः २।३।७०—भविष्यत् अर्थ में विहित अक् प्रत्यय और आधमर्ण्य अर्थ में विहित इन प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होती । यथा—सतः पालकोऽवतरति, व्रजं गामी, शतं दायी ।

१३९. कृत्यानां कर्त्तरिवा २।३।७१—जिन शब्दों के अन्त में कृत्य प्रत्यय लगे रहते हैं, उनका प्रयोग होने पर तृतीया या षष्ठी होती है ।

मया मम वा सेव्यो हरिः—हरि ही मेरे लिए सेव्य हैं ।

न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभिः (किरात०) भृत्यों को अपने स्वामियों को न ठगना चाहिये ।

विशेष नियम

(क) अनुकरण करने या सादृश्य होने के अर्थ में अनुपूर्वक कृ धातु के योग में षष्ठी विभक्ति भी होती है । यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्याः स्मितस्य (कुमार० १-४४)—तब शायद उसकी मुस्कान की समता कर सके।

श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम् (कादम्बरी)—अपनी श्यामता द्वारा भगवान् विष्णु की समता करती हुई।

(ख) कृते, मध्ये और समक्ष आदि शब्दों के योग में भी षष्ठी विभक्ति प्रयुक्त होती है। यथा—एतेषां मध्ये केचिदेव विद्यार्थिनः—इनमें कुछ ही विद्यार्थी हैं। अमीषां प्राणानां कृते (भर्तृहरि वैरा०) इन प्राणों के लिए।

(ग) अंशांशिभाव या अवयव–अवयवी भाव होने पर अंशी या अवयवी में षष्ठी होती है। यथा—जलस्य बिन्दुः, रात्रेः पूर्वम् , दिनस्य उत्तरम्।

(घ) प्रिय वल्लभ तथा इसी अर्थ में प्रयुक्त होनेवाले अन्य शब्दों के योग में षष्ठी होती है। यथा—

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत् (उत्तर०–६), कायः कस्य न वल्लभः।

(ङ) विशेष, अन्तर इत्यादि शब्दों के प्रयोग में जिनमें विशेष या अन्तर दिखाया जाता है, वे षष्ठी में रखे जाते हैं। यथा—

एतावानेवायुष्मतः शतक्रतोश्च विशेषः (शकु०)—आप और इन्द्र में इतना ही अन्तर है।

(च) जब किसी कार्य या घटना को समाप्त हुए कुछ काल बीत जाता है, तो बीती हुई घटना के वाचक शब्द षष्ठी में रखे जाते हैं। यथा—

अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मुद्रा० ६ अंक)—पिता को मरे हुए आज दश महीने हो गये।

(छ) निम्न प्रयोगों में षष्ठी का व्यवहार असंगत है। इनका कार्य अन्य विभक्तियों के द्वारा भी चल सकता है।

(१) तं च व्यसृजद् भरतस्य (उत्तर० ४)—उसको भरत के पास भेजा। यहाँ भरताय भी हो सकता है।

(२) जयसेनायास्तावत्संवेद्य गच्छ (मालविका० ४)—यहाँ पर 'जयसेनायै' होना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः (हितोपदे०)—यहाँ 'स्त्रीषु' होना चाहिए। उपर्युक्त तीनों प्रयोग 'शेषे षष्ठ्या' से अशुद्ध हैं।

सप्तमी

१४०. आधारोऽधिकरणम् १।४।४५—कर्त्ता और कर्म के द्वारा किसी भी क्रिया का आधार अधिकरण कहलाता है। आधार के तीन भेद हैं—औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक।

जिसके साथ आधेय का भौतिक संश्लेष हो, उसे औपश्लेषिक आधार कहते हैं; जैसे "कटे आस्ते काकः" यहाँ 'चटाई' से बैठनेवाले का भौतिक संश्लेष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

जिसके साथ आधेय का बौद्धिक संश्लेष हो, उसे वैषयिक आधार कहते हैं। यथा—'मोक्षे इच्छा अस्ति' इच्छा का मोक्ष में अधिष्ठित होना बौद्धिक संश्लेष है।

जिसके साथ आधेय का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो, उसे अभिव्यापक आधार कहते हैं। यथा—'तिलेषु-तैलम्' में तैल तिल के किसी एक भाग में नहीं रहता है, बल्कि समस्त तिल में व्याप्त रहता है।

१४१. सप्तम्यधिकरणे २।३।३६—अधिकरण तथा दूर एवं अन्तिक अर्थ वाले शब्दों में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—कटे आस्ते काकः, ग्रामस्य दूरे अन्तिके वा। क्रिया के आधार की तरह उसका समय भी सप्तमी में रखा जाता है। यथा—

आषाढस्य प्रथम दिवसे (मेघ०)—आषाढ़ के पहले ही दिन।

शैशवेऽभ्यस्त विद्यानाम् (रघु०)—बाल्यकाल में विद्याभ्यास करनेवाले रघुवंशियों का।

१४२. क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वा०)—क्त प्रत्ययान्त शब्दों में इन् प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों के योग में उसके कर्म में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—अधीती व्याकरणे।

१४३. साध्वसाधुप्रयोगे च (वा०)—साधु और असाधु के प्रयोग में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—साधुः कृष्णो मातरि—कृष्ण अपनी माँ के लिए बहुत अच्छे थे।

असाधुर्मातुले—पर मामा के लिए बहुत बुरे।

१४४. निमित्तात्कर्मसंयोगे (वा०)—जिस निमित्त—फल प्राप्ति के लिए कोई क्रिया की जाती है, वह निमित्त या फल यदि उस क्रिया के कर्म से युक्त अथवा समवेत हो तो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः॥

१४५. यस्य च भावेन भावलक्षणम् २।३।३७—जब किसी कार्य के हो जाने पर दूसरे कार्य का होना प्रतीत होता है, तो जो कार्य हो चुकता है, उसे सप्तमी में रखते हैं। यथा—

गोषु दुह्यमानासु गतः, रामे वनं गते दशरथः प्राणान् तत्याज, सुरेशे गायति सर्वे जग्मुः, सर्वेषु शयानेषु श्यामा रोदिति।

१४६. अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च (वा०)—योग्य कारकों को कर्तृत्व होने पर तथा अयोग्य कारकों को अकर्तृत्व होने पर जिसकी क्रिया से अन्य क्रिया मालूम हो उससे तथा योग्य कारकों को कर्तृत्व एवं अयोग्य कारकों को अकर्तृत्व होने पर सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

सत्सु तरत्सु असन्त आसते—सन्तों के तरने पर असन्त बैठते हैं।
असत्सु तिष्ठत्सु सन्तस्तरन्ति—असन्तों के बैठने पर सन्त तरते हैं।
सत्सु तिष्ठत्सु असन्तस्तरन्ति—सन्तों के बैठने पर असन्त तरते हैं।
असत्सु तरत्सु सन्तस्तिष्ठन्ति—असन्तों के तरने पर सन्त बैठे रहते हैं।

१४७. षष्ठीचानादरे २।३।३८—जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है, उसमें षष्ठी या सप्तमी होती है। यथा—

रुदतः पुत्रस्य रुदति पुत्रे वा वनं प्राव्राजीत्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह सन्यासी हो गया।

निवारयतोऽपि पितुः निवारयत्यपि पितरि वा अध्ययनं परित्यक्तवान्—पिता के मना करने पर भी उनका तिरस्कार करके उसने अध्ययन त्याग दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४८. स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षि प्रतिभूप्रसूतैश्च २।३।३९– स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू और प्रसूत इन सात शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी ये दोनों ही विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

गवां गोषु वा स्वामी, गवां गोषु वा प्रसूतः।

१४९. आयुक्तकुशलाभ्यांचासेवायाम् २।३।४०–यदि सर्व प्रकार सेवा गम्यमान हो तो आयुक्त और कुशल शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी भी होती है। यथा—आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा।

१५० यतश्च निर्द्धारणम् २।३।४१—यदि किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओं से किसी विशेषण द्वारा वैशिष्ट्य निर्देश किया जाय तो समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी विभक्ति में रखा जाता है। यथा–

कविषु कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः—कवियों में कालिदास सबसे बड़े कवि हैं।

गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा—गायों में काली गाय बहुत दूध देने वाली है।

छात्रेषु छात्राणां वा मैत्रः पटुः—विद्यार्थियों में मैत्र तेज है।

१५१. पञ्चमी विभक्ते २।३।४२—जहाँ निर्धार्यमाण का भेदमात्र हो, वहाँ पञ्चमी विभक्ति होती है। यथा—

माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः–माथुर पाटलिपुत्रों से आढ्यतर हैं।

१५२ साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः २।३।४३–पूजन अर्थ में साधु और निपुण शब्द के योग में सप्तमी विभक्ति होती है, किन्तु प्रति का योग होने पर सप्तमी नहीं होती। यथा—

मातरि साधुर्निपुणो वा—माता के विषय में साधु या निपुण है।

१५३. अप्रत्यादिभिरितिवक्तव्यम् (वा०)—प्रति के निषेध के साथ अन्य उपसर्गों का भी निषेध समझना चाहिए। यथा—

साधुर्निपुणो वा मातरं प्रति पर्यनु वा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१५४. प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च २।३।४४—प्रसित और उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा।

१५५. नक्षत्रे च लुपि २।३।४५—काल अर्थ में जिसके प्रत्यय का लोप हो जाता है, उसे लुबन्त नक्षत्र कहते हैं। लुबन्त नक्षत्र से तृतीया और सप्तमी विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

पुष्येण पुष्ये वा कार्यमारभेत—पुष्य नक्षत्र जिस दिन हो, उस दिन कार्य आरम्भ करो।

मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत्, अथवा मूले आवाहयेद्देवीं श्रवणे विसर्जयेत्।

१५६. सप्तमीपञ्चम्यौ कारकमध्ये २।३।७—दो कारक शक्तियों के बीच के काल और स्थान के वाचक शब्द सप्तमी या पञ्चमी विभक्ति में रखे जाते हैं। यथा—

अद्यभुक्त्वाऽयं द्व्यहे द्व्यहाद्वा भोक्ता—आज खाकर यह फिर दो दिन में या दो दिन के बाद खायगा।

इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्यं विध्येत्—यहाँ स्थित होकर यह एक कोश पर स्थित लक्ष्य को वेध देगा।

विशेषः—

अधिक शब्द के योग में पञ्चमी और सप्तमी होती है। यथा—

तस्मिन्नाधिकम्, यस्मादधिकम्।

१५७. अधिरीश्वरे १।४।९७—स्वस्वामि सम्बन्ध में अधि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

१५८. यस्मादधिकं यस्य चेश्वरवचनं तत्र सप्तमी २।३।९—अधिक अर्थवाले तथा ईश्वर अर्थवाले वर्तमान कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—

उपपरार्धे हरेर्गुणाः—हरि के गुण परार्ध से भी अधिक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिभुवि रामः—रामचन्द्र पृथ्वी के ईश्वर हैं।
अधि रामे भूः— ,,

१५९. विभाषा कृञि १।४।९८—कृञ् धातु के योग में ईश्वर अर्थ होने पर अधि की विकल्प से कर्म प्रवचनीय संज्ञा होती है। यथा—
यदत्र मामधिकरिष्यति।

१६०—स्नेह, आदर, अनुराग तथा इनका अर्थ देनेवाले अन्य शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—
अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शकु०)
देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः (मुद्रा०)
न तापसकन्यकायां ममाभिलाषः (शकु०)

१६१. कारण अर्थ के वाचक शब्दों के प्रयोग में कार्य के वाचक शब्द में सप्तमी होती है। यथा—दैवमेव हि नृणां वृद्धौक्षये कारणम् (नीति० ८४)

१६२. युज् धातु तथा उससे बने हुए अन्य शब्दों के योग में सप्तम विभक्ति होती है। यथा—असाधुदर्शी तत्र भवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुंक्ते (शकु०)
त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं तस्मिन् युज्यते।

१६३. क्षिप्, मुच्, अस्, पत् (णिजन्त) और अप् पूर्वक राध् इन धातुओं तथा इनसे बने हुए शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—
मृगेषु शरान् मुमुक्षुः योग्य सचिवेन्यस्तः समस्तो भरः। (रत्नावली)
न खलु खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन् (शकु०)
कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला (शकु० अंक ६)

१६४. व्यापृत, आसक्त, व्यग्र, तत्पर, कुशल, निपुण, शौण्ड, और प्रवीण आदि शब्दों के योग में भी सप्तमी विभक्ति होती है। यथा—
गृहकर्मणि व्यापृता, व्यग्रा, तत्परा वा,
अक्षेषु निपुणः, शौण्डः, पटुः, प्रवीणोः वा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६५. ग्रहणार्थक तथा प्रहारार्थक धातुओं के योग में वह सप्तमी में रखा जाता है, जो पकड़ा जाता है या जिस पर प्रहार किया जाता है। यथा—

आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि (शकु० १), केशेषु गृहीत्वा।

विश्वास अर्थबोधक शब्दों के साथ प्रायः जिसका विश्वास किया जाता है, वह सप्तमी में रखा जाता है। यथा—

पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी,

सति के योग में सप्तमी होती है। यथा—जाते सति। सति सप्तमी को (Nominative absolute) कहा जाता है। इसका दूसरा नाम भावे सप्तमी (Locative absolute) भी है।

अनुशीलनी

१. कारक की परिभाषा लिखकर षष्ठीविभक्ति कारक है या नहीं? स्पष्ट कीजिए।

२. उपपद विभक्ति और कारक विभक्ति में क्या अन्तर है? अलम्, निकषा, नमस्कृ, समं, कृतम्, शी, स्था, अनु, अधि एवं धिक् के योग में कौन-कौन विभक्तियाँ होती हैं?

३. व्यापृत, आसक्त, सति, स्नेह, क्षिप्, मुच्, कुशल, शौण्ड, कला और प्रवीण के योग में कौन-कौन विभक्तियाँ होती हैं?

४. निम्न प्रयोगों में विभक्ति का निर्देश कीजिए।

मासमधीत व्याकरणम्, स त्वां तृणाय मन्यते, नैतद् दुष्करं तेन, सतां पूजितो रामः, श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्, स्वरेण पुत्रं जानाति, उपमा वृक्षस्य न विद्यते; शताद् बद्धः, जपमनुप्रावर्षत्, श्वशुराज्जिहेति, गेयो माणवकः साम्नाम्, पुंसि विश्वसिति कुत्र कुमारी।

५. निम्न पदों को शुद्ध कीजिये या शुद्ध होने के प्रमाण उपस्थित कीजिए,

तुलां यदारोहति दन्तवाससा, घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः, हरि दिनमुपोषितः भजे शंभोश्चरणयोः, अजिग्रहत्तं जनको धनुस्तत्, जलेऽभिशेते भगवान् वर्षे मासचतुष्टयम्, नाग्निस्तृप्यति काष्ठानाम्, दरिद्रो राज्ञो धनं याचते, मूर्ध्ना प्रणामं वृषभध्वजाय चकार, रामः त्वां शतं धारयति, भार्यामीर्ष्यति, द्वादशवर्षैः व्याकरणं श्रूयते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठोऽध्यायः

समास-विचार

"समसनं समासः" संक्षेप को समास कहते हैं अर्थात् दो या अधिक शब्दों को इस प्रकार साथ रखना, जिससे उनके आकार में कमी आजाय और अर्थ प्रकट हो जाय। तात्पर्य यह है कि परस्पर सम्बद्ध अर्थ वाले शब्दों को एक रूप में मिलाना समास है। यथा राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः।

समास के पदों में विभक्ति प्रत्यय लगाकर अर्थ स्पष्ट करने के लिए जो शब्दसमूह बनाया जाता है, उसे विग्रह कहते हैं। विग्रह का अर्थ है समस्त शब्द को तोड़कर उसका पूर्वकाल का रूप देना। यथा—राजपुरुषः का विग्रह राज्ञः पुरुषः हुआ, यहाँ राज्ञः राजन् शब्द का षष्ठी का एक वचन और पुरुषः पुरुष शब्द का प्रथमा का एक वचन पूर्व रूप है।

समास के मुख्य पाँच भेद हैं—

(१) केवल समास
(२) अव्ययीभाव
(३) तत्पुरुष
(४) द्वन्द्व
(५) बहुव्रीहि

केवल समास

विशेष संज्ञा विनिर्मुक्तः केवल समासः—जिसकी कोई विशेष संज्ञा न हो उसे केवल समास कहते हैं। यह समास कहीं सुबन्त का सुबन्त के साथ, कहीं सुबन्त का तिङन्त के साथ और कहीं सुबन्त का इवादि शब्दों के साथ होता है।

१. सह सुपा २।१।४—सुबन्त का सुबन्त के साथ, और सुबन्त का न्त के साथ समास होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वं भूतः = भूतपूर्वः (पूर्व + अम्, भूत + सु) में दोनों ही पद सुबन्त हैं। पर्यभूषत् और अनुव्यचलत्—में तिङन्त के साथ समास हुआ है, किन्तु यह समास वेद में हो होता है।

२ इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च (वा०)—इव के साथ भी यह समास होता है, पर इसमें मध्यवर्ती विभक्ति का लोप नहीं होता। यथा—वागर्थाविव, मातेव, जीवमूतस्येव।

अव्ययीभाव

पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः—जिसमें प्रायः पूर्व पदार्थ की प्रधानता हो, उसे अव्ययीभाव कहते हैं। इस समास में प्रायः प्रथम पद–शब्द अव्यय रहता है और दूसरा संज्ञा; पर दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं। अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते, अन्तिम शब्द का नपुंसक लिङ्ग एक वचन में जैसा रूप होता है, वही रूप अकारान्त अव्ययीभाव का हो जाता है।

३. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादुर्भावपश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु २।१।६—विभक्ति आदि अर्थों में अव्यय का प्रयोग होने पर अव्ययीभाव समास होता है।

(१) विभक्ति अर्थ में—अधिहरि = हरौ इति = अधिहरि, आत्मनि अधि इति = अध्यात्मम्।

(२) समीप अर्थ में—गङ्गायाः समीपम् = उपगङ्गम्।

(३) समृद्धि अर्थ में—मद्राणां समृद्धिः = सुमद्रम्।

(४) व्यृद्धि— नाश, दरिद्रता में—यवनानां व्यृद्धिः = दुर्यवनम्।

(५) अभाव में—मक्षिकाणां अभावः = निर्मक्षिकम्।

(६) अत्यय–नाश में—हिमस्यात्ययः = अतिहिमम्।

(७) असम्प्रति–अनौचित्य में—निद्रा सम्प्रति न युज्यते = अतिनिद्रम्।

(८) शब्दप्रादुर्भाव—शब्द का प्रकाश = हरि शब्दस्य प्रकाशः—इति हरि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९) पश्चात् अर्थ में—विष्णो पश्चात् = अनुविष्णु ।
(१०) यथा का भाव–योग्यता—रूपस्य योग्यम् = अनुरूपम् ।
" वीप्सा—अर्थमर्थंप्रति = प्रत्यर्थम् ।
" अनतिक्रम—शक्तिमनतिक्रम्य = यथाशक्ति ।
" सादृश्य अर्थ में—हरेः सादृश्यम् = सहरि ।
(११) आनुपूर्व्य—क्रम—ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण = अनुज्येष्ठम् ।
(१२) यौगपद्य—एकसाथ होना—चक्रेण युगपत् = सचक्रम् ।
(१३) सादृश्य—हरेः सादृश्यम् = सहरि ।
(१४) सम्पत्ति—सत्राणां सम्पत्तिः = सक्षत्रम् ।
(१५) साकल्य—तृणमपि अपरित्यज्य = सतृणम् ।
(१६) अन्त—तक—अग्निगुल्म पर्यन्तम् = साग्नि ।

४. अव्ययीभावे चाकाले ६।३।८१—काल के अतिरिक्त अर्थ में अव्ययीभाव समास में सह के स्थान पर स आदेश होता है, पर कालवाचक शब्दों के साथ समास करने पर सह ही रहता है। यथा—सह पूर्वाह्णम् = सहपूर्वाह्णम् ।

५. यावदवधारणे २।१।८—अवधारण अर्थ में यावत् के साथ अव्ययीभाव समास होता है। यथा—यावन्तः श्लोकास्तावन्तोऽच्युतप्रणामाः ।

६. आङ्मर्यादाभिविध्योः २।१।१३—मर्यादा और अभिविधि के अर्थ में आङ् के साथ विकल्प से अव्ययीभाव समास होता है। यथा—आमुक्तेः संसारः = आमुक्ति संसारः, आबालेभ्यो हरिभक्तिः = आबालम् हरिभक्तिः ।

७. लक्षणेनाभिप्रती आभिमुख्ये २।१।१४—आभिमुख्यद्योतक अभि और प्रति का लक्षण—चिन्हवाची पद के साथ अव्ययीभाव समास होता है। यथा—अग्निमभि शलभाः पतन्ति = अभ्यग्नि शलभाः पतन्ति ।

८. अनुर्यत्समया २।१।१५—जिस पदार्थ से किसी का सामीप्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिखलाया जाय, उस लक्षणभूत पदार्थ के साथ अनु का अव्ययीभाव समास होता है। यथा—अनुवनमशनिर्गतः। वनस्य समीपं गत इत्यर्थः।

९. पारे मध्ये षष्ठ्या वा २।१।१८—पार और मध्य षष्ठ्यन्त पद के साथ अव्ययीभाव समास होता है तथा विकल्प से षष्ठी तत्पुरुष भी होता है। यथा—

गङ्गायाः पारमिति = पारेगङ्गम् या गङ्गापारम्। इसी प्रकार मध्ये गङ्गम् या गङ्गामध्यम् भी बनते हैं।

१०. ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य १।२।४७—समास होने वाले पदों में दूसरे शब्द का अन्तिम वर्ण यदि दीर्घ हो तो ह्रस्व कर दिया जाता है अर्थात् ए के स्थान पर इ और ओ, औ के स्थान पर उ हो जाता है। यथा—गङ्गायाः समीपे = उपगङ्गम्, गोः समीपे = उपगु, नावः समीपे = उपनु।

११. अनश्च ५।४।१०८—अन् में अन्त होनेवाली संज्ञाओं में समासान्त टच् प्रत्यय हो जाता है और अन् का लोप हो जाता है तथा टच् का 'अ' जुड़ जाता है। यथा—

राज्ञः समीपे = उपराजम्, चर्मणः समीपे = उपचर्मम्, उपचर्म।

१२. झयः ५।४।१११—यदि अव्ययीभाव समास के अन्त में झय प्रत्याहार का कोई वर्ण आवे, तो विकल्प से समासान्त टच् प्रत्यय जुड़ता है। यथा—

समिधः समीपे = उपसमिधम्, टजाभाव में उपसमित्, सरितः समीपे = उपसरितम्—टच् के अभाव में उपसरित्।

१३. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः ५।४।१०७—अव्ययीभाव समास के अन्त में आने पर शरत् इत्यादि शब्दों से टच् प्रत्यय होता है और टच् होने पर शब्द अकारान्त हो जाते हैं। यथा—

शरदः समीपे = उपशरदम्, अधिमनसम्, उपदिशम्।

१४. नदीपौर्णमास्याग्रहायणीभ्यः ५।४।११०—नदी, पौर्णमासी तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आग्रहायणी शब्दों के अव्ययीभाव समास के अन्त में आने पर विकल्प से टच् प्रत्यय होता है। यथा—नद्याः समीपे = उपनदम्, उपनदी, पौर्णमास्याः समीपे = उपपौर्णमास्यम्, उपपौर्णमासी।

गिरि शब्द भी अव्ययीभाव समास के अन्त में हो तो विकल्प से टच् होता है। यथा—गिरेः समीपे = उपगिरम्, उपगिरि।

तत्पुरुषसमास

उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः—जिसमें उत्तरपद की प्रधानता रहती है, उसे तत्पुरुष समास कहते हैं। यथा—राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः में उत्तरपद पुरुष की प्रधानता है। तात्पर्य यह है कि तत्पुरुष समास में प्रथम पद विशेषण और द्वितीय पद विशेष्य रहता है, अतः विशेष्य की प्रधानता रहने के कारण इसमें उत्तरपद की प्रधानता मानी जाती है। इस समास के मूल तीन भेद हैं—तत्पुरुष, कर्मधारय और द्विगु।

तत्पुरुष के आठ भेद हैं—प्रथमा तत्पुरुष, द्वितीया तत्पुरुष, तृतीया तत्पुरुष, चतुर्थी तत्पुरुष, पञ्चमी तत्पुरुष, षष्ठी तत्पुरुष, सप्तमी तत्पुरुष और अन्य तत्पुरुष।

प्रथमा तत्पुरुष

१५ पूर्व, अपर, अधर और उत्तर प्रथमान्त पद अपने अवयवी षष्ठ्यन्त के साथ एकाधिकरण में समास को प्राप्त होते हैं। यथा—पूर्वं कायस्य = पूर्वकायः, अपरकायः, उत्तरग्रामः, अधरवृक्षः।

१६ एकदेश वाचक जितने पद हैं, वे सब कालवाचक षष्ठ्यन्त के साथ समास को प्राप्त होते हैं। यथा—सायः अह्नः = सायाह्नः, मध्याह्नः, पूर्वाह्णः।

द्वितीया तत्पुरुष

१७ श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति के आने पर द्वितीया-तत्पुरुष समास होता है। यथा—

कृष्णं श्रितः = कृष्णश्रितः, दुःखमतीतः = दुःखातीतः, अग्निं पतितः = अग्निपतितः, प्रलयं गतः = प्रलयगतः, मेघं अत्यस्तः = मेघात्यस्तः, जीवनं प्राप्तः = जीवनप्राप्तः, कष्टं आपन्नः = कष्टापन्नः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीया तत्पुरुष

१८ जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में हो, तब उसे तृतीया तत्पुरुष कहते हैं। यथा—हरिणात्रातः = हरित्रातः, नखैर्भिन्नः = नखभिन्नः, मासेन पूर्वः = मासपूर्वः, मात्रा सदृशः = मातृसदृशः, पित्रा समः = पितृसमं, धान्येन ऊनम् = धान्योनम्, वाचा कलहः = वाक्कलहः, आचारेण निपुणः = आचारनिपुणः, गुडेन मिश्रं = गुडमिश्रं, मधुना मत्तः = मधुमत्तः, पङ्केन लिप्तः = पङ्कलिप्तः, बाणेन विद्धः = बाणविद्धः।

चतुर्थी तत्पुरुष

१९ जब तत्पुरुष समास का पहला पद चतुर्थी में रहता है, तो चतुर्थी तत्पुरुष कहलाता है। यथा—

यूपाय दारुः = यूपदारुः, कुम्भाय मृत्तिका = कुम्भमृत्तिका, भूतेभ्यो बलिः भूतबलिः, ब्राह्मणाय हितं = ब्राह्मणहितम्, गवे हितम् = गोहितम्।

पञ्चमी तत्पुरुष

२० जब तत्पुरुष समास का पहला पद पञ्चमी विभक्ति में रहता है, तब उसे पञ्चमी तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

चौराद् भयं = चौरभयं, स्तेनाद् भीतः = स्तेनभीतः, वृकाद् भीतिः = वृकभीतिः, स्तोकात् मुक्तः – स्तोकान्मुक्तः, अन्तिकाद् आगतः = अन्तिकादागतः।

षष्ठी तत्पुरुष

२१ जिस तत्पुरुष समास का प्रथम पद षष्ठी विभक्ति में हो, उसे षष्ठी तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

राज्ञः पुरुषः = राजपुरुषः, गणितस्य अध्यापकः = गणिताध्यापकः, देवस्य पूजकः = देवपूजकः, धर्मस्य पुत्रः = धर्मपुत्रः।

सप्तमी तत्पुरुष

२२ सप्तमी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं, जिसका प्रथम पद सप्तमी विभक्ति में रहा हो। यथा— अक्षेषु शौण्डः = अक्षशौण्डः, प्रेम्णि धूर्तः = प्रेमधूर्तः, द्यूते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कितवः = द्यूतकितवः, सभायां पंडितः = सभापण्डितः, आतपे शुष्कः = आतपशुष्कः, कटाहे पक्वः = कटहापक्वः, चक्रे बन्धः = चक्रबन्धः, तीर्थे ध्वाङ्क्षः = तीर्थध्वाङ्क्षः (तीर्थकाक अर्थात् तीर्थ लोलुप), श्राद्धे काकः = श्राद्धकाकः, कर्मणि कुशलः = कर्मकुशलः, विद्यायां दक्षः = विद्यादक्षः, गृहे जातः = गृहजातः।

अन्य तत्पुरुष में नञ् तत्पुरुष, प्रादितत्पुरुष, गतितत्पुरुष, उपपदतत्पुरुष, अलुक् तत्पुरुष, मध्यमपदलोपी तत्पुरुष एवं मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष ये सात भेद हैं।

नञ् तत्पुरुष

२३. जब तत्पुरुष समास में प्रथम शब्द न और दूसरा कोई संज्ञा या विशेषण हो तो उसे नञ् तत्पुरुष कहते हैं। व्यञ्जन के पूर्व न अ में और स्वर के पूर्व अन् में बदल जाता है। यथा—

न ब्राह्मणः = अब्राह्मणः, न सत्यम् = असत्यम्, न कृतम् = अकृतम्, न आगतम् = अनागतम्, न ईशः = अनीशः, न ऋतः = अनृतः, न जः = अजः।

प्रादितत्पुरुष

२४. जब तत्पुरुष समास में प्रथम पद 'प्र' आदि उपसर्गों में से कोई हो तो उसे प्रादि तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

प्रगतः आचार्यः = प्राचार्यः, प्रगतः पितामहः = प्रपितामहः, प्रतिगतः—अक्षः = प्रत्यक्षः, उद्गतः वेलाम् = उद्वेलः, अतिक्रान्तः मर्यादाम् = अतिमर्यादः जिसने मर्यादा पार की हो, अतिक्रान्तः रथम् = अतिरथः—बहुत बलवान् योद्धा, अवक्रुष्ट कोकिलया = अवकोकिलः—कोकिला से उच्चारण किया हुआ—मुग्ध; परिग्लानोऽध्ययनाय = पर्यध्ययनः—अध्ययन से थका हुआ, निर्गतः गृहात् = निर्गृहः।

गतितत्पुरुष

२५. जब कृत् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के साथ ऊरी आदि विशेष शब्दों का समास होता है, तो उसे गति तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

ऊरी कृत्वा = ऊरीकृत्य, शुक्ली भूत्वा = शुक्लीभूय, नीली कृत्वा = नीलीकृत्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृत्यः, पटपटा कृत्वा = पटपटा कृत्य, स्वीकृत्वा = स्वीकृत्य, अलंकृत्वा = अलंकृत्य, अस्तं गत्वा = अस्तं गत्य।

उपपद समास

२६. जब तत्पुरुष समास का प्रथम पद ऐसी संज्ञा या अव्यय में हो, जिसके न रहने से शब्द का रूप ही न रह सकता हो, तो उसे उपपद तत्पुरुष कहते हैं। यथा—

कुम्भं करोतीति कुम्भकारः, धनं ददातीति = धनदः, कम्बलं ददातीति = कम्बलदः, गाः ददातीति = गोदः।

अलुक् समास

२७. जिन समासों के प्रथम पद की विभक्ति का लोप नहीं होता, उन्हें अलुक् तत्पुरुष समास कहते हैं। यथा—परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, देवानां प्रियः, मनसा गुप्ता, जनुषान्धः, पश्यतो हरः, अन्तेवासी, खेचरः।

मध्यमपदलोपी

२८. उन तत्पुरुष समासों को मध्यमपदलोपी तत्पुरुष कहते हैं, जिनके मध्यवर्ती किसी ऐसे पद का लोप हो गया हो, जिनका साधारण दशा में रहना आवश्यक हो। यथा—शाकप्रियः पार्थिवः—शाकपार्थिवः, देवपूजकः ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः।

मयूरव्यंसकादि

२९. जिन समासों में प्रत्यक्षरूप से नियमों का उल्लङ्घन किया गया हो, उन्हें मयूरव्यंसकादि कहा गया है। यथा—

व्यंसकः मयूरः = मयूरव्यंसकः (चालक मोर)—यहाँ व्यंसक को पहले होना चाहिये था, पर नियम का उल्लङ्घन किया गया है।

अन्यो राजा = राजान्तरम्, अन्यो ग्रामः ग्रामान्तरम्, उदक् च अवाक् चेति = उच्चावचम्, निश्चितं च प्रचितं चेति = निश्चप्रचम्।

कर्मधारय

३०. जब प्रथमपद विशेषण हो और दूसरा विशेष्य हो तो उसे कर्मधारय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं। यथा—कृष्णः सर्पः = कृष्णसर्पः, नीलम् उत्पलम् = नीलोत्पलम्, रक्तफलम्। तात्पर्य यह है कि जिस तत्पुरुष समास में दोनों पद समानाधिकरण हों—समानलिङ्ग, समानवचन और समान विभक्ति वाले हों, उसको कर्मधारय कहते हैं। इसके प्रधान चार भेद हैं—विशेषणपूर्वपद, उपमानपूर्वपद, उपमानोत्तरपद और विशेषणोभयपद।

३१. सत्, महत्, परम, उत्तम और उत्कृष्ट शब्दों का पूज्यमान पदों के साथ समास होता है। यथा—सत् वैद्यः = सद्वैद्यः, महान् वैयाकरणः = महावैयाकरणः, परमः भक्तः = परमभक्तः, उत्तमः पुरुषः = उत्तमपुरुषः, कुत्सितः पुरुषः = कुपुरुषः, कुत्सितम् अन्नम् = कदन्नम्।

३२. जब किसी वस्तु से उपमा दी जाय तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिलकर उपमानपूर्वपद कर्मधारय कहलाते हैं। यथा—

घन इव श्यामः = घनश्यामः, चन्द्र इव आह्लादकः = चन्द्राह्लादकः।

३३. जब उपमित और उपमान दोनों साथ-साथ आवें तो कर्मधारय समास को उपमानोत्तरपद कर्मधारय कहते हैं। यथा—

मुखं कमलमिव = मुखकमलम्, पुरुषः व्याघ्र इव = पुरुषव्याघ्रः।

३४. दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को विशेषणोभयपद कर्मधारय कहते हैं। यथा—कृष्णश्च श्वेतश्च = कृष्णश्वेतः, स्नातश्च अनुलिप्तश्च = स्नातानुलिप्तः, चरश्च अचरश्च = चराचरम्, कृतश्च अकृतश्च = कृताकृतम्।

द्विगुसमास

३५. जब कर्मधारय समास में प्रथम पद संख्यावाची और दूसरा पद संज्ञा हो तो उसे द्विगु समास कहते हैं। यथा—

पञ्चगावः धनं यस्य सः = पञ्चगवधनः, पञ्चानां गवां समाहारः = पञ्चगवम्, पञ्चानां ग्रामाणां समाहारः = पञ्चग्रामम्, पञ्चानां पात्राणाम् समाहारः = पञ्चपात्रम्, चतुर्णां युगानां समाहारः = चतुर्युगम्, त्रयाणां भुवनानां समाहारः = त्रिभुवनम्, पञ्चानां मूलानां समाहारः = पञ्चमूली, पञ्चानां वटानां समाहारः पञ्चवटी, पञ्चानां खट्वानां समाहारः = पञ्चखट्वी-पञ्चखट्वा, त्रयाणां लोकानां समाहारः = त्रिलोकी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वन्द्व समास

३६. दो या दो से अधिक संज्ञाएँ एक साथ रखी गई हों और उन्हें च शब्द के द्वारा जोड़ा गया हो तो वह द्वन्द्व समास कहलाता है। इस समास के तीन भेद हैं।

(१) इतरेतर द्वन्द।

(२) समाहार द्वन्द्व।

(३) एक शेष द्वन्द्व।

३७. जिस समास में आई हुई दोनों संज्ञाएँ अपना प्रधान व्यक्तित्व रखती हों उस समास को इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं। यथा—रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ, रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ, रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च = रामलक्ष्मणभरताः, होताच पोता चेति = होतापोतारौ, माता च पिता च = मातापितरौ, होता च पोता च उद्गाता च = होतृपोतोद्गातारः।

३८. जिस समास में च शब्द से जुड़ी हुई संज्ञाएँ अपना पृथक् अर्थ रखने पर भी समूह अर्थ का बोध कराती हों, उसे समाहार द्वन्द्व कहते हैं। यथा—

आहारश्च निद्रा च भयञ्च = आहारनिद्राभयम्, पाणी च पादौ च = पाणिपादम्, गोधूमश्च चणकश्च = गोधूमचणकम्, गङ्गा च शोणश्च = गङ्गाशोणम्, सर्पश्च नकुलश्च = सर्पनकुलम्, मूषकश्च मार्जारश्च = मूषकमार्जारम्।

३९. जिस समास में दो या अधिक शब्दों में से एक ही शेष रहे उसे एक शेष द्वन्द्व कहते हैं। यथा—ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च = ब्राह्मणौ, शूद्रीच शूद्रश्च = शूद्रौ, घटश्च कलशश्च = घटौ वा कलशौ।

बहुव्रीहि समास

४०. जब समास में आये हुए दो या अधिक पद किसी अन्य शब्द के विशेषण हों तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। यथा—पीतं अम्बरं यस्य सः = पीताम्बरः।

इस समास के मुख्य दो भेद हैं—(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि और व्यधिकरण बहुव्रीहि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४१. समानाधिकरण बहुव्रीहि वह है, जिसके दोनों या सभी शब्दों का समान अधिकरण हो अर्थात् वे प्रथमान्त हों। यथा—पीताम्बरः।

४२. व्यधिकरण बहुव्रीहि वह है, जिसके सभी पद प्रथमान्त न हों· केवल एक ही पद प्रथमान्त हो और दूसरा पद षष्ठी या सप्तमी में हो। यथा–

चन्द्रः शेखरे यस्य सः = चन्द्रशेखरः, चक्रं पाणौ यस्य सः = चक्रपाणिः, चन्द्रस्य कान्तिः इव कान्ति यस्य सः = चन्द्रकान्तिः।

समासान्त प्रकरण

४३. यदि तत्पुरुष समास के अन्त में राजन्, अहन् या सखि शब्द आवे तो इनमें समासान्त टच् प्रत्यय जुड़ता है और इनका रूप राज, अह और सख हो जाता है। यथा—

महान् राजा = महाराजः, उत्तमम् अहः = उत्तमाहः, कृष्णस्य सखा = कृष्णसखः, कहीं-कहीं अहन् शब्द का भी 'अह्न' हो जाता है। यथा—पूर्वाह्णः, सायाह्नः।

४४. ऋक्, पुर्, अप्, धुर् और पथिन् शब्द जब समास के अन्तिम शब्द होते हैं, तो समास के अन्त में अ प्रत्यय जुड़ जाता है। यथा—

ऋचः अर्धम् – अर्धर्चः, विष्णोः पूः = विष्णुपुरम्, विमला आपः यस्य तत् = विमलापम्, राज्यस्य धूः = राज्यधुरा।

४५. अहः, सर्व, एकदेश सूचक शब्द, संख्यात एवं 'युग्म के साथ रात्रि का समास होने पर समासान्त अच् प्रत्यय लगता है और समस्त पद त्रान्त हो जाता है। यथा—

अहश्चरात्रिश्चेति = अहोरात्रः, सर्वा रात्रिः = सर्वरात्रः, पूर्वं रात्रेः = पूर्वरात्रः, नवानां रात्राणां समाहारो = नवरात्रम्, अतिक्रान्तो रात्रिमतिरात्रः।

४६. समस्त पद का जाति या संज्ञा—नाम अर्थ होने पर अनस्, अश्मन्, अयस् और सरस् उत्तर पदवाले समासों में टच् प्रत्यय लगता है। यथा—

उपानसम्, अमृताश्मः, कालायसम्, महानसम्, जलसरसम्।

४७. नञ्, दुः और सु के साथ प्रजा और मेधा का बहुव्रीहि समास होने पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असिच् प्रत्यय लगता है। यथा—अप्रजाः, दुष्प्रजाः, सुप्रजाः, अमेधाः, सुमेधाः।

४८. धर्म के पूर्व यदि केवल एक ही पद हो तो बहुव्रीहि समास में अनिच् प्रत्यय लगता है। यथा—कल्याणधर्मा, उत्पत्स्यतेऽस्तु मम कोऽपि समानधर्मा कालो ह्ययं निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी।

तद्धित विचार

तद्धित प्रत्यय—धातुओं को छोड़ शेष प्रकार के शब्दों में जिन प्रत्ययों को जोड़ने से कुछ और भी अर्थ निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं, यथा अण्, ष्यण्, त्व, मत् आदि तद्धित प्रत्यय हैं। इन प्रत्ययों के लगाने से जो शब्द बनते हैं, उन्हें तद्धित कहते हैं। यथा—कषायेण रक्तम् = काषायम् वस्त्रम्। यहाँ कषाय शब्द से अण् प्रत्यय जोड़ा गया है।

तद्धित प्रत्यय नौ भागों में विभक्त हैं—(१) अपत्यार्थक (२) देवतार्थक (३) सामूहिक (४) अध्ययनार्थक (५) शैषिक (६) विकारावयवार्थक (७) अनेकार्थक (८) मतुबर्थक और (९) स्वार्थिक।

तद्धित प्रत्यय लगाते समय निम्न सामान्य नियमों को अवगत कर लेना आवश्यक है।

१. तद्धितेष्वचामादेः ७।२।११७—जिन तद्धित प्रत्ययों में ञ् और ण् की इत्संज्ञा की जाय, उन प्रत्ययों को जोड़ते समय आदि स्वर की वृद्धि हो जाती है। यथा—

दिति + ण्य = दि + ति + य = दैत्य।

क के इत् होने पर भी आदि स्वर की वृद्धि होती है। यथा—वर्षा + ठक् (इक) = वार्षिकः।

२. स्वर अथवा य से आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व शब्दों के अन्तिम स्वर में विकार उत्पन्न होता है अर्थात् अ आ इ ई का तो लोप हो जाता है, उ ऊ के स्थान पर गुण (ओ) हो जाता है और औ के स्थान पर सन्धि हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नकारान्त शब्दों के आगे व्यंजन से आरम्भ होने वाले प्रत्यय जोड़ने पर प्रायः अन् भाग का लोप हो जाता है। यथा—राजन्+वुञ् (अक) = राज् + अक = राजकम्।

३. **ठस्येकः** ७।३।५०—प्रत्यय में आये हुए ठ के स्थान पर इक होता है।

४. **युवोरनाकौ** ७।१।१—प्रत्यय के यु, वु के स्थान पर अन और अक हो जाते हैं। यथा—ल्युट् = यु (अन), वुञ् = अक।

५. **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** ७।१।२—प्रत्यय के आदि में आये हुए फ, ढ, ख, छ, घ, के स्थान पर क्रम से आयन्, एय्, ईन्, ईय, इय हो जाते हैं। फ = आय, ढ = एय, ख = ईन, छ = ईय्, घ = इय्।

६. प्रत्यय के अन्त में आया हुआ हल् वर्ण इत्संज्ञक होता है और यह केवल वृद्धि या गुण आदि की सूचना देता है।

अपत्यार्थक

अपत्य के तीन भेद हैं—(१) अपत्य (२) गोत्रापत्य (३) युवापत्य। जो अपने से विना व्यवधान के उत्पन्न हों, उन पुत्रादि की अपत्य संज्ञा है; जो अपत्य में उत्पन्न हों, उन पौत्रादिकी गोत्रापत्य संज्ञा और जो पिता आदि जीवित हों तो पौत्र के पुत्रादि की युवापत्य संज्ञा है। इन तीनों अर्थों में अपत्यार्थक प्रत्यय होते हैं।

७. **अत इञ्** ४।१।९५—अपत्यर्थ में अकारान्त शब्दों से इञ् प्रत्यय होता है। दशरथ + इञ् = दाशरथिः (दशरथस्यापत्यम्), दक्षस्य अपत्यं = दाक्षिः (दक्ष + इञ्)।

८. **गर्गादिभ्यो यञ्** ४।१।१०५—गर्गादि से गोत्रापत्य अर्थ में यञ प्रत्यय होता है। यथा—गर्गस्य गोत्रापत्यं = गार्ग्यः (गर्ग + यञ्), पुलस्तेः गोत्रापत्यं = पौलस्त्यः, अगस्तेः गोत्रापत्यमागस्त्यः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९. स्त्रीभ्योढक् ४।१।१२०—स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द से अपत्य अर्थ में ढक् होता है और ढक् के स्थान पर एय् हो जाता है। दत्तायाः अपत्यं पुमान् = दात्तेयः (दत्ता + ढक्), विनताया अपत्यं = वैनतेयः (विनता + ढक्), भगिनी + ढक् = भागनेयः, अत्रेरपत्यं पुमान् = आत्रेयः (अत्रि + ढक्)।

१०. अश्वपत्यादिभ्यश्च ४।१।८४—अश्वपति, शतपति, धनपति, गृहपति, पशुपति, सभापति, कुलपति, राष्ट्रपति, धान्यपति, क्षेत्रपति, प्राणपति आदि शब्दों से अपत्यार्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा—

अश्वपतेरपत्यम् = आश्वपतम् (अश्वपति + अण्), गाणपतम्, कौलपतम्, पाशुपतम्। शिवादिगण पठित शब्दों से भी अण् प्रत्यय होता है। यथा—शिवस्य अपत्यम् = शैवः (शिव + अण्), काकुत्स्थः, देह्यः, वैश्रवणः, गाङ्गः, यास्कः, भौमः, ऐलः, सापत्नः।

११. राजश्वशुराद्यत् ४।१।१३७—राजन् और श्वशुर शब्द से अपत्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यथा—राज्ञः अपत्यम् = राजन्यः (राजन् + यत्), श्वशुरस्यापत्यं = श्वशुर्यः (श्वशुर + यत्)

१२. दुष्कुलाड्ढक् ४।१।१४२—दुष्कुल शब्द से अपत्यर्थ में ढक् और ख प्रत्यय होते हैं। यथा—दुष्कुलस्यापत्यं = दौष्कुलेयः, दौष्कुलीन (दुष्कुल + ढक्, दुष्कुल + ख)।

१३. क्षत्राद्घः ४।१।१३८—क्षत्र शब्द से अपत्यर्थ में घ (इय्) प्रत्यय होता है। यथा—क्षत्रस्य अपत्यं = क्षत्रियः (क्षत्र + घ)।

१४. मनोर्जातावञ्यतौ षुक् च ४।१।१६१—मनु शब्द से अपत्यार्थ में अञ्, यत् प्रत्यय होते हैं तथा षुक् का आगम होता है। यथा—मनोरपत्यं = मनुष्यः (मनु + यत्), मानुषः (अञ्)।

१५. कुरुनदादिभ्यो ण्यः ४।१।१७२—कुरु और नकार आदि में हो जिनके, उन शब्दों से अपत्यार्थ में ण्य (य) प्रत्यय होता है। यथा—कुरोरपत्यं, कुरूणां राजा वा = कौरव्यः (कुरु + ण्य), निषधस्य अपत्यं निषधस्य राजा वा = नैषध्यः (निषध + ण्य)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवतार्थक

१६. सास्य देवता ४।२।२४—वह देवता इस अर्थ में प्रथमान्त अण् प्रत्यय होता है। यथा—इन्द्रो देवता अस्येति = ऐन्द्रः (इन्द्र + अण्), पशुपतिः देवता अस्य पाशुपतम् (पशुपत + अण्), बृहस्पतिः देवता अस्य = बार्हस्पत्यम् (बृहस्पति + अण्), शिवः अस्य देवता = शैवः (शिव + अण्), विष्णुः अस्य देवता = वैष्णवः (विष्णु + अण्), शक्तिः अस्य देवता = शाक्तः।

१७. शुक्राद्घन् ४।२।२६—देवता अर्थ में शुक्र शब्द से घन् प्रत्यय होता है। यथा शुक्रो देवताऽस्य = शुक्रियं हविः सूक्तं वा। शुक्र + घन् (इय)।

१८. शतरुद्राद्घश्च (वा०)—शतरुद्र से देवता अर्थ में घन् और छ दोनों प्रत्यय होते हैं। यथा—शतं रुद्रा देवता अस्य = शतरुद्रियम्, शतरुद्रीयम्।

१९. सोमाट् ट्यण् ४।२।३०—सोम शब्द से देवता अर्थ में ट्यण् प्रत्यय होता है। यथा—सोमो देवता यस्य = सौम्यम् (सोम + ट्यण्)।

२०. महेन्द्राद् घाणौच ४।२।१९—महेन्द्र शब्द से देवता अर्थ में अण्, घ और छ प्रत्यय होते हैं। यथा—महेन्द्रो देवता अस्य = माहेन्द्रम्, महेन्द्रियम्, माहेन्द्रीयम्।

२१. वाय्वृतुपित्रुषसोयत् ४।२।३१—वायु, ऋत, पितृ और उषस् शब्द से देवता अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यथा—वायुर्देवताऽस्य = वायव्यम्, ऋतव्यम्, पित्र्यम्, उषस्यम् (वायु + यत्)।

२२. द्यावापृथिवीशुनासीरमरुत्वदग्नीषोमवास्तोष्पतिगृहमेधाच्छ च ४।२।३२—द्यावापृथिवी, शुनासीर आदि शब्दों से देवता अर्थ में छ और यत् प्रत्यय होते हैं। यथा—द्यावापृथिव्यौ देवते अस्य = द्यावापृथिवीयम्, द्यावापृथिव्यम् (द्यावापृथिवी + छ, द्यावापृथिवी + यत्), शुनासीरीयम्, शुनासीर्यम्, मरुत्वतीयम्, अग्निषोमीयम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२३. **अग्नेर्ढक्** ४।२।३३—देवता अर्थ में अग्नि शब्द से ढक् प्रत्यय होता है। यथा—अग्निर्देवताऽस्य = आग्नेयम् (अग्नि + ढक्)

२४. **महाराजप्रोष्ठपदाट्ठञ्** ४।२।३५—देवता अर्थ में महाराज और प्रोष्ठपद शब्द से ठञ् प्रत्यय होता है। यथा—महाराजो देवताऽस्य = महाराजिकम्, प्रौष्ठपदिकम् (महाराज + ठञ्)।

२५. पितृ और मातृ शब्दों से यदि उनके भ्राता अभिधेय हों तो क्रम से व्यत् और ड्लच् प्रत्यय होते हैं और यदि उनके पिता अभिधेय हों तो महच् प्रत्यय होता है। यथा—पितुर्भ्राता = पितृव्यः, मातुर्भ्राता = मातुलः (पितृ + व्यत्), पितुः पिता = पितामहः, मातुः पिता = मातामहः।

सामूहिक समूहार्थक

२६. **तस्य समूहः** ४।२।३७—किसी वस्तु का समूह अर्थ बतलाने के लिए उस वस्तु के अनन्तर अण् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है। यथा—

बकानां समूहः = बाकम् (बक + अण्), काकानां समूहः = काकम् (काक + अण्), वृकानां समूहः = वाकम् (वृक + अण्), मायूरम्, कापोतम्, गर्भिणीनां समूहः = गार्भिणम्, युवतीनां समूहः = यौवनं, योवतं वा।

२७. **गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्यराजपुत्रवत्समनुष्याजाद्वुञ्** ४।२।३९ गोत्र, उक्ष, उष्ट्र, अभ्र, राज, राजन्य, राजपुत्र, वत्स, मनुष्य और अज शब्द से समूह अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है। यथा—

उक्षाणां समूहः = औक्षकम्, औष्ट्रम्, औरभ्रकम्, राजकम्, राजन्यकम्, राजपुत्रकम्, वात्सकम्, मानुष्यकम्, आजकम्।

२८. **केदाराद्यञ्च** ४।२।४०—केदार शब्द से समूह अर्थ में यञ्, वुञ् और ठञ् प्रत्यय होते हैं। यथा—केदाराणां समूहः = कैदार्यम्, कैदारकम्, कैदारिकम् (केदार + यञ्, केदार + वुञ्, केदार + ठञ्)।

२९. **गणिकाया यञिति वक्तव्यम्** (वा०)—गणिका शब्द से यञ् प्रत्यय होता है। यथा—गणिकानां समूहः = गाणिक्यम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३०. ब्राह्मणमाणववाडवाद्यत् ४।२।४२—ब्राह्मण, माणव और वाडव शब्द से समूह अर्थ में यत् प्रत्यय होता है। यथा—ब्राह्मणानां समूहः = ब्राह्मण्यम्, माणव्यम्, वाडव्यम्।

३१. ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् ४।२।४३—ग्राम, जन, बन्धु, गज, सहाय शब्दों से समूह अर्थ में तल् (ता) प्रत्यय लगता है। यथा—

ग्रामाणां समूहः = ग्रामता, जनानां समूहः = जनता, बन्धुता, गजता, सहायता।

अध्ययनार्थक

३२. तदधीते तद्वेद ४।२।५९—द्वितीयान्त शब्द से पढ़ने और जानने के अर्थ में अध्ययनार्थक प्रत्यय होते हैं। तदधीती और तत् वेद अर्थ में अण् प्रत्यय होता है।

यथा—व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः, नैरुक्तः, छान्दसः।

३३. क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक् ४।२।६०—यज्ञ विशेष वाचक और उक्थादि गण पठित शब्दों से अध्ययनार्थक ठक् प्रत्यय होता है। यथा—

यज्ञवाचक—अग्निष्टोममधीते वेद वा = अग्निष्टोमिकः, वाजपेयिकः।

उक्थादि—उक्थान्यधीते वेद वा = औक्थिकः, नैयायिकः, लौकायतिकः, नैमित्तिकः, याज्ञिकः, धार्मिकः।

३४. विद्यालक्षणकल्पान्ताच्चेतिवक्तव्यम् (वा०)—विद्या, लक्षण और कल्प ये शब्द जिनके अन्त में हो, उनसे तथा इतिहास और पुराण शब्दों से भी उक्तार्थ में ठक् प्रत्यय होता है। यथा—

नक्षत्रविद्यामधीते वेद वा = नाक्षत्रविधिकः, सर्पविधिक, आश्वलक्षणिकः, मातृकल्पिकः, ऐतिहासिकः, पौराणिकः, गौलक्षणिकः, पाराशरकाल्पिकः, आङ्गविद्यः, क्षात्रविद्यः, धार्मविद्यः, त्रिविधा विद्या = त्रिविद्या तामधीते वेदवा = त्रैविद्यः।

३५. वसन्तादिभ्यष्ठक् ४।२।६३—वसन्तादिगण पठित शब्दों से भी उक्तार्थ में ठक प्रत्यय होता है। यथा—वसन्तविद्यामधीते वेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वा = वासन्तिकः, ग्रैष्मिकः, वार्षिकः, शारदिकः, हैमन्तिकः, शैशिरिकः, प्राथमिकः, गौणिकः, आथर्वणिकः।

३६. क्रमादिभ्यो वुन् ४।२।६१—क्रमादि गण पठित शब्दों से उक्तार्थ में वुन् प्रत्यय होता है। यथा—

क्रममधीते वेद वा = क्रमकः, पदकः, शिक्षकः, मीमांसकः, सायकः।

शैषिक

३७. शेषे ४।२।९२—जिन अर्थों का बोध अपत्यार्थ, चातुरर्थिक, रक्ताद्यर्थक प्रत्ययों से नहीं होता, वे तद्धित प्रत्यय शैषिक में परिगणित किये गये हैं। शैषिक अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा—

चक्षुषा गृह्यते रूपं = चाक्षुषम् (चक्षु + अण्), श्रवणेन श्रूयते शब्दः = श्रावणः (श्रवण + अण्), चतुर्भिरुह्यते (शकटम्) = चातुरम्, चतुर्दश्यां दृश्यते (रथः) = चातुर्दशम्।

३८. ग्रामाद्यखञौ ४।२।९४—ग्राम शब्द के अनन्तर शैषिक य और खञ् (ईन) प्रत्यय होते हैं। यथा—ग्राम्यः, ग्रामीणः।

३९. द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत् ४।२।१०१—द्यु, प्राग्, अपाच्, उदच्, प्रतीच्, शब्दों के अनन्तर यत् प्रत्यय होता है। यथा—

(दिव + यत्) = दिव्यम्, प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्।

४०. अव्ययात्त्यप् ४।२।१०४, अमेहक्वतसित्रेभ्य एव (वा०)—अमा, इह, क्व तथा नि के अनन्तर और तसि प्रत्ययान्त तथा त्रल् प्रत्ययान्त शब्दों के अनन्तर त्यप् (त्य) प्रत्यय होता है। यथा—

अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यहः, नित्यः, ततस्त्यः, यतस्त्यः, कुत्रत्यः, तत्रत्यः, अत्रत्यः।

४१. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १।१।७३, **त्यदादीनि च** १।१।७४ **वृद्धाच्छः** ४।२।११३—जिन शब्दों के स्वरों में पहला स्वर वृद्धिवाला (आ, ऐ, औ) हो, उन शब्दों को तथा त्यद् आदि त्यद्, तद्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्, एतद्, इदम्, अदस्, एक, द्वि, भवत्, युष्मद्, किम् शब्दों की वृद्धि संज्ञा है। इनसे शैषिक छ (ईय) प्रत्यय होता है। यथा—

शाला + छ = शालीयः, माला + छ = मालीयः, तद् + छ = तदीय, यदीय, युष्मदीय, अस्मदीय, भवदीय आदि।

युष्मद् और अस्मद् शब्दों के अनन्तर इसी अर्थ में छ् के अतिरिक्त अण और खञ् भी विकल्प से होते हैं। यथा—

युष्माक + अण् = यौष्माकः, युष्माक + खञ् = यौष्माकीयः, तावकः, तावकीनः, आस्माकः, आस्माकीनः।

४२. कालाट्ठञ् ४।३।११—कालवाची शब्दों के अनन्तर शैषिक ठञ् होता है। यथा—

मास + ठञ् = मासिकः, सांवत्सरिकः, सायंप्रातिकः, पौनःपुनिकः।

४३. सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण् ४।३।१६—सन्धिवेला, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद्, ऋतुवाची शब्द, और नक्षत्रवाची शब्दों के अण् प्रत्यय होता है।

यथा—सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावास्यम्, त्रायोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम्, शारदम्, हैमन्तम्, पौषम्।

४४. सायं चिरं प्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ४।३।२३—सायं, चिरं, प्राह्णे और प्रगे शब्दों के अनन्तर तथा अव्ययों के अनन्तर ट्यु-ट्युल् (अन) प्रत्यय होते हैं और शब्द तथा प्रत्यय के बीच में त् का आगम हो जाता है। यथा—

सायम् + ट्युल् (अन) = सायन्तनम्, चिरन्तनम, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम्।

४५. राष्ट्रावारपाराद्घखौ ४।२।९३—राष्ट्र और अवारपार शब्द से क्रम से घ और ख प्रत्यय होते हैं। यथा—राष्ट्रियः (राष्ट्र + घ इय), अवारपारीणः।

४६ भवत् सर्वनाम से ठक् और छष् प्रत्यय होते हैं। यथा—भवतस्तु भवः = भावत्कः, भवदीयः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४७. आदि, मध्य, अवस् और अधम् शब्दों से म प्रत्यय होता है। आदौ भवः = आदिमः, मध्यमः, अवमः, अधमः।

४८. नगर शब्द से निन्दा और प्रवीणता में शैषिक वुञ् होता है। यथा नगरे भवः नागरकश्चौरः, नागरकः शिल्पी।

४९. पर्वत शब्द से मनुष्य अभिधेय हो तो शैषिक छ प्रत्यय होता है। यथा—पर्वते भवः = पर्वतीयः पुरुषः, पर्वतीयो राजा।

५०. द्वीप शब्द से यदि वह समुद्र के समीप हो तो शैषिक यत् होता है। यथा—द्वीपे भवं = द्वैप्यम्।

५१. अग्र, पश्चात् और अन्त शब्दों से इम् प्रत्यय होता है। यथा—अग्रे भवम् = अग्रिमम्, पश्चिमम्, अन्तिमम्।

विकारार्थक और सम्बन्धार्थक

५२. तस्येदम् ४।३।१२०—यह इसका है, इस अर्थ को बतलाने के लिए अण् प्रत्यय होता है। यथा—उपगोरिदम् = औपगवम्, देवस्य अयम् = दैवः, ग्रैष्मम्, नैषम्।

५३. हलसीराट्ठक् ४।३।१२४—सम्बन्ध अर्थ दिखलाने के लिए हल और सीर शब्द में ठक् (इक) प्रत्यय होता है। यथा—हालिकम्, सैरिकम्।

५४. तस्य विकारः ४।३।१३४—जिस वस्तु से बनी हुई विकारस्वरूप कोई दूसरी वस्तु दिखलायी जाय तो उस विकारार्थ में अण् प्रत्यय होता है। यथा—

ओषधेरवयवो विकारो वा = औषधम्, मृत्तिकायाः विकारः = मार्त्तिकः, अश्मनो विकारः = आश्मः, भस्मनो विकारः = भास्मनः, ब्राह्मः, मौद्गः, गौधूमः, मयूरस्य विकारः अवयवो वा = मायूरः, मर्कटस्य विकारोऽवयवो वा = मार्कटः; पिप्पलस्य विकारः अवयवो वा = पैप्पलः।

५५. ओरञ् ४।१।१६९ उ ऊ में अन्त होनेवाले शब्दों के अनन्तर अवयव अर्थ बतलाने के लिए अम् (अ) प्रत्यय होता है। यथा—देवदारोः = विकारः = दैवदारवम्, भाद्रदारवम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मतुबर्थक

हिन्दी में जो अर्थ वान् या वाला आदि प्रत्ययों के द्वारा सूचित किया जाता है, संस्कृत में वह अर्थ मतुप् प्रत्यय के द्वारा प्रकट किया जाता है।

५६. तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ५।२।९४—किसी वस्तु का होना किसी दूसरी वस्तु में सूचित करने के लिए मतुप् प्रत्यय लगता है। यथा—गावः अस्य सन्तीति = गोमान् (गो + मतुप्)।

५७. भूयनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। सम्बन्धेऽस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः (का०)—जब किसी वस्तु का बाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अधिकता अथवा सम्बन्ध का बोध कराना हो तो विशेषकर मत्वर्थीय प्रत्यय लगते हैं। यथा—

धनवान्, निन्दा—वाचालः, प्रशंसा—गुणवान्, नित्ययोगः—लोमशः। क्षीरीवृक्षः, उदरिणी कन्या (बड़े पेटवाली लड़की), दण्डी (मत्वर्थीय इति)।

५८. गुणवाचक शब्दों में मतुप् प्रत्यय जुड़ता है। यथा गुणवान्, रूपवान्, रसवान् आदि।

५९. अत इनिठनौ ५।२।११५—अकारान्त शब्दों के अनन्तर इनि (इन्) और ठन् (इक) प्रत्यय मतुबर्थ में लगते हैं। यथा—दण्डी (दण्ड + इति) = दण्डिकः (दण्ड + ठन्)।

६०. तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच् ५।२।३६—यह उत्पन्न हो गया है, जिसमें इस अर्थ को बतलाने के लिए तारकादि—तारका, पुष्प, मंजरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार, विचार, कण्टक, मुकुल, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग, निद्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा आदि शब्दों से इतच् प्रत्यय होता है। यथा—

तारकाः संजाताः अस्य = तारकितं नभः, तारका + इतच् = तारकितं, पिपासितं, पुष्पितः, कुसुमितः।

६१. दन्त शब्द से उन्नत अर्थ बतलाने में मत्वर्थीय उरच् प्रत्यय होता है। यथा— दन्ता उन्नता अस्य सन्ति = दन्तुरः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६२. मत्वर्थीय इन्, ठन्, इलच्, विन्, युस् आदि प्रत्यय होते हैं। यथा—तुन्दमस्यास्तीति = तुन्दी (तुन्द + इन्), तुन्द + ठन् = तुन्दिकः, तुन्द + इलच् = तुन्दिलः, उदरी, उदरिकः, उदरिलः। यशोऽस्यास्तीति—यशस्वी (यशस् + विन्), पयस्वी, तपस्वी, मेधावी, मायावी। ऊर्णा अस्य विद्यन्ते = ऊर्णायुरविः (ऊर्णा + युस्)।

स्वार्थिक

६३. अतिशायने तमबिष्ठनौ ५।३।५५—अतिशय—विशिष्ट अर्थ की विवक्षा में तमप् और इष्ठन् प्रत्यय होते हैं। यथा—लघुतमः, लघिष्ठः, गुरुतमः, गरिष्ठः।

६४. तिङश्च ५।३।५६—तिङन्त से भी अतिशय बोध कराने में तमप् प्रत्यय होता है। परन्तु तिङन्त में तम के आगे आम् और प्रयुक्त हो जाता है। यथा— पचतितमाम्। इसी प्रकार किम् और अव्यय से भी तमप् होने पर आम् आगे प्रयुक्त होता है। किंतमाम्, उच्चैस्तमाम्।

६५. द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ५।३।५७—दो में से एक की अतिशय व्यवस्था में तरप् और ईयसुन् प्रत्यय होते हैं। यथा—अयमनयोरतिशयेन लघुः लघुतरः वा लघीयान्।

६६. संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् ५।४।१७—क्रिया की गणना में संख्या शब्द से स्वार्थ में कृत्व सुच् प्रत्यय होते हैं। यथा—पञ्चकृत्वो भुङ्क्ते।

६७. प्रकारवचने जातीयर् ५।३।६९—प्रकार कहने के अर्थ में शब्दों से स्वार्थ में जातीयर् प्रत्यय होता है। यथा—एवम्प्रकारः, एवञ्जातीयः, मृदुप्रकारः, मृदुजातीयः, प्रमाणजातीयः, प्रमेयजातीयः।

६८. प्रशंसायां रूपप् ५।३।६६—प्रशंसा अर्थ में स्वार्थिक रूपप् प्रत्यय होता है। यथा—प्रशस्तो वैयाकरणो = वैयाकरणरूपः, याज्ञिकरूपः, पाचकरूपः, प्राज्ञरूपः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६९. संख्याया विधार्थे धा ५।३।४२—प्रकार अर्थ में संख्यावाची शब्दों से स्वार्थिक धा प्रत्यय होता है। यथा—एकधा भुङ्क्ते, द्विधा गच्छति, चतुर्धा, पञ्चधा, सप्तधा, नवधा आदि।

७०. प्रकारवचने थाल् ५।३।२३—तद् आदि सर्वनाम शब्दों से प्रकार अर्थ में थाल् प्रत्यय होता है। यथा—तेन प्रकारेण = तथा, सर्वैः प्रकारैः सर्वथा, अन्येन प्रकारेण = अन्यथा, येन प्रकारेण = यथा, बहुधा।

७१. सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा ५।३।१५—सर्व, एक, अन्य, किम्, यद्, तद् इन सर्वनाम शब्दों से दा प्रत्यय होता है। यथा—एकस्मिन् काले = एकदा, अन्यस्मिन् काले अन्यदा, यस्मिन् काले = यदा, तस्मिन् काले = तदा, कस्मिन् काले = कदा, सर्वस्मिन् काले = सदा। सर्व के स्थान पर स और किम् के स्थान पर क आदेश होता है।

७२. इदमस्थमुः ५।३।२४—प्रकार अर्थ में इदम् शब्द से स्वार्थिक थमु प्रत्यय होता है। यथा—अनेन प्रकारेण = इत्थम् (इदम् + थम्)।

७३. किमश्च ५।३।२५—प्रकार अर्थ में किम् शब्द से स्वार्थिक थमु प्रत्यय होता है। यथा—केन प्रकारेण कथम्।

अनेकार्थक

७४. प्रथमान्त आदि विभक्तियों से षष्ठी, सप्तमी या अन्य विभक्तियों के अर्थ में जो प्रत्यय होते हैं, वे अनेकार्थक कहलाते हैं। यथा—प्रथमान्त से षष्ठी अर्थ में—ठक्—सुवर्णं पण्यमस्य = सौवर्णिकः, लावणिकः, मृदङ्गं शिल्पमस्य = मार्दङ्गिकः। छ—अनुप्रवचनं प्रयोजनमस्य = अनुप्रवचनीयम्, उत्थापनीयम्, प्रवेशनीयम्। वत्—यत्परिमाणमस्य = यावान्, तावान्, किं परिमाणमस्य = कियान्, इयं परिमाणमस्य = इयान्।

द्वितीयान्तात्

ठक्—समाजं रक्षति = सामाजिकः, शब्दं करोति = शाब्दिकः, धर्मं चरति = धार्मिकः, समुदायात् समवैति = सामुदायिकः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ण्य—परिषदं समवैति = पारिषदः, सेनां समवैति = सैन्यः, सैनिकः ।

यत्—धुरं वहति = धुर्यः, धौरियः ।

अण्—शकटं वहति = शाकटः ।

तृतीयान्तात्

ठक्—अक्षैर्दीव्यति = आक्षिकः, कुद्दालेन खनति = कौद्दालिकः, वेतनेन जीवति = वैतनिकः, दण्डेन चरति = दाण्डिकः ।

ठन्—नावातरति = नाविकः ।

यत्—नावा तार्यम् = नाव्यम् , वयसा तुल्यम् = वयस्यम् , मूलेन समं = मूल्यम् , तुलया सम्मितं = तुल्यम् ।

चतुर्थ्यन्तात्

ख—आत्मने हितं = आत्मनीनम् , विश्वजनीनम् ।

ख—ठञ्— सर्वजनेभ्यो हितं = सर्वजनीनम् , सार्वजनिकम् ।

छ—वत्सेभ्यः, हितं दुग्धम् = वत्सीयम् , सर्वेभ्यो हितं = सर्वीयम् ।

यत्—गोभ्यः हितं = गव्यम् , दन्तेभ्यः हिता (औषधिः) = दन्त्या ।

सप्तम्यन्तात्

ठक्—द्वारे तिष्ठतीति = दौवारिकः, निकटे वसति = नैकटिकः ।

ठञ्—लोके विदितः = लौकिकः, सार्वलौकिकः ।

यत्—समान तीर्थे वसति = सतीर्थ्यः, समानोदरे वसति = सोदर्यः ।

खञ्—प्रतिजने साधुः = प्रातिजनीनः, सर्वजनेषु साधुः = सार्वजनीनः ।

ण—ण्य—परिषदि साधुः = पारिषदः, पारिषद्यः ।

ढञ्—पथि साधुः = पाथेयम् , अतिथेयम् , वासतेयम् ।

य—सभायां साधुः = सभ्यः ।

भावार्थ तथा कर्मार्थ

७५. तस्य भावस्त्वतलौ ५।१।११९—किसी शब्द से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए उस शब्द में त्व अथवा तल् (ता) प्रत्यय जोड़ते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्व में अन्त होनें वाले शब्द नपुंसकलिंग और तत् में अन्त होने वाले स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—

गो + त्व = गोत्वम्, गो + तल् = गोता, शिशु + त्व = शिशुत्वम्, शिशुता।

७६. पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा ५।१।१२२—पृथु, मृदु, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु, गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, पाक, दीर्घ, क्षुद्र आदि शब्दों से भाववाचक में विकल्प से इमनिच् प्रत्यय होता है। यथा—

पृथु + इमनिच् = प्रथिमन्, पृथुत्वम्, पृथुता, म्रदिमन्, महिमन्, पटियन्, तनिमन्।

७७. वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च ५।१।१२३—वर्णवाची शब्द शुक्ल, नील आदि तथा दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, कृष्ट, लवण, पण्डित, मधुर, मूर्ख आदि शब्दों से भाव अर्थ में इमनिच् अथवा ष्यञ् प्रत्यय लगते हैं। यथा—

शुक्लस्य भावः = शुक्लिमा, शौक्ल्यम्, शुक्लत्वं, शुक्लता, माधुर्यम्, मधुरिमा।

७८. गुणवाची तथा ब्राह्मण आदि शब्दों से ष्यञ् (य) प्रत्यय लगता है और इकारान्त, उकारान्त तथा ऋकारान्त शब्दों से अञ् प्रत्यय होता है। यथा—ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा = ब्राह्मण्यम्। शुचेर्भावः कर्म वा = शौचम्, मौनम् आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तमोऽध्यायः

क्रियाविचार

संस्कृत में क्रिया शब्दों के मूल रूप को धातु कहते हैं। धातुओं में विविध प्रत्यय जोड़ने पर क्रिया के रूप बनते हैं। सुविधा के लिए वैयाकरणों ने धातुओं को दस वर्गों में विभक्त किया है, जिन्हें गण कहते हैं। यथा—

१. भ्वादि गण—भू धातु के समान चलनेवाली धातुओं का गण—समूह
२. अदादिगण—अद् धातु के समान रूपवाली धातुओं का गण—समूह
३. जुहोत्यादि—हु धातु के समा रूपवाली धातुओं का गण—समूह
४. दिवादि—दिव् धातु के समान रूपवाली धातुओं का गण—समूह
५. स्वादि—सु धातु के समान रूपवाली धातुओं का गण—समूह
६. तुदादि—तुद् की तरह चलने वाली धातुओं का गण—समूह
७. रुधादि—रुध् धातु के समान रूपवाली धातुओं का गण—समूह
८. तनादि—तन् धातु के समान रूपवाली धातुओं का गण—समूह
९. क्र्यादि—क्री की तरह चलने वाली धातुओं का गण—समूह
१०. चुरादि गण—चुर् धातु की तरह चलनेवाली धातुओं का गण—समूह

प्रयोग काल में धातु के उत्तर तिङ् विभक्ति जोड़ी जाती है, अतः इन्हें तिङन्त भी कहते हैं। धातु रूप भी परस्मैपद और आत्मनेपद इन दो पदों में विभक्त हैं। कुछ धातुएँ उभयपदी भी होती हैं। क्रिया रूप तीन वाच्य और दस लकारों में होते हैं। यथा—

(१) लट्—वर्तमान काल के अर्थ में (Present tense)
(२) लोट्—आज्ञा अर्थ में (Imperative mood)
(३) विधि लिङ्—विधि अर्थ में (Potential mood)
(४) लङ्—अनद्यतन भूत (Imperfect tense)
(५) लिट्—परोक्ष भूत (Perfect tense)
(६) लुङ्—सामान्य भूत (Aorist)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

(७) लुट्—अनद्यतन भविष्यत् (First future) (९) आशीर्लिङ्—आशीर्वाद (Benedictive)
(८) लृट्—सामान्य भविष्यत् (Simple future) (१०) लृङ् –क्रियातिपत्ति (Conditional)

विभक्ति चिह्न

लट् (परस्मैपद) — लट् (आत्मनेपद)

ति	तस्	अन्ति	ते	इते	अन्ते
सि	थस्	थ	से	इथे	ध्वे
मि	वस्	मस्	इ	वहे	महे

लोट् (परस्मैपद) — लोट् (आत्मनेपद)

तु	ताम्	अन्तु	ताम्	इताम्	अन्ताम
तु, तात्	तम्	त	स्व	इथाम्	ध्वम्
आनि	आव	आम	ऐ	आवहै	आमहै

परस्मैपद — विधिलिङ्

ईत्	ईताम्	ईयुः	इत	ईयाताम्	ईरन्
ईः	ईतम्	ईत	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
ईयम्	ईव	ईम	ईय	ईवहि	ईमहि

दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में निम्न प्रत्यय—

ते	आते	अते
से	आथे	थे
ए	वहे	महे

दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में मध्यपुरुष एकवचन 'हि' विभक्ति जोड़ी गयी है। शेष सब प्रत्यय ज्यों के त्यों हैं। आत्मनेपद में निम्न प्रत्यय होंगे।

ताम्	आताम्	अताम्
स्व	अथाम्	ध्वम्
ऐ	आवहै	आमहै

आत्मनेपद

दूसरे, तीसरे, पाँचवें, आठवें, और नौवें गण के उपरान्त आत्मनेपद प्रत्यय।

यात्	याताम्	युस्
यास्	यातम्	यात
याम्	याव	याम

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
प्र० पु०	यात्	यास्ताम्	यासुः	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
म० पु०	याः	यास्तम्	यास्त	सीष्ठाः	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उ० पु०	यासम्	यास्व	यास्म	सीय	सीवहि	सीमहि

लृङ्

	परस्मैपद			आत्मनेपद		
प्र० पु०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म० पु०	स्यः	स्यतम्	स्यत	स्यथाः	स्येथाम्	स्यध्वम्
उ० पु०	स्यम्	स्याव	स्याम	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

लङ्

परस्मैपद			आत्मनेपद		
त	ताम्	अन्	त	इताम्	अन्त
स	तम्	त	थास्	इथाम्	ध्वम्
अम्	व	म	ये	वहि	महि

लिट्

परस्मैपद			आत्मनेपद		
अ	अतुस्	उस्	ए	आते	इरे
थ	अथुस्	अ	ऐ	आथे	ध्वे
अ	व	म	ए	वहे	महे

लुङ्

परस्मैपद			आत्मनेपद		
सीत्	स्ताम्	सुः	स्त	साताम्	सत
सीः	स्तम्	स्त	स्थाः	साथाम्	ध्वम्
सम्	स्व	स्म	सि	स्वहि	स्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

परस्मैपद			आत्मनेपद		
ता	तारौ	तारः	ता	तारौ	तारः
तासि	तास्थः	तास्थ	तासे	तासाथे	ताध्वे
तास्मि	तास्वः	तास्मः	ताहे	तास्वहे	तास्महे

लृट्

परस्मैपद			आत्मनेपद		
स्यति	स्यतः	स्यन्ति	स्यते	स्येते	स्यन्ते
स्यसि	स्यथः	स्यथ	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
स्यामि	स्यावः	स्यामः	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

गम्—जाने के अर्थ में

लट्

प्र० पु०	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
म० पु०	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उ० पु०	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

लोट्

प्र० पु०	गच्छतु-गच्छतात्	गच्छताम्	गच्छन्तु
म० पु०	गच्छ-गच्छतात्	गच्छतम्	गच्छत
उ० पु०	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
म० पु०	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
उ० पु०	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लङ्

प्र० पु०	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
म० पु०	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उ० पु०	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः
म० पु०	जगमिथ, जगंथ	जग्मथुः	जग्म
उ० पु०	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

लुङ्

प्र० पु०	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
म० पु०	अगमः	अगमतम्	अगमत
उ० पु०	अगमम्	अगमाव	अगमाम

लुट्

प्र० पु०	गन्ता	गन्तारौ	गन्तारः
म० पु०	गन्तासि	गन्तास्थः	गन्तास्थ
उ० पु०	गन्तास्मि	गन्तास्वः	गन्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
म० पु०	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उ० पु०	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासुः
म० पु०	गम्याः	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उ० पु०	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

लृङ्

प्र० पु०	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
म० पु०	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उ० पु०	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

छात्रों के लिए उपयोगी लट्, लृट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् ये पाँच

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लकार अधिक हैं, अतः यहाँ क्रियाओं के रूप उपर्युक्त पाँच लकारों में ही दिये जाते हैं।

परस्मैपदी दृश् (पश्य)—देखना

लट्

प्र० पु०	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
म० पु०	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उ० पु०	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लृट्

प्र० पु०	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म० पु०	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ० पु०	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

लोट्

प्र० पु०	पश्यतु-पश्यतात्	पश्यताम्	पश्यन्तु
म० पु०	पश्य-पश्यतात्	पश्यतम्	पश्यत
उ० पु०	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

लङ्

प्र० पु०	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
म० पु०	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
उ० पु०	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
म० पु०	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
उ० पु०	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धातुरूप

परस्मैपदी भू—होना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	भवति	भवतः	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथः	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवावः	भवामः

आज्ञा—लोट्—होवो, जाओ

प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
म० पु०	भवेः	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभूः	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
म० पु०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उ० पु०	बभूव	बभूविव	बभूविम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनद्यतन भविष्य लुट्—होनेवाला है

प्र० पु०	भविता	भवितारौ	भवितारः
म० पु०	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

सामान्य भविष्य—लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
म० पु०	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

परस्मैपदी गम्—जाना

परस्मैपदी दाण् धातु—देना

लट

प्र० पु०	यच्छति	यच्छतः	यच्छन्ति
म० पु०	यच्छसि	यच्छथः	यच्छथ
उ० पु०	यच्छामि	यच्छावः	यच्छामः

लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	यच्छतु—यच्छतात्	यच्छताम्	यच्छन्तु
म० पु०	यच्छ—यच्छतात्	यच्छतम्	यच्छत
उ० पु०	यच्छानि	यच्छाव	यच्छाम

लङ्

प्र० पु०	अयच्छत्	अयच्छताम्	अयच्छन्
म० पु०	अयच्छः	अयच्छतम्	अयच्छत
उ० पु०	अयच्छम्	अयच्छाव	अयच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	यच्छेत्	यच्छेताम्	यच्छेयुः
म० पु०	यच्छेः	यच्छेतम्	यच्छेत
उ० पु०	यच्छेयम्	यच्छेव	यच्छेम

नम्—झुकना या नमस्कार करना

लट्

प्र० पु०	नमति	नमतः	नमन्ति
म० पु०	नमसि	नमथः	नमथ
उ० पु०	नमामि	नमावः	नमामः

लृट्

प्र० पु०	नंस्यति	नंस्यतः	नंस्यन्ति
म० पु०	नंस्यसि	नंस्यथः	नंस्यथ
उ० पु०	नंस्यामि	नंस्यावः	नंस्यामः

लोट्

प्र० पु०	नमतु	नमताम्	नमन्तु
म० पु०	नम	नमतम्	नमत
उ० पु०	नमानि	नमाव	नमाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अनमत्	अनमताम्	अनमन्
म० पु०	अनमः	अनमतम्	अनमत
उ० पु०	अनमम्	अनमाव	अनमाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	नमेत्	नमेताम्	नमेयुः
म० पु०	नमेः	नमेतम्	नमेत
उ० पु०	नमेयम्	नमेव	नमेम

परस्मैपदी स्था (तिष्ठ)—ठहरना

लट्

प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थायन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

लोट्

प्र० पु०	तिष्ठतु–तिष्ठतात्	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
म० पु०	तिष्ठ–तिष्ठतात्	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उ० पु०	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ्

प्र० पु०	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
म० पु०	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उ० पु०	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
म० पु०	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उ० पु०	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

परस्मैपदी घ्रा (जिघ्र)—सूँघना

लट्

प्र० पु०	जिघ्रति	जिघ्रतः	जिघ्रन्ति
म० पु०	जिघ्रसि	जिघ्रथः	जिघ्रथ
उ० पु०	जिघ्रामि	जिघ्रावः	जिघ्रामः

लृट्

प्र० पु०	घ्रास्यति	घ्रास्यतः	घ्रास्यन्ति
म० पु०	घ्रास्यसि	घ्रास्यथः	घ्रास्यथ
उ० पु०	घ्रास्यामि	घ्रास्यावः	घ्रास्यामः

लोट्

प्र० पु०	जिघ्रतु-जिघ्रतात्	जिघ्रताम्	जिघ्रन्तु
म० पु०	जिघ्र, जिघ्रतात्	जिघ्रतम्	जिघ्रत
उ० पु०	जिघ्राणि	जिघ्राव	जिघ्राम

लङ्

प्र० पु०	अजिघ्रत्	अजिघ्रताम्	अजिघ्रन्
म० पु०	अजिघ्रः	अजिघ्रतम्	अजिघ्रत
उ० पु०	अजिघ्रम्	अजिघ्राव	अजिघ्राम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जिघ्रेत	जिघ्रेताम्	जिघ्रेयुः
म० पु०	जिघ्रेः	जिघ्रेतम्	जिघ्रेत
उ० पु०	जिघ्रेयम्	जिघ्रेव	जिघ्रेम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्-गिरना

लट्

प्र० पु०	पतति	पततः	पतन्ति
म० पु०	पतसि	पतथः	पतथ
उ० पु०	पतामि	पतावः	पतामः

लृट्

प्र० पु०	पतिष्यति	पतिष्यतः	पतिष्यन्ति
म० पु०	पतिष्यसि	पतिष्यथः	पतिष्यथ
उ० पु०	पतिष्यामि	पतिष्यावः	पतिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	पततु-पततात्	पतताम्	पतन्तु
म० पु०	पत-पततात्	पततम्	पतत
उ० पु०	पतानि	पताव	पताम

लङ्

प्र० पु०	अपतत्	अपतताम्	अपतन्
म० पु०	अपतः	अपततम्	अपतत
उ० पु०	अपतम्	अपताव	अपताम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
म० पु०	पतेः	पतेतम्	पतेत
उ० पु०	पतेयम्	पतेव	पतेम

पा (पिब)—पीना

लट्

प्र० पु०	पिबति	पिबतः	पिबन्ति
म० पु०	पिबसि	पिबथः	पिबथ
उ० पु०	पिबामि	पिबावः	पिबामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लट्

प्र० पु०	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
म० पु०	पास्यसि	पास्यथः	पास्यथ
उ० पु०	पास्यामि	पास्यावः	पास्यामः

लोट्

प्र० पु०	पिबतु-पिबतात्	पिबताम्	पिबन्तु
म० पु०	पिब-पिबतात्	पिबतम्	पिबत
उ० पु०	पिबानि	पिबाव	पिबाम

लङ्

प्र० पु०	अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्
म० पु०	अपिबः	अपिबतम्	अपिबत
उ० पु०	अपिबम्	अपिबाव	अपिबाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पिबेत्	पिबेताम्	पिबेयुः
म० पु०	पिबेः	पिबेतम्	पिबेत
उ० पु०	पिबेयम्	पिबेव	पिबेम

स्मृ—याद करना

लट्

प्र० पु०	स्मरति	स्मरतः	स्मरन्ति
म० पु०	स्मरसि	स्मरथः	स्मरथ
उ० पु०	स्मरामि	स्मरावः	स्मरामः

लृट्

प्र० पु०	स्मरिष्यति	स्मरिष्यतः	स्मरिष्यन्ति
म० तु०	स्मरिष्यसि	स्मरिष्यथः	स्मरिष्यथ
उ० पु०	स्मरिष्यामि	स्मरिष्यावः	स्मरिष्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	स्मरतु-स्मरतात्	स्मरताम्	स्मरन्तु
म० पु०	स्मर-स्मरतात्	स्मरतम्	स्मरत
उ० पु०	स्मराणि	स्मराव	स्मराम

लङ्

प्र० पु०	अस्मरत्	अस्मरताम्	अस्मरन्
म० पु०	अस्मरः	अस्मरतम्	अस्मरत
उ० पु०	अस्मरम्	अस्मराव	अस्मराम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्मरेत्	स्मरेताम्	स्मरेयुः
म० पु०	स्मरेः	स्मरेतम्	स्मरेत
उ० पु०	स्मरेयम्	स्मरेव	स्मरेम

जि—जीतना

लट्

प्र० पु०	जयति	जयतः	जयन्ति
म० पु०	जयसि	जयथः	जयथ
उ० पु०	जयामि	जयावः	जयामः

लृट्

प्र० पु०	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
म० पु०	जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ
उ० पु०	जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः

लोट्

प्र० पु०	जयतु-जयतात्	जयताम्	जयन्तु
म० पु०	जय-जयतात्	जयतम्	जयत
उ० पु०	जयानि	जयाव	जयाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अजयत्	अजयताम्	अजयन्
म० पु०	अजयः	अजयतम	अजयत
उ० पु०	अजयम्	अजयाव	अजयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जयेत्	जयेताम्	जयेयुः
म० पु०	जये	जयेतम्	जयेत
उ० पु०	जयेयम्	जयेव	जयेम

हृ—चोरी करना

लट्

प्र० पु०	हरति	हरतः	हरन्ति
म० पु०	हरसि	हरथः	हरथ
उ० पु०	हरामि	हरावः	हरामः

लृट्

प्र० पु०	हरिष्यति	हरिष्यतः	हरिष्यन्ति
म० पु०	हरिष्यसि	हरिष्यथः	हरिष्यथ
उ० पु०	हरिष्यामि	हरिष्यावः	हरिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	हरतु-हरतात्	हरताम्	हरन्तु
म० पु०	हर-हरतात्	हरतम्	हरत
उ० पु०	हराणि	हराव	हराम

लङ्

प्र० पु०	अहरत्	अहरताम्	अहरन्
म० पु०	अहरः	अहरतम	अहरत
उ० पु०	अहरन्	अहराव	अहराम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	हरेत्	हरेताम्	हरेयुः
म० पु०	हरेः	हरेतम्	हरेत
उ० पु०	हरेयम्	हरेव	हरेम

हस्—हँसना

लट्

प्र० पु०	हसति	हसतः	हसन्ति
म० पु०	हससि	हसथः	हसथ
उ० पु०	हसामि	हसावः	हसामः

लृट्

प्र० पु०	हसिष्यति	हसिष्यतः	हसिष्यन्ति
म० पु०	हसिष्यसि	हसिष्यथः	हसिष्यथ
उ० पु०	हसिष्यामि	हसिष्यावः	हसिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	हसतु-हसतात्	हसताम्	हसन्तु
म० पु०	हस-हसतात्	हसतम्	हसत
उ० पु०	हसानि	हसाव	हसाम

लङ्

प्र० पु०	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
म० पु०	अहसः	अहसतम्	अहसत
उ० पु०	अहसम्	अहसत	अहसाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
म० पु०	हसेः	हसेतम्	हसेत
उ० पु०	हसेयम्	हसेव	हसेम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वद्—बोलना

लट्

प्र० पु०	वदति	वदतः	वदन्ति
म० पु०	वदसि	वदथः	वदथ
उ० पु०	वदामि	वदावः	वदामः

लृट्

प्र० पु०	वदिष्यति	वदिष्यतः	वदिष्यन्ति
म० पु०	वदिष्यसि	वदिष्यथः	वदिष्यथ
उ० पु०	वदिष्यामि	वदिष्यावः	वदिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	वदतु-वदतात्	वदताम्	वदन्तु
म० पु०	वद-वदतात्	वदतम्	वदत
उ० पु०	वदानि	वदाव	वदाम

लङ्

प्र० पु०	अवदत्	अवदताम्	अवदन्
म० पु०	अवदः	अवदतम्	अवदत
उ० पु०	अवदम्	अवदाव	अवदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	वदेत्	वदेताम्	वदेयुः
म० पु०	वदेः	वदेतम्	वदेत
उ० पु०	वदेयम्	वदेव	वदेम

पच्—पकाना

लट्

प्र० पु०	पचति	पचतः	पचन्ति
म० पु०	पचसि	पचथः	पचथ
उ० पु०	पचामि	पचावः	पचामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	पक्ष्यति	पक्ष्यतः	पक्ष्यन्ति
म० पु०	पक्ष्यसि	पक्ष्यथः	पक्ष्यथ
उ० पु०	पक्ष्यामि	पक्ष्यावः	पक्ष्यामः

लोट्

प्र० पु०	पचतु-पचतात्	पचताम्	पचन्तु
म० पु०	पच-पचतात्	पचतम्	पचत
उ० पु०	पचानि	पचाव	पचाम

लङ्

प्र० पु०	अपचत्	अपचताम्	अपचन्
म० पु०	अपचः	अपचतम्	अपचत
उ० पु०	अपचम्	अपचाव	अपचाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पचेत्	पचेताम्	पचेयुः
म० पु०	पचेः	पचेतम्	पचेत
उ० पु०	पचेयम्	पचेव	पचेम

आत्मनेपदी सेव्—सेवा करना

लट्

प्र० पु०	सेवते	सेवेते	सेवन्ते
म० पु०	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे
उ० पु०	सेवे	सेवावहे	सेवामहे

लृट्

प्र० पु०	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
म० पु०	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उ० पु०	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
म० पु०	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
उ० पु०	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

लङ्

प्र० पु०	असेवेत	असेवेताम्	असेवन्त
म० पु०	असेवेथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
उ० पु०	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	सेवेत	सेवेताम्	सेवेरन्
म० पु०	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
उ० पु०	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

आत्मनेपदी लभ्—पाना

लट्

प्र० पु०	लभते	लभेते	लभन्ते
म० पु०	लभसे	लभेथे	लभेध्वे
उ० पु०	लभे	लभावहे	लभामहे

लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

लोट्

प्र० पु०	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
म० पु०	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उ० पु०	लभै	लभावहै	लभामहै

लङ्

प्र० पु०	अलभत	अलभताम्	अलभन्त
म० पु०	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उ० पु०	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	लभेत	लभेताम्	लभेरन्
म० पु०	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उ० पु०	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

आत्मनेपदी वृध्—बढ़ना

लट्

प्र० पु०	वर्धते	वर्धेते	वर्धन्ते
म० पु०	वर्धसे	वर्धेथे	वर्धध्वे
उ० पु०	वर्धे	वर्धावहे	वर्धामहे

लृट्

प्र० पु०	वर्धिष्यते	वर्धिष्येते	वर्धिष्यन्ते
म० पु०	वर्धिष्यसे	वर्धिष्येथे	वर्धिष्यध्वे
उ० पु०	वर्धिष्ये	वर्धिष्यावहे	वर्धिष्यामहे

लोट्

प्र० पु०	वर्धताम्	वर्धेताम्	वर्धन्ताम्
म० पु०	वर्धस्व	वर्धेथाम्	वर्धध्वम्
उ० पु०	वर्धै	वर्धावहै	वर्धामहै

लङ्

प्र० पु०	अवर्धत	अवर्धेताम्	अवर्धन्त
म० पु०	अवर्धथाः	अवर्धेथाम्	अवर्धध्वम्
उ० पु०	अवर्धे	अवर्धावहि	अवर्धामहि

आत्मनेपदी वृत्—वर्तना या होना

लट्

प्र० पु०	वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
म० पु०	वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
उ० पु०	वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
म० पु०	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यध्वे
उ० पु०	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे

लोट्

प्र० पु०	वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्
म० पु०	वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्
उ० पु०	वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै

लङ्

प्र० पु०	अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त
म० तु०	अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्
उ० पु०	अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्
म० पु०	वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्
उ० पु०	वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि

आत्मनेपदी मुद्—प्रसन्न होना

लट्

प्र० पु०	मोदते	मोदेते	मोदन्ते
म० पु०	मोदसे	मोदेथे	मोदध्वे
उ० पु०	मोदे	मोदावहे	मोदामहे

लृट्

प्र० पु०	मोदिष्यते	मोदिष्येते	मोदिष्यन्ते
म० पु०	मोदिष्यसे	मोदिष्येथे	मोदिष्यध्वे
उ० पु०	मोदिष्ये	मोदिष्यावहे	मोदिष्यामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	मोदताम्	मोदेताम्	मोदन्ताम्
म० पु०	मोदस्व	मोदेथाम्	मोदध्वम्
उ० पु०	मोदै	मोदावहै	मोदामहै

लङ्

प्र० पु०	अमोदत	अमोदेताम्	अमोदन्त
म० पु०	अमोदथाः	अमोदेथाम्	अमोदध्वम्
उ० पु०	अमोदे	अमोदावहि	अमोदामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	मोदेत	मोदेयाताम्	मोदेरन्
म० पु०	मोदेथाः	मोदेयाथाम्	मोदेध्वम्
उ० पु०	मोदेय	मोदेवहि	मोदेमहि

मुद् धातु के समान रुच्, शुभ, घुट्, क्षुभ्, तुभ् (हिंसा करना) आदि धातुओं के रूप चलते हैं।

उपयोगी और आवश्यक धातुओं के रूप लट्, लृट्, लोट्, लङ् और विधि-लिङ् इन पाँच ही लकारों में दिये गये हैं। परन्तु पाठ्यक्रम में दस लकारों के धातुरूप निर्धारित किये गये हैं। अतः कतिपय धातुओं के अवशेष पाँच लकारों के रूप तथा कुछ धातुओं के दस लकारों के रूप नीचे दिये जाते हैं।

श्रू—श्रवण

लिट्

प्र० पु०	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
म० पु०	शुश्रोथ	शुश्रुवथुः	शुश्रुव
उ० पु०	शुश्राव-शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम

लुट्

प्र० पु०	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतारः
म० पु०	श्रोतासि	श्रोतास्थः	श्रोतास्थ
उ० पु०	श्रोतास्मि	श्रोतास्वः	श्रोतास्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः
म० पु०	श्रूयाः	श्रूयास्तम्	श्रूयास्त
उ० पु०	श्रूयासम्	श्रूयास्व	श्रूयास्म

लुङ्

प्र० पु०	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
म० पु०	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उ० पु०	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म

लृङ्

प्र० पु०	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्
म० पु०	अश्रोष्यः	अश्रोष्यतम्	अश्रोष्यत
उ० पु०	अश्रोष्यम्	अश्रोष्याव	अश्रोष्याम

पा—पीना

लिट्

प्र० पु०	पपौ	पपतुः	पपुः
म० पु०	पपिथ-पपाथ	पपथुः	पप
उ० पु०	पपौ	पपिव	पपिम

लुट्

प्र० पु०	पाता	पातारौ	पातारः
म० पु०	पातासि	पातास्थः	पातास्थ
उ० पु०	पातास्मि	पातास्वः	पातास्मः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पेयात्	पेयास्ताम्	पेयासुः
म० पु०	पेयाः	पेयास्तम्	पेयास्त
उ० पु०	पेयासम्	पेयास्व	पेयास्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अपात्	अपाताम्	अपुः
म० पु०	अपाः	अपातम्	अपात
उ० पु०	अपाम्	अपाव	अपाम

लृङ्

प्र० पु०	अपास्यत्	अपास्यताम्	अपास्यन्
म० पु०	अपास्यः	अपास्यतम्	अपास्यत
उ० पु०	अपास्यम्	अपास्याव	अपास्याम

स्था—बैठना

लिट्

प्र० पु०	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
म० पु०	तस्थिथ-तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
उ० पु०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासुः
म० पु०	स्थेयाः	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
उ० पु०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्म

लुङ्

प्र० पु०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
म० पु०	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
उ० पु०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

लृङ्

प्र० पु०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
म० पु०	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
उ० पु०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृश्—देखना

लिट्

प्र० पु०	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
म० पु०	ददर्शिथ-दद्रष्ठ	ददृशथुः	ददृश
उ० पु०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

लुट्

प्र० पु०	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
म० पु०	द्रष्टासि	द्रष्टास्थः	द्रष्टास्थ
उ० पु०	द्रष्टास्मि	द्रष्टास्वः	द्रष्टास्मः

आशीर्लिङ

प्र० पु०	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
म० पु०	दृश्याः	दृश्यास्तम्	दृश्यास्त
उ० पु०	दृश्यासम्	दृश्यास्व	दृश्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अदर्शत्	अदर्शताम्	अदर्शन्
म० तु०	अदर्शः	अदर्शतम्	अदर्शत
उ० पु०	अदर्शम्	अदर्शाव	अदर्शाम

लृङ्

प्र० पु०	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
म० पु०	अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
उ० पु०	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

हन्—हिंसा करना

लिट्

प्र० पु०	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
म० पु०	जघनिथ-जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
उ० पु०	जघान-जघन	जघ्निव	जघ्निम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	हन्ता	हन्तारौ	हन्तारः
म० पु०	हन्तासि	हन्तास्थः	हन्तास्थ
उ० पु०	हन्तास्मि	हन्तास्वः	हन्तास्मः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वध्यात्	वध्यास्ताम्	वध्यासुः
म० पु०	वध्याः	वध्यास्तम्	वध्यास्त
उ० पु०	वध्यासम्	वध्यास्व	वध्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः
म० पु०	अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट
उ० पु०	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म

लृङ्

प्र० पु०	अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्
म० पु०	अहनिष्यः	अहनिष्यतम्	अहनिष्यत
उ० पु०	अहनिष्यम्	अहनिष्याव	अहनिष्याम

अस्—होना

अस् धातु के रूप लिट्, लुट्, आशीर्लिङ्, लुङ् और लृङ् में भू धातु के समान होते हैं; क्योंकि अस् के स्थान पर भू आदेश हो जाता है।

ब्रू—बोलना

लिट्—परस्मैपद

प्र० पु०	उवाच	ऊचतुः	ऊचुः
म० पु०	उवचिथ-उवक्थ	ऊचथुः	ऊच
उ० पु०	उवाच-उवच	ऊचिव	ऊचिम

आत्मनेपद

प्र० पु०	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
म० पु०	ऊचिषे	ऊचाथे	ऊचिध्वे
उ० पु०	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्—परस्मैपद

प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
म० पु०	वक्तासि	वक्तास्थः	वक्तास्थ
उ० पु०	वक्तास्मि	वक्तास्वः	वक्तास्मः

आत्मनेपद

प्र० पु०	वक्ता	वक्तारौ	वक्तारः
म० पु०	वक्तासे	वक्तासाथे	वक्ताध्वे
उ० पु०	वक्ताहे	वक्तास्वहे	वक्तास्महे

आशीर्लिङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः
म० पु०	उच्याः	उच्यास्तम्	उच्यास्त
उ० पु०	उच्यासम्	उच्यास्व	उच्यास्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
म० पु०	वक्षीष्ठाः	वक्षीयास्थाम्	वक्षीध्वम्
उ० पु०	वक्षीय	वक्षीवहि	वक्षीमहि

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अवोचत्	अवोचताम्	अवोचन्
म० पु०	अवोचः	अवोचतम्	अवोचत
उ० पु०	अवोचम्	अवोचाव	अवोचाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	अवोचत	अवोचेताम्	अवोचन्त
म० पु०	अवोचथाः	अवोचेथाम्	अवोचध्वम्
उ० पु०	अवोचि	अवोचावहि	अवोचामहि

लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्
म० पु०	अवक्ष्यः	अवक्ष्यतम्	अवक्ष्यत
उ० पु०	अवक्ष्यम्	अवक्ष्याव	अवक्ष्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपद

प्र० पु०	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
म० पु०	अवक्ष्यथाः	अवक्ष्येथाम्	अवक्ष्यध्वम्
उ० पु०	अवक्ष्ये	अवक्ष्यावहि	अवक्ष्यामहि

दा—देना

लिट

प्र० पु०	ददौ	ददतुः	ददुः
म० पु०	ददिथ–ददाथ	ददथुः	दद
उ० पु०	ददौ	ददिव	ददिम

लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातारः
म० पु०	दातासि	दातास्थः	दातास्थ
उ० पु०	दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	देयात्	देयास्ताम्	देयासुः
म० पु०	देयाः	देयास्तम्	देयास्त
उ० पु०	देयासम्	देयास्व	देयास्म

लुङ्

प्र० पु०	अदात्	अदाताम्	अदुः
म० पु०	अदाः	अदातम्	अदात
उ० पु०	अदाम्	अदाव	अदाम

लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
म० पु०	अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
उ० पु०	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हु—हवन करना

लिट्

प्र० पु०	जुहवाञ्चकार	जुहवाञ्चक्रतुः	जुहवाञ्चक्रुः
म० पु०	जुहवाञ्चकर्थ	जुहवाञ्चक्रथुः	जुहवाञ्चक्र
उ० पु०	जुहवाञ्चकार	जुहवाञ्चकृव	जुहवाञ्चकृम

लुट्

प्र० पु०	होता	होतारौ	होतारः
म० पु०	होतासि	होतास्थः	होतास्थ
उ० पु०	होतास्मि	होतास्वः	होतास्मः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	हूयात्	हूयास्ताम्	हूयासुः
म० पु०	हूयाः	हूयास्तम्	हूयास्त
उ० पु०	हूयासम्	हूयास्व	हूयास्म

लुङ्

प्र० पु०	अहौषीत्	अहौष्टाम्	अहौषुः
म० पु०	अहौषीः	अहौष्टम्	अहौष्ट
उ० पु०	अहौषम्	अहौष्व	अहौष्म

लृङ्

प्र० पु०	अहष्यत्	अहोष्यताम्	अहोष्यन्
म० पु०	अहोष्यः	अहोष्यतम्	अहोष्यत
उ० पु०	अहोष्यम्	अहोष्याव	अहोष्याम

कृञ्—करना

लिट्

प्र० पु०	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
म० पु०	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उ० पु०	चकार-चकर	चकृव	चकृम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
म० पु०	कर्त्तासि	कर्त्तास्थः	कर्त्तास्थ
उ० पु०	कर्त्तास्मि	कर्त्तास्वः	कर्त्तास्मः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
म० पु०	क्रियाः	क्रियास्तम्	क्रियास्त
उ० पु०	क्रियासम्	क्रियास्व	क्रियास्म

लुङ्

प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
म० पु०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उ० पु०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म

लृङ्

प्र० पु०	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
म० पु०	अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	अकरिष्यत
उ० पु०	अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

एध—बढ़ना

लट्

प्र० उ०	एधते	एधेते	एधन्ते
म० पु०	एधसे	एधेथे	एधध्वे
उ० पु०	एधे	एधावहे	एधामहे

लिट्

प्र० पु०	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चक्राते	एधाञ्चक्रिरे
म० पु०	एधाञ्चकृषे	एधाञ्चक्राथे	एधाञ्चकृढ्वे
उ० पु०	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चकृवहे	एधाञ्चकृमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	एधिता	एधितारौ	एधितारः
म० पु०	एधितासे	एधितासाथे	एधिताध्वे
उ० पु०	एधिताहे	एधितास्वहे	एधितास्महे

लृट्

प्र० पु०	एधिष्यते	एधिष्येते	एधिष्यन्ते
म० पु०	एधिष्यसे	एधिष्येथे	एधिष्यध्वे
उ० पु०	एधिष्ये	एधिष्यावहे	एधिष्यामहे

लोट्

प्र० पु०	एधताम्	एधेताम्	एधन्ताम्
म० पु०	एधस्व	एधेथाम्	एधध्वम्
उ० पु०	एधै	एधावहै	एधामहै

लङ्

प्र० पु०	ऐधत	ऐधेताम्	ऐधन्त
म० पु०	ऐधथाः	ऐधेथाम्	ऐधध्वम्
उ० पु०	ऐधे	ऐधावहि	ऐधामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	एधेत	एधेयाताम्	एधेरन्
म० पु०	एधेथाः	एधेयाथाम्	एधेध्वम्
उ० पु०	एधेय	एधेवहि	एधेमहि

आशिर्लिङ्

प्र० पु०	एधिषीष्ट	एधिषीयास्ताम्	एधिषीरन्
म० पु०	एधिषीष्ठाः	एधिषीयास्ताम्	एधिषीध्वम्
उ० पु०	एधिषीय	एधिषीवहि	एधिषीमहि

लुङ्

प्र० पु०	एधिष्ट	ऐधिषाताम्	ऐधिषत
म० पु०	ऐधिष्ठाः	ऐधिषाथाम्	ऐधिढ्वम्
उ० पु०	ऐधिषि	ऐधिष्वहि	ऐधिष्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	ऐधिष्यत	ऐधिष्येताम्	ऐधिष्यन्त
म० पु०	ऐधिष्यथाः	ऐधिष्येथाम्	ऐधिष्यध्वम्
उ० पु०	ऐधिष्ये	ऐधिष्यावहि	ऐधिष्यामहि

पठ—पढ़ना।

प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
म० पु०	पठसि	पठथः	पठथ
उ० पु०	पठामि	पठावः	पठामः

लिट्

प्र० पु०	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
म० पु०	पेठिथ	पेठथुः	पेठ
उ० पु०	पपाठ-पपठ	पेठिव	पेठिम

लुट्

प्र० पु०	पठिता	पठितारौ	पठितारः
म० पु०	पठितासि	पठितास्थः	पठितास्थ
उ० पु०	पठितास्मि	पठितास्वः	पठितास्मः

लृट्

प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
उ० पु०	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	पठतु-पठतात्	पठताम्	पठन्तु
म० पु०	पठ-पठतात्	पठतम्	पठत
उ० पु०	पठानि	पठाव	पठाम

लङ्

प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासुः
म० पु०	पठ्याः	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
उ० पु०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषुः
म० पु०	अपाठीः	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

लृङ्

प्र० पु०	अपठिष्यत्	अपठिष्यताम्	अपठिष्यन्
म० पु०	अपठिष्यः	अपठिष्यतम्	अपठिष्यत
उ० पु०	अपठिष्यम्	अपठिष्याव	अपठिष्याम

अद् भक्षणे—खाना

लट्

प्र० पु०	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म० पु०	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ० पु०	अद्मि	अद्वः	अद्मः

लिट्

प्र० पु०	जघास	जक्षतुः	जक्षुः
म० पु०	जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष
उ० पु०	जघास—जघस	जक्षिव	जक्षिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
म० पु०	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
उ० पु०	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
म० पु०	अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ
उ० पु०	अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः

लोट्

प्र० पु०	अत्तु—अत्तात्	अत्ताम्	अदन्तु
म० पु०	अद्धि—अत्तात्	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अदानि	अदाव	अदाम

लङ्

प्र० पु०	आदत्	आत्ताम्	आदन्
म० पु०	आदः	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम्	आद्व	आद्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म० पु०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लुङ्

प्र० पु०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्
म० पु०	अघसः	अघसतम्	अघसत
उ० पु०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

लृङ्

प्र० पु०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
म० पु०	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
उ० पु०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिव्–क्रीडा आदि

लट्

प्र० पु०	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति
म० पु०	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ
उ० पु०	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः

लिट्

प्र० पु०	दिदेव	दिदिवतुः	दिदिवुः
म० पु०	दिदेविथ	दिदिवथुः	दिदिव
उ० पु०	दिदेव	दिदिविव	दिदिविम

लुट्

प्र० पु०	देविता	देवितारौ	देवितारः
म० पु०	देवितासि	देवितास्थः	देवितास्थ
उ० पु०	देवितास्मि	देवितास्वः	देवितास्मः

लृट्

प्र० पु०	देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति
म० पु०	देविष्यसि	देविष्यथः	देविष्यथ
उ० पु०	देविष्यामि	देविष्यावः	देविष्यामः

लोट्

प्र० पु०	दीव्यतु-दीव्यतात्	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
म० पु०	दीव्य-दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
उ० पु०	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

लङ्

प्र० पु०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उ० पु०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
म० पु०	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
उ० पु०	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासुः
म० पु०	दीव्याः	दीव्यास्तम्	दीव्यास्त
उ० पु०	दीव्यासम्	दीव्यास्व	दीव्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषुः
म० पु०	अदेवीः	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
उ० पु०	अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म

लृङ्

प्र० पु०	अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्
म० पु०	अदेविष्यः	अदेविष्यतम्	अदेविष्यत
उ० पु०	अदेविष्यम्	अदेविष्याव	अदेविष्याम

बुध्—जानना (आत्मनेपदी)

लट्

प्र० पु०	बुध्यते	बुध्येते	बुध्यन्ते
म० पु०	बुध्यसे	बुध्येथे	बुध्यध्वे
उ० पु०	बुध्ये	बुध्यावहे	बुध्यामहे

लिट्

प्र० पु०	बुबुधे	बुबुधाते	बबुधिरे
म० पु०	बुबुधिषे	बुबुधाथे	बुबुधिध्वे
उ० पु०	बुबुधे	बुबुधिवहे	बुबुधिमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	बोद्धा	बोद्धारौ	बोद्धारः
म० पु०	बोद्धासे	बोद्धासाथे	बोद्धाध्वे
उ० पु०	बोद्धाहे	बोद्धास्वहे	बोद्धास्महे

लृट्

प्र० पु०	भोत्स्यते	भोत्स्येते	भोत्स्यन्ते
म० पु०	भोत्स्यसे	भोत्स्येथे	भोत्स्यध्वे
उ० पु०	भोत्स्ये	भोत्स्यावहे	भोत्स्यामहे

लोट्

प्र० पु०	बुध्यताम्	बुध्येताम्	बुध्यन्ताम्
म० पु०	बुध्यस्व	बुध्येथाम्	बुध्यध्वम्
उ० पु०	बुध्यै	बुध्यावहै	बुध्यामहै

लङ्

प्र० पु०	अबुध्यत	अबुध्येताम्	अबुध्यन्त
म० पु०	अबुध्यथाः	अबुध्येथाम्	अबुध्यध्वम्
उ० पु०	अबुध्ये	अबुध्यावहि	अबुध्यामहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	बुध्येत	बुध्येयाताम्	बुध्येरन्
म० पु०	बुध्येथाः	बुध्येयाथाम्	बुध्येध्वम्
उ० पु०	बुध्येय	बुध्येवहि	बुध्येमहि

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भुत्सीष्ट	भुत्सीयास्ताम्	भुत्सीरन्
म० पु०	भुत्सीष्ठाः	भुत्सीयास्थाम्	भुत्सीध्वम्
उ० पु०	भुत्सीय	भुत्सीवहि	भुत्सीमहि

लुङ्

प्र० पु०	अबोधि-अबुद्ध	अभुत्साताम्	अभुत्सत
म० पु०	अबुद्धाः	अभुत्साथाम्	अभुद्ध्वम्
उ० पु०	अभुत्सि	अभुत्स्वहि	अभुत्स्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अभोत्स्यत	अभोत्स्येताम्	अभोत्स्यन्त
म० पु०	अभोत्स्यथाः	अभोत्स्येथाम्	अभोत्स्यध्वम्
उ० पु०	अभोत्स्ये	अभोत्स्यावहि	अभोत्स्यामहि

षुञ्—नहलाना, रस निकालना

लट्

प्र० पु०	सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति
म० पु०	सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ
उ० पु०	सुनोमि	सुनुवः-सुन्वः	सुनुमः-सुन्मः

लिट्

प्र० पु०	सुषाव	सुषुवतुः	सुषुवुः
म० पु०	सुषविथ-सुषोथ	सुषुवथुः	सुषुव
उ० पु०	सुषाव-सुषव	सुषुविव	सुषुविम

लुट्

प्र० पु०	सोता	सोतारौ	सोतारः
म० पु०	सोतासि	सोतास्थः	सोतास्थ
उ० पु०	सोतास्मि	सोतास्वः	सोतास्मः

लृट्

प्र० पु०	सोष्यति	सोष्यतः	सोष्यन्ति
म० पु०	सोष्यसि	सोष्यथः	सोष्यथ
उ० पु०	सोष्यामि	सोष्यावः	सोष्यामः

लोट्

प्र० पु०	सुनोतु-सुनुतात्	सुनुताम्	सुन्वन्तु
म० पु०	सुनु-सुनुतात्	सुनुतम्	सुनुत
उ० पु०	सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्
म० पु०	असुनोः	असुनुतम्	असुनुत
उ० पु०	असुनवम्	असुनुव-असुन्व	असुनुम-असुन्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः
म० पु०	सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात
उ० पु०	सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	सूयात्	सूयास्ताम्	सूयासुः
म० पु०	सूयाः	सूयास्तम्	सूयास्त
उ० पु०	सूयासम्	सूयास्व	सूयास्म

लुङ्

प्र० पु०	असावीत्	असाविष्टाम्	असाविषुः
म० पु०	असावीः	असाविष्टम्	असाविष्ट
उ० पु०	असाविषम्	असाविष्व	असाविष्म

लङ्

प्र० पु०	असोष्यत	असोष्येताम्	असोष्यन्त
म० पु०	असोष्यथाः	असोष्येथाम्	असोष्यध्वम्
उ० पु०	असोष्ये	असोष्यावहि	असोष्यामहि

तुद्—कष्ट देना

लट्

प्र० पु०	तुदति	तुदतः	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथः	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदावः	तुदामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः
म० पु०	तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद
उ० पु०	तुतोद	तुतुदिव	तुतुदिम

लुट्

प्र० पु०	तोत्ता	तोत्तारौ	तोत्तारः
म० पु०	तोत्तासि	तोत्तास्थः	तोत्तास्थ
उ० पु०	तोत्तास्मि	तोत्तास्वः	तोत्तास्मः

लृट्

प्र० पु०	तोत्स्यति	तोत्स्यतः	तोत्स्यन्ति
म० पु०	तोत्स्यसि	तोत्स्यथः	तोत्स्यथ
उ० पु०	तोत्स्यामि	तोत्स्यावः	तोत्स्यामः

लोट्

प्र० पु०	तुदतु-तुदतात्	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद-तुदतात्	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

लङ्

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
म० पु०	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	तुद्यात्	तुद्यास्ताम्	तुद्यासुः
म० पु०	तुद्याः	तुद्यास्तम्	तुद्यास्त
उ० पु०	तुद्यासम्	तुद्यास्व	तुद्यास्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः
म० पु०	अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त
उ० पु०	अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म

लृङ्

प्र० पु०	अतोत्स्यत्	अतोत्स्यताम्	अतोत्स्यन्
म० पु०	अतोत्स्यः	अतोत्स्यतम्	अतोत्स्यत
उ० पु०	अतोत्स्यम्	अतोत्स्याव	अतोत्स्याम

रुधिर्—आवरण

लट्

प्र० पु०	रुणद्धि	रुन्द्धः	रुन्धन्ति
म० पु०	रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध
उ० पु०	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

लिट्

प्र० पु०	रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः
म० पु०	रुरोधिथ	रुरुधथुः	रुरुध
उ० पु०	रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम

लुट्

प्र० पु०	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
म० पु०	रोद्धासि	रोद्धास्थः	रोद्धास्थ
उ० पु०	रोद्धास्मि	रोद्धास्वः	रोद्धास्मः

लृट्

प्र० पु०	रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति
म० पु०	रोत्स्यसि	रोत्स्यथः	रोत्स्यथ
उ० पु०	रोत्स्यामि	रोत्स्यावः	रोत्स्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	रुणद्धु–रुन्द्धात्	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु
म० पु०	रुन्द्धि–रुन्द्धात्	रुन्द्धम्	रुन्द्ध
उ० पु०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

लङ्

प्र० पु०	अरुणत्–द्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्
म० पु०	अरुणः–अरुणत्	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध
उ० पु०	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
म० पु०	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ० पु०	रुध्याम्	रुध्याव	रुध्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः
म० पु०	रुध्याः	रुध्यास्तम्	रुध्यास्त
उ० पु०	रुध्यासम्	रुध्यास्व	रुध्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अरुधत्	अरुधताम्	अरुधन्
म० पु०	अरुधः	अरुधतम्	अरुधत
उ० पु०	अरुधम्	अरुधाव	अरुधाम

लृङ्

प्र० पु०	अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	अरोत्स्यन्
म० पु०	अरोत्स्यः	अरोत्स्यतम्	अरोत्स्यत
उ० पु०	अरोत्स्यम्	अरोत्स्याव	अरोत्स्याम

ज्ञा–अवबोधन–जानना

लट्

प्र० पु०	जानाति	जानीतः	जानन्ति
म० पु०	जानासि	जानीथः	जानीथ
उ० पु०	जानामि	जानीवः	जानीमः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
म० पु०	जज्ञिथ–जज्ञाथं	जज्ञथुः	जज्ञ
उ० पु०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

लुट्

प्र० पु०	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः
म० पु०	ज्ञातासि	ज्ञातास्थः	ज्ञातास्थ
उ० पु०	ज्ञातास्मि	ज्ञातास्वः	ज्ञातास्मः

लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यति	ज्ञास्यतः	ज्ञास्यन्ति
म० पु०	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथः	ज्ञास्यथः
उ० पु०	ज्ञास्यामि	ज्ञास्यावः	ज्ञास्यामः

लोट्

प्र० पु०	जानातु–जानीतात्	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि–जानीतात्	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

लङ्

प्र० पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म० पु०	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म० पु०	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	ज्ञायात्	ज्ञायास्ताम्	ज्ञायासुः
म० पु०	ज्ञायाः	ज्ञायास्तम्	ज्ञायास्त
उ० पु०	ज्ञायासम्	ज्ञायास्व	ज्ञायास्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
म० पु०	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट
उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म

लृङ्

प्र० पु०	अज्ञास्यत्	अज्ञास्यताम्	अज्ञास्यन्
म० पु०	अज्ञास्यः	अज्ञास्यतम्	अज्ञास्यत
उ० पु०	अज्ञास्यम्	अज्ञास्याव	अज्ञास्याम

ग्रह—उपादान—ग्रहण करना

लट्

प्र० पु०	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
म० पु०	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
उ० पु०	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

लिट्

प्र० पु०	जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
म० पु०	जग्रहिथ	जगृहथुः	जगृह
उ० पु०	जग्राह-जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

लुट्

प्र० पु०	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतारः
म० पु०	ग्रहीतासि	ग्रहीतास्थः	ग्रहीतास्थ
उ० पु०	ग्रहीतास्मि	ग्रहीतास्वः	ग्रहीतास्मः

लृट्

प्र० पु०	ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यतः	ग्रहीष्यन्ति
म० पु०	ग्रहीष्यसि	ग्रहीष्यथः	ग्रहीष्यथ
उ० पु०	ग्रहीष्यामि	ग्रहीष्यावः	ग्रहीष्यामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	गृह्णातु-गृह्णीतात्	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म० पु०	गृहाण-गृह्णीतात्	गृह्णीतम्	गृह्णीत
उ० पु०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

लङ्

प्र० पु०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
म० पु०	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उ० पु०	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः
म० पु०	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उ० पु०	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासुः
म० पु०	गृह्याः	गृह्यास्तम्	गृह्यास्त
उ० पु०	गृह्यासम्	गृह्यास्व	गृह्यास्म

लुङ्

प्र० पु०	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषुः
म० पु०	अग्रहीः	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट
उ० पु०	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म

लृङ्

प्र० पु०	अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	अग्रहीष्यन्
म० पु०	अग्रहीष्यः	अग्रहीष्यतम्	अग्रहीष्यत
उ० पु०	अग्रहीष्यम्	अग्रहीष्याव	अग्रहीष्याम

कथ—कहना

लट्

प्र० पु०	कथयति	कथयतः	कथयन्ति
म० पु०	कथयसि	कथयथः	कथयथ
उ० पु०	कथयामि	कथयावः	कथयामः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	कथयामास	कथयामासतुः	कथयामासुः
म० पु०	कथयामासिथ	कथयामासथुः	कथयामास
उ० पु०	कथयामास	कथयामासिव	कथयामासिम

लुट्

प्र० पु०	कथयिता	कथयितारौ	कथयितारः
म० पु०	कथयितासि	कथयितास्थः	कथयितास्थ
उ० पु०	कथयितास्मि	कथयितास्वः	कथयितास्मः

लृट्

प्र० पु०	कथयिष्यति	कथयिष्यतः	कथयिष्यन्ति
म० पु०	कथयिष्यसि	कथयिष्यथः	कथयिष्यथ
उ० पु०	कथयिष्यामि	कथयिष्यावः	कथयिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	कथयतु-कथयतात्	कथयताम्	कथयन्तु
म० पु०	कथय-कथयतात्	कथयतम्	कथयत
उ० पु०	कथयानि	कथयाव	कथयाम

लङ्

प्र० पु०	अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्
म० पु०	अकथयः	अकथयतम्	अकथयत
उ० पु०	अकथयम्	अकथयाव	अकथयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कथयेत्	कथयेताम्	कथयेयुः
म० पु०	कथयेः	कथयेतम्	कथयेत
उ० पु०	कथयेयम्	कथयेव	कथयेम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	कथ्यात्	कथ्यास्ताम्	कथ्यासुः
म० पु०	कथ्याः	कथ्यास्तम्	कथ्यास्त
उ० पु०	कथ्यासम्	कथ्यास्व	कथ्यास्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अचकथत्	अचकथताम्	अचकथन्
म० पु०	अचकथः	अचकथतम्	अचकथत
उ० पु०	अचकथम्	अचकथाव	अचकथाम

लृङ्

प्र० पु०	अकथयिष्यत्	अकथयिष्यताम्	अकथयिष्यन्
म० पु०	अकथयिष्यः	अकथयिष्यतम्	अकथयिष्यत
उ० पु०	अकथयिष्यम्	अकथयिष्याव	अकथयिष्याम

अधि + इ—अध्ययन

लट्

प्र० पु०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
म० पु०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
उ० पु०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

लिट्

प्र० पु०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
म० पु०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
उ० पु०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

लुट्

प्र० पु०	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतारः
म० पु०	अध्येतासे	अध्येतासाथे	अध्येताध्वे
उ० पु०	अध्येताहे	अध्येतास्वहे	अध्येतास्महे

लृट्

प्र० पु०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
म० पु०	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
उ० पु०	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

लोट्

प्र० पु०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
म० पु०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उ० पु०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० पु०	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उ० पु०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
म० पु०	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उ० पु०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
म० पु०	अध्येषीष्ठाः	अध्येषीयास्थाम्	अध्येषीढ्वम्
उ० पु०	अध्येषीय	अध्येषीवहि	अध्येषीमहि

लुङ्

प्र० पु०	अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
म० पु०	अध्यगीष्ठाः	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्
उ० पु०	अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि

लृङ्

प्र० पु०	अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
म० पु०	अध्यगीष्यथाः	अध्यगीष्येथाम्	अध्यगीष्यध्वम्
उ० पु०	अध्यगीष्ये	अध्यगीष्यावहि	अध्यगीष्यामहि

शीङ्—शयन

लट्

प्र० पु०	शेते	शयाते	शेरते
म० पु०	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उ० पु०	शेये	शेवहे	शेमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिट्

प्र० पु०	शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे
म० पु०	शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिद्वे, शिश्यिध्वे
उ० पु०	शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे

लुट्

प्र० पु०	शयिता	शयितारौ	शयितारः
म० पु०	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उ० पु०	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

लृट्

प्र० पु०	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
म० पु०	शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे
उ० पु०	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे

लोट्

प्र० पु०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
म० पु०	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उ० पु०	शयै	शयावहै	शयामहै

लङ्

प्र० पु०	अशेत	अशयाताम्	अशरेत
म० पु०	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उ० पु०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

विधिलिङ्

प्र० पु०	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म० पु०	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उ० पु०	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
म० पु०	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीढ्वम्
उ० पु०	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुङ्

प्र० पु०	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म० पु०	अशयिष्ठाः	अशयिषाथाम्	अशयिढ्वम्
उ० पु०	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्यहि

लृङ्

प्र० पु०	अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
म० पु०	अशयिष्यथाः	अशयिष्येथाम्	अशयिष्यध्वम्
उ० पु०	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यामहि

परस्मैपदी श्रु—सुनना

आदि के पाँच लकार

लट्

प्र० पु०	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
म० पु०	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उ० पु०	शृणोमि	शृणुवः—शृण्वः	शृणुमः—शृण्मः

लृट्

प्र० पु०	श्रोष्यति	श्रोष्यतः	श्रोष्यन्ति
म० पु०	श्रोष्यसि	श्रोष्यथः	श्रोष्यथ
उ० पु०	श्रोष्यामि	श्रोष्यावः	श्रोष्यामः

लोट्

प्र० पु०	शृणोतु-शृणुतात्	शृणुताम्	शृण्वन्तु
म० पु०	शृणु-शृणुतात्	शृणुतम्	शृणुत
उ० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

लङ्

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
म० पु०	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणवम्	अशृणुव-अशृण्व	अशृणुम-अशृण्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासुः
म० पु०	श्रूयाः	श्रूयास्तम्	श्रूयास्त
उ० पु०	श्रूयासम्	श्रूयास्व	श्रूयास्म

लुङ्

प्र० पु०	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषुः
म० पु०	अश्रौषीः	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उ० पु०	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म

परस्मैपदी नी—ले जाना

लट्

प्र० पु०	नयति	नयतः	नयन्ति
म० पु०	नयसि	नयथः	नयथ
उ० पु०	नयामि	नयावः	नयामः

लृट्

प्र० पु०	नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति
म० पु०	नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ
उ० पु०	नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः

लोट्

प्र० पु०	नयतु-नयतात्	नयताम्	नयन्तु
म० पु०	नय-नयतात्	नयतम्	नयत
उ० पु०	नयानि	नयाव	नयाम

लङ्

प्र० पु०	अनयत्	अनयताम्	अनयन्
म० पु०	अनयः	अनयतम्	अनयत
उ० पु०	अनयम्	अनयाव	अनयाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	नयेत्	नयेताम्	नयेयुः
म० पु०	नयेः	नयेतम्	नयेत
उ० पु०	नयेयम्	नयेव	नयेम

लुङ्

प्र० पु०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषुः
म० पु०	अनैषीः	अनैष्टम्	अनैष्ट
उ० पु०	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म

द्वितीय गण—अदादि

इस गण में विशेषता यह है कि इस गण की धातुओं और विभक्ति प्रत्ययों के बीच कोई विकरण नहीं आता। यहाँ आवश्यक क्रियाओं के रूप दिये जाते हैं।

परस्मैपदी अस्—होना

लट्

प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति
म० पु०	असि	स्थः	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः

लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

लोट्

प्र० पु०	अस्तु-स्तात्	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि-स्तात्	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसीः	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्युः
म० पु०	स्याः	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

परस्मैपदी हन्—हिंसा करना

लट्

प्र० पु०	हन्ति	हतः	घ्नन्ति
म० पु०	हंसि	हथः	हथ
उ० पु०	हन्मि	हन्वः	हन्मः

लृट्

प्र० पु०	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
म० पु०	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उ० पु०	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

लोट्

प्र० पु०	हन्तु-हतात्	हताम्	घ्नन्तु
म० पु०	जहि-हतात्	हतम्	हत
उ० पु०	हनानि	हनाव	हनाम

लङ्

प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहन्व	अहन्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म० पु०	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ० पु०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्मैपदी विद्—जानना

लट्

प्र० पु०	वेत्ति	वित्तः	विदन्ति
म० पु०	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
उ० पु०	वेद्मि	विद्वः	विद्मः

लोट्

प्र० पु०	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
म० पु०	विद्धि	वित्तम्	वित्त
उ० पु०	वेदानि	वेदाव	वेदाम

लङ्

प्र० पु०	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः
म० पु०	अवेः-अवेत्	अवित्तम्	अवित्त
उ० पु०	अवेदम्	अविद्व	अविद्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
म० पु०	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
उ० पु०	विद्याम	विद्याव	विद्याम

परस्मैपदी रुद्—रोना

लट्

प्र० पु०	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
म० पु०	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
उ० पु०	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

लोट्

प्र० पु०	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु
म० पु०	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उ० पु०	रोदानि	रोदाव	रोदाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अरोदीत्-अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
म० पु०	अरोदीः-अरोदः	अरुदितम्	अरुदित
उ० पु०	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
म० पु०	रुद्याः	रुद्याताम्	रुद्यात्
उ० पु०	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

परस्मैपदी ब्रू—बोलना

लट्

प्र० पु०	ब्रवीति	ब्रूतः	ब्रुवन्ति
म० पु०	ब्रवीषि	ब्रूथः	ब्रूथ
उ० पु०	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

लोट्

प्र० पु०	ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
म० पु०	ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत
उ० पु०	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

लङ्

प्र० पु०	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्
म० पु०	अब्रवी	अब्रूतम्	अब्रूत
उ० पु०	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम

विधिलिङ्

प्र० पु०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयुः
म० पु०	ब्रूयाः	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उ० पु०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुहोत्यादि गणीय परस्मैपदी दा—देना

लट्

प्र० पु०	ददाति	दत्तः	ददाति
म० पु०	ददासि	दत्थः	दत्थ
उ० पु०	ददामि	दद्वः	दद्मः

लृट्

प्र० पु०	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म० पु०	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ० पु०	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

लोट्

प्र० पु०	ददातु-दत्तात्	दत्ताम्	ददतुः
म० पु०	देहि-दत्तात्	दत्तम्	दत्त
उ० पु०	ददानि	ददाव	ददाम

लङ्

प्र० पु०	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म० पु०	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ० पु०	अददाम्	अदद्व	अदद्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म० पु०	दद्याः	दद्याताम्	दद्यात
उ० पु०	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

लिट्

प्र० पु०	ददौ	ददतुः	ददुः
म० पु०	ददिथ-ददाथ	ददथुः	दद
उ० पु०	ददौ	ददिव	ददिम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुदादि गणीय प्रच्छ—पूछना

लट्

प्र० पु०	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
म० पु०	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
उ० पु०	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

लृट्

प्र० पु०	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
म० पु०	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
उ० पु०	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः

लोट्

प्र० पु०	पृच्छतु-पृच्छतात्	पृच्छेताम्	पृच्छन्तु
म० पु०	पृच्छ-पृच्छतात्	पृच्छतम्	पृच्छत
उ० पु०	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

लङ्

प्र० पु०	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छत्
म० पु०	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उ० पु०	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
म० पु०	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
उ० पु०	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

तनादि गणीय—परस्मैपदी कृ—करना

लट्

प्र० पु०	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथः	कुरुथः
उ० पु०	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट्

प्र० पु०	करोतु-कुरुतात्	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरु-कुरुतात्	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

लङ्

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
म० पु०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

लृट्

प्र० पु०	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति
म० पु०	करिष्यसि	करिष्यथः	करिष्यथ
उ० पु०	करिष्यामि	करिष्यावः	करिष्यामः

लुङ्

प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
म० पु०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उ० पु०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म

क्रयादि गणीय परस्मैपदी क्री—खरीदना

लट्

प्र० पु०	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
म० पु०	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उ० पु०	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृट्

प्र० पु०	क्रेष्यति	क्रेष्यतः	क्रेष्यन्ति
म० पु०	क्रेष्यसि	क्रेष्यथः	क्रेष्यथ
उ० पु०	क्रेष्यामि	क्रेष्यावः	क्रेष्यामः

लोट्

प्र० पु०	क्रीणातु-क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
म० पु०	क्रीणीहि-क्रीणीतात्	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उ० पु०	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

लङ्

प्र० पु०	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
म० पु०	अक्रीणीः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उ० पु०	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
म० पु०	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उ० पु०	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

परस्मैपदी ग्रह—लेना

लट्

प्र० पु०	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
म० पु०	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
उ० पु०	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

लोट

प्र० पु०	गृह्णातु-गृह्णीतात्	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म० पु०	गृहाण-गृह्णीतात्	गृह्णीतम्	गृह्णीत
उ० पु०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
म० पु०	अगृह्ण	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उ० पु०	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः
म० पु०	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उ० पु०	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

चुरादि गणीय–परस्मैपदी कथ–कहना

लट्

प्र० पु०	कथयति	कथयतः	कथयन्ति
म० पु०	कथयसि	कथयथः	कथयथ
उ० पु०	कथयामि	कथयावः	कथयामः

लोट्

प्र० पु०	कथयतु-कथयतात्	कथयताम्	कथयन्तु
म० पु०	कथय-कथयतात्	कथयतम्	कथयत
उ० पु०	कथयानि	कथयाव	कथयाम

लङ्

प्र० पु०	अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्
म० पु०	अकथयः	अकथयतम्	अकथयत
उ० पु०	अकथयम्	अकथयाव	अकथयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कथयेत्	कथयेताम्	कथयेयुः
म० पु०	कथयेः	कथयेतम्	कथयेत
उ० पु०	कथयेयम्	कथयेव	कथयेम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिजन्त—प्रेरणार्थक क्रिया

धातु से जब प्रेरणा का अर्थ प्रकट करना होता है तो णिच् प्रत्यय लगाया जाता है। सादी धातु में जो कर्त्ता रहता है, वह प्रेरणार्थक में स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे से कार्य कराता है। जैसे पढ़ना से पढ़वाना, बनाना से बनवाना आदि। णिजन्त क्रियाओं के रूप चुरादि गण की धातुओं के समान चलते हैं।

णिच् में इ का अय् के रूप में परिवर्तन हो जाता है। अजन्त धातु से णिच् होने पर अन्त्यस्थ इ, उ, ऋ इत्यादि वर्णों के स्थान पर आय्, आव् आर् आदि का आदेश होता है। धातु की उपधा में अकार अथवा ह्रस्व इ, उ, ऋ वर्ण रहे तो उसके स्थान पर क्रमशः ए, ओ और आर का श्रवण होता है।

यथा	सादा	प्रेरणार्थक
१ बुध्	बोधति	बोधयति
२ अद्	अत्ति	आदयति
३ हु	जुहोति	हावयति
४ दिव्	दिव्यति	देवयति
५ सु	सुनोति	सावयति
६ तुद्	तुददि	तोदयति
७ रुध्	रुणद्धि	रोधयति
८ तन्	तनोति	तानयति
९ अश्	अश्नाति	आशयति
१० भू	भवति	भावयति
११ पा	पिबति	पाययति
१२ गम्	गच्छति	गमयति
१३ श्रु	शृणोति	श्रावयति
१४ पच्	पचति	पाचयति
१५ कृ	करोति	कारयति
१६ क्री	क्रीणाति	क्रापयति
१७ दा	ददति	दापयति
१८ हन्	हन्ति	घातयति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्नन्त क्रिया

किसी कार्य के करने की इच्छा का अर्थ बतलाने के लिए धातु से सन् प्रत्यय जोड़ा जाता है। इसके रूप दसों लकारों में चलते हैं। यथा कर्तुमिच्छति चिकीर्षति। आवश्यक सन्नन्त रूप नीचे दिये जाते हैं।

धातु	सन्नन्तवर्तमान	भूत	भविष्य
भू	बुभूषति	अबुभूषत्	बुभूविष्यति
पठ्	पिपठिषति	अपिपठिषत्	पिपठिषिष्यति
पा	पिपासति	अपिपासत्	पिपासिष्यति
गम्	जिगमिषति	अजिगमिषत्	जिगमिषिष्यति
जि	जिगीषति	अजिगीषत्	जिगीषिष्यति
चि	चिचीषति	अचिचीषत्	चिचीषिष्यति
रुच्	रुरुचिषते	अरुरुचिषत्	रुरुचिषिष्यते
हृ	जिहीर्षति	अजिहीर्षत्	जिहीर्षिष्यति
लभ्	लिप्सते	अलिप्सत्	लिप्सिष्यते
अद्	जिघत्सति	अजिघत्सीत्	जिघत्सिष्यति
शी	शिशयिषते	अशिशयिषत्	शिशयिष्यते
विद्	विविदिषति	अविविदिषत्	विविदिषिष्यति
हन्	जिघांसति	अजिघांसीत्	जिघांसिष्यति
दा	दित्सति–ते	अदित्सत्-त	दित्सिष्यति-ते
दिव्	दिधूषति	अदुधूषत्	दुधूसिष्यति
भुज्	बुभुक्षति	अबुभुक्षत्	बुभुक्षिष्यति
कृ	चिकीर्षति	अचिकीर्षत्	चिकीर्षिष्यति
ग्रह	जिघृक्षति	अजिघृक्षत्	जिघृक्षिष्यति
ज्ञप्	ज्ञीप्सति	अज्ञीप्सत्	ज्ञीप्सिष्यति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यङन्त क्रियाएँ

व्यञ्जन से आरम्भ होनेवाली किसी भी एकाच् धातु के अनन्तर क्रिया को बार-बार करने अथवा क्रिया को खूब करने का बोध कराने के लिए यङ् प्रत्यय लगाया जाता है। यङन्त क्रियाएँ लौकिक संस्कृत में आत्मनेपदी होती हैं।

धातु	वर्तमान	भूत	भविष्य
भू	बोभूयते	अबोभूयिष्ट	बोभूयिष्यते
पा	पेपीयते	अपेपीयिष्ट	पेपीयिष्यते
स्मृ	सास्मर्यते	असास्मर्यिष्ट	सास्मर्यिष्यते
व्रज्	वाव्रज्यते	अवाव्रजिष्ट	वाव्रजिष्यते
वृत्	वरीवृत्यते	अवरीवृतिष्ट	वरीवृतिष्यते
यज्	यायज्यते	अयायजिष्ट	यायजिष्यते
हन्	जेघ्नीयते	अजेघ्नीयिष्ट	जेघ्नीयिष्यते
शी	शाशय्यते	अशाशयिष्ट	शाशयिष्यते
शक्	शाशक्यते	अशाशकिष्ट	शाशकिष्यते
प्रच्छ्	पाप्रच्छ्यते	अपाप्रच्छिष्ट	पाप्रच्छिष्यते
भुज्	बोभुज्यते	अबोभुजिष्ट	बोभुजिष्यते
क्रु	चेक्रीयते	अचेक्रीयिष्ट	चेक्रीयिष्यते

नाम धातु

जब किसी सुबन्त—संज्ञा के अनन्तर प्रत्यय जोड़कर धातु बना लेते हैं, तो उसे नाम धातु कहते हैं। नाम धातुओं के विशेष-विशेष अर्थ होते हैं। यथा—पुत्रीयति—पुत्र की इच्छा करता है, लोहितायते—लाल हो जाता है।

जिस वस्तु की इच्छा करे, उस वस्तु के सूचक शब्द से क्यच् और काम्यच् प्रत्यय होते हैं। यथा—

	वर्तमान	भूत	भविष्य
पुत्र + क्यच् =	पुत्रीयति	अपुत्रीयीत्	पुत्रीयिष्यति
राजन् ,, (स्वेच्छा)	राजीयति	अराजीयीत्	राजीयिष्यति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	वर्तमान	भूत	भविष्य
वाच् क्यच् (स्वेच्छा)	वाच्यति	अवाच्यीत्	वाच्यिष्यति
गो " "	गव्यति	अगव्यीत्	गव्यिष्यति
कर्तृ " "	कर्त्रीयति	अकर्त्रीयीत्	कर्त्रीयिष्यति
अश्व " (मैथुनेच्छा)	अश्वस्यति	अश्वस्यीत्	अश्वस्यिष्यति
क्षीर " (लालसा)	क्षीरस्यति	अक्षीरस्यीत्	क्षीरस्यिष्यति
अशन " (बुभुक्षा)	अशनायति	आशनायीत्	अशनायिष्यति
धन " (लिप्सा)	धनायति	अधनायीत्	धनायिष्यति
यशस् + काम्यच् (स्वेच्छा)	यशस्काम्यति	अयशस्कामयीत्	यशस्काम्यिष्यति
पुत्र + " "	पुत्रकाम्यति	अपुत्रकाम्यीत्	पुत्रकाम्यिष्यति
हंस + क्यङ् (आचरण)	हंसायते	अहंसायिष्ट	हंसायिष्यते
अप्सरस् " "	अप्सरायते	अप्सरायिष्ट	अप्सरायिष्यते
राज् + क्यङ् "	राजायते	अराजायिष्ट	राजायिष्यते
लोहित + क्यष् (भाव)	लोहितायति	अलोहितायीत्	लोहितायिष्यति
कष्ट + क्यङ् (क्रमण)	कष्टायते	अकष्टायिष्ट	कष्टायिष्यते
वाष्प " (उद्वमन)	वाष्पायते	अवाष्पायिष्ट	वाष्पायिष्यते
शब्द " (करण)	शब्दायते	अशब्दायिष्ट	शब्दायिष्यते
सुख " (कर्तृवेदन)	सुखायते	असुखायिष्ट	सुखायिष्यते
नमस् + क्यच् (सत्करण)	नमस्यति	अनमस्यीत्	नमस्यिष्यति

अभ्रं करोति = अभ्रायते, अभ्रयति; वैरं करोति = वैरायते, वैरयति; कलहं करोति = कलहायते, मेघं करोति = मेघायते, सुदिनं करोति = सुदिनायते, अभृशः भृशो भवति = भृशायते, अशीघ्रः शीघ्रो भवति = शीघ्रायते, अमन्दः मन्दो भवति = मन्दायते, अनुन्मनाः उन्मनाः भवति = उन्मनायते, कृष्ण इवाचरति = कृष्णाति, मालेवाचरति = मालाति, शिष्य इवाचरति = शिष्यति, राजेवाचरति = राजानति, सखा इव आचरति = सखयति, दुष्यं करोति = दुष्यति, मृदुं करोत्याचष्टे वा = म्रदयति, श्वानमाचष्टे = शावयति, शुनयति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मनेपद प्रक्रिया

संस्कृत भाषा में दो पद होते हैं परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का सीधा अर्थ है—'वह पद जो दूसरे के लिए हो' और आत्मनेपद का अर्थ है 'वह पद जो अपने लिए हो'। तात्पर्य यह है कि जिन क्रियाओं का फल दूसरे के लिए हो, वे परस्मैपद में, और जिनका फल अपने लिए हो उन्हें आत्मनेपद में रखना चाहिए जैसे—'सः वपति—वह बोता है' वाक्य में वपति परस्मैपद की क्रिया है और इससे यह भाव निकलता है कि बोने की क्रिया का फल दूसरे के लिए होगा। यदि 'सः वपते—वह बोता है' कहा जाय तो इसका अर्थ होगा कि बोने की क्रिया का फल बोने वाले को मिलेगा। परन्तु उक्त अर्थ की दृष्टि से क्रिया के रूपों का प्रयोग केवल व्याकरण में ही मिलता है, काव्य ग्रन्थों में नहीं। संस्कृत के बड़े-बड़े कवि और लेखकों ने उक्त दोनों पदों का प्रयोग बिना किसी भेदभाव के किया है। यथा—'निर्दशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि' (मालविका० १) अब मैं सन्देश सुनना चाहता हूँ।' इस वाक्य में इच्छामि क्रिया परस्मैपद की है, पर इसका फल कर्त्ता को मिल रहा है, अन्य को नहीं। अतः कर्तृगामी क्रिया आत्मनेपद में होनी चाहिए, यह यहाँ अटल नहीं रहा।

यदि यह माना जाय कि उभयपदी धातुओं के विषय में ही उक्त भेद कहा गया है, तो यह बात भी प्रयोगों से सिद्ध नहीं होती है। यथा—राजा स्वसूनोश्चन्द्रापीड इति नाम चकार। शुक नासोऽपि विप्रजनोचितं वैशम्पायन इति नाम चक्रे।' इस वाक्य में चकार परस्मैपद का और चक्रे आत्मनेपद का प्रयोग है, किन्तु दोनों का व्यवहार एक ही अर्थ में किया गया है।

नम्, भ्रम्, रुच् और भाष् आदि कुछ धातुओं के रूप केवल एक पद में तथा कृ, चि, चुर् और दुह् आदि कुछ धातुओं के रूप दोनों पदों में चलते हैं। अतः संस्कृत में धातुएँ परस्मैपद, आत्मनेपद, और उभयपद इन तीन वर्गों में विभक्त हैं। कभी-कभी उपसर्ग आदि के कारण एक पद की धातु दूसरे पद की हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धातुओं के आत्मनेपद में प्रयुक्त होने के आवश्यक नियम निम्न प्रकार है—

१. **भावकर्मणोः** १।३।१३ भाव और कर्मवाच्य में धातु केवल आत्मनेपद में रहती है। यथा—तेन स्थीयते, तेन पुस्तकं पठ्यते, भूयते, अनुभूयते।

२. **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** १।३।१४ कर्तृवाच्य में कर्मव्यतिहार (Reciprocal action) कर्ता के उचित कार्य के न होने पर धातु आत्मनेपद में रहती है यथा—ब्राह्मणः शस्यं व्यतिलुनीते—ब्राह्मण खेती काटता है। यहाँ खेती काटना ब्राह्मण का काम नहीं है, शूद्र का है।, संप्रहरन्ते राजानः—राजा एक दूसरे पर प्रहार करते हैं।

अपवाद—

३. **न गतिहिंसार्थेभ्यः** १।३।१५—गति और हिंसार्थक धातुएँ कर्म व्यतिहार में आत्मनेपद नहीं होती। यथा—ते व्यतिगच्छन्ति—वे एक दूसरे के विरुद्ध जाते हैं। व्यतिहिंसन्ति, व्यतिघ्नन्ति।

४. **नेर्विशः** १।३।१७—विश धातु के पूर्व यदि 'नि' अथवा 'अभिनि' उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है। यथा—नृपः नगरं निविशते राजा नगर में प्रविष्ट होता है, अभिनिविशते सन्मार्गम्।

५. **परिव्यवेभ्यः क्रियः** १।३।१८—क्रि के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि उपसर्ग हों तो वह आत्मनेपदी हो जाती है। यथा—गोपो दुग्धं विक्रीणीते, अवक्रीणीते, परिक्रीणीते।

६. **विपराभ्यां जेः** १।३।१९—वि और परा पूर्वक जि धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—विजयतां महाराजः, बालकोऽध्ययनात्पराजयते, विजयते।

७. **आङो दोऽनास्यविहरणे** १।३।२०—मुख विहरण (विस्तार) से भिन्न अर्थ में वर्तमान आङ् पूर्वक दा धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। यथा—विद्यामादत्ते, वस्त्रमादत्ते। किन्तु—विडालः मुखं व्याददाति—बिल्ली मुँह खोलती है, नदी कूलं व्याददाति—नदी किनारे को तोड़ती है, आदि प्रयोगों में आत्मनेपद नहीं होता है।

८. **भुजोऽनवने** १।३।६६—भोजन और भोग अर्थ (Engoy, eat) में भुज् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। पर जब भुज् धातु रक्षार्थ में होती है, उस समय आत्मनेपद में प्रयोग नहीं होता। यथा—ओदनं भुङ्क्ते, राजा महीं भुङ्क्ते; किन्तु नृपः प्रजाः भुनक्ति—राजा प्रजा की रक्षा करता है।

९. **क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च** १।३।२१—आ, अनु, सम्, परि उपसर्ग पूर्वक क्रीड् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—बालकोऽनुक्रीडते, आक्रीडते, परिक्रीडते, संक्रीडते। पर शब्द करने के अर्थ में आत्मनेपद नहीं होता—यथा—संक्रीडन्ति शकटानि, संक्रीडति चक्रम्—पहिया चूं चूं करता है।

१०. आङि नु प्रच्छ्योरुपसंख्यानम् (वा०)—आ पूर्वक नु और प्रच्छ् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—आनुते शृगालः—गीदड़ भौंकते हैं, आपृच्छस्व प्रियसखम्—अपने प्यारे मित्र से बिदालो, आपृच्छते।

११. हरतेर्गतताच्छील्ये (वा०)—हृ धातु अनु उपसर्ग के योग में शील ग्रहण के अर्थ में आत्मनेपदी हो जाती है। यथा—मातरं गावोऽनुहरन्ते। जहाँ अनुकरण या मिलना-जुलना अर्थ होगा, वहाँ आत्मनेपद नहीं होता। यथा—स्वरेण रामभद्रमनुहरति, बालकः पितरम् अनुहरति।

१२. **समवप्रविभ्यःस्थः** १।३।२२—सम्, अव, प्र और वि उपसर्ग पूर्वक स्था (तिष्ठ) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—संतिष्ठते, अवतिष्ठते, वितिष्ठते, प्रतिष्ठते। न कोऽपि निर्धनस्य वाक्ये सन्तिष्ठते—कंगाल के कहने पर कोई काम नहीं करता।

१३. आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् (वा०)—प्रतिज्ञा अर्थ में स्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धातु आ के योग में आत्मनेपदी हो जाती है। यथा—शब्दं नित्यमातिष्ठते नित्यत्वेन प्रतिजानीते इत्यर्थः।

१४. प्रकाशनस्थेयाख्ययोश्च १।३।२३—आशयप्रकाशन, विवाद और पदार्थ निर्णयअर्थ में वर्तमान स्था (तिष्ठ) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—

तिष्ठते कृष्णाय गोपी—गोपी कृष्ण से आशय व्यक्त करती है, संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः॥

१५. उदोऽनूर्ध्वकर्मणि १।३।२४—उठने अर्थ से भिन्न अर्थ में उत् पूर्वक स्था (तिष्ठ) धातु का आत्मनेपद में उपयोग होता है। यथा—मुक्तावुत्तिष्ठते—मुक्ति के लिए यत्न कर रहा है।

उत्थान अर्थ में आत्मनेपद का उपयोग नहीं होता। यथा—आसनादुत्तिष्ठति—आसन से उठता है।

१६. उपाद्देवपूजासंगतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् (वा०)—उप पूर्वक स्था (तिष्ठ) धातु का देवपूजा, संगति (मिलन), मैत्रीकरण और मार्गबोधन अर्थ में आत्मनेपद में ही प्रयोग होता है। यथा—

देवपूजा—आदित्यमुपतिष्ठते—सूर्य की पूजा करता है।

संगति करण—गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते—गङ्गा यमुना से मिलती है।

मैत्रीकरण—रथिकानुपतिष्ठते—मैत्री करता है।

मार्ग—पन्थास्तुघ्नमुपतिष्ठते—प्राप्त करता है।

१७. वा लिप्सायामिति वाच्यम् (वा०)—लाभेच्छा अर्थ प्रतीत होतो उप पूर्वक स्था धातु का विकल्प से आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—भिक्षुकः प्रभुमुपष्ठिते उपतिष्ठति वा—भिक्षुक धनिक के पास लाभ की इच्छा से जाता है।

१८. अकर्मकाच्च १।३।२६—अकर्मपूर्वक स्था (तिष्ठ) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—भोजनकाल उपतिष्ठते—भोजन का समय उपस्थित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९. उद्विभ्यां तपः १।३।२७—अकर्मक तप् धातु उत् और वि उपसर्ग के योग में आत्मनेपदी होती है। यथा—रवि उत्तपते, वितपते वा—सूरज चमकता है।

२०. आङो यमहनः १।३।२८—अकर्मक आपूर्वक यम् (यच्छ्) और हन् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—आयच्छते तरुः—वृक्ष फैलता है, आयच्छते पाणिम्—हाथ फैलाता है, आहते। सकर्मक दशा में परस्मैपद होता है—परस्य शिर आहन्ति।

२१. समो गम्यृच्छिभ्याम् १।३।२९—अकर्मक समपूर्वक गम् (गच्छ्) और ऋच्छ धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—गङ्गा यमुनया संगच्छते—गङ्गा यमुना से मिलती है, अयमर्थः न संगच्छते—यह अर्थ ठीक नहीं बैठता; समृच्छते।

२२. उपाद्यमः स्वकरणे १।३।५६—उप उपसर्ग के साथ यम धातु स्वकरण के योग में आत्मनेपदी होती है। यथा—रामः सीताम् उपयेमे—राम ने सीता से विवाह किया।

२३. विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यानम् (वा०) **अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम्** (वा०)—विद्, प्रच्छ, स्वर और ऋ, श्रु, दृश् धातुएँ सम् उपसर्ग के योग में आत्मनेपद में प्रयुक्त होती हैं। यथा—संवित्ते, संपृच्छते, संस्वरते। हितान्न संशृणुते स किं प्रभुः—जो हितैषी की नहीं सुनता वह क्या (बुरा) स्वामी है।

२४. स्पर्धायामाङः १।३।३१—स्पर्धा अर्थ में आ उपसर्गपूर्वक ह्वे (ह्वय) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—आह्वयते मल्लो मल्लम्—मल्ल मल्ल को ललकारता है, भीमः जरासन्धम् आह्वयते—भीम जरासन्ध को ललकारता है।

२५. अधेः प्रसहते १।३।३३—क्षमा और अभिभव (जीतना) अर्थ में अधिपूर्वक कृ धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—शत्रुम् अधिकुरुते—शत्रु को क्षमा करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२६. वेः शब्दकर्मणः १।३।३४—कृ धातु वि के योग में शब्द कर्म (Making sound or having sound forits object) के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। यथा—शृगालः स्वरान् विकुरुते—गीदड़ शोर करता है, गायकः स्वरान् विकुरुते।

२७. गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः १।३।३२—हिंसन, भर्त्संन, सेवन, असामीक्ष्य, सहसा प्रवृत्ति, गुण-ग्रहण इत्यादि अर्थ में कृ धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—

१. गन्धन—हिंसन (Hurting, killing) उत्कुरुते—मारता है।

२. अवक्षेपण—भर्त्संना (Censuring, overcoming)—श्येनोवर्तिकामुदाकुरुते—बाज बटेर की भर्त्संना करता है या बस करता है।

३. सेवन (Serving, attending)—हरिम् उपकुरुते—हरि की सेवा करता है।

४. साहसिक्य (Using violence)—परदारान् प्रकुरुते—दूसरे की स्त्री पर बलात्कार करता है।

५. प्रतियत्न (Imparting additional quality)—एधः उदकस्य उपस्कुरुते—ईंधन पानी को गर्मी देता है।

६. प्रकथन (Reciting)—गाथाः प्रकुरुते—गाथा कहता है।

७. उपयोग (Applying to use)—शतं प्रकुरुते—धर्म के लिए विनियोग करता है।

२८. सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञानभृतिविगणनव्ययेषु नियः १।३।३६—सम्मान प्रदर्शित करना, उत्सञ्जन—ऊपर उठाना, आचार्यकरण—आचार्य बनाना, ज्ञान, भृति, विगणन—कर देना और व्यय इन सात अर्थों में नी धातु का प्रयोग आत्मनेपद में होता है। यथा—

१. सम्मानन (Showing regard for) शास्त्रे नयते—शास्त्र की शिक्षा देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. उत्सञ्जन (Lifting up)—दण्डं उन्नयते—डंडा उठाता है।

३. आचार्य करण (Initiating into sacred rites, making one a spritual guide) माणवकं उपनयते—बालक का उपनयन संस्कार करता है।

४. ज्ञान (Determining the sense of)—तत्त्वं नयते—सत्य का निश्चय करता है।

५. भृति (Employing on wages) कर्मकारान् उपनयते—मजदूरों को वेतन पर नौकर रखता है।

६. विगणन (Paying off as a debt, taxes, etc.)—करं विनयते—कर देता है।

७. व्यय (Spending, giving in Charity)—शतं विनयते सौ रुपये धर्मार्थ में खर्च करता है।

२९. कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि १।३।३७—जब नी धातु का कर्म कर्तृस्थ अशरीर वस्तु होता है, तो उसका प्रयोग आत्मनेपद में किया जाता है। यथा—क्रोधं विनयते—अपने क्रोध को मारता है, श्रमं विनयते—थकावट दूर करता है।

३०. वृत्तिसर्गतायनेषु क्रमः १।३।३८—क्रम धातुवृत्ति (Continuity), सर्ग (Energy) और तायन (Development) अर्थ में आत्मनेपदी होती है। यथा—अस्य बुद्धिः ऋचि क्रमते, अध्ययनाय क्रमते बालः—बालक पढ़ने के लिए उत्साह करता है, अस्मिन् शास्त्राणि क्रमन्ते-उसमें शास्त्रवृद्धि को प्राप्त होता है।

३१. उपपराभ्याम् १।३।३९—उप और परा उपसर्ग के योग में वृत्ति, सर्ग और वृद्धि अर्थ में क्रम धातु आत्मनेपद में प्रयुक्त होती है। यथा—उपक्रमते, पराक्रमते।

३२. आङ उद्गमने १।३।४०—क्रम धातु आ के योग में उद्गमन के अर्थ में आत्मनेपदी होती है। यथा—आक्रमते सूर्यः—सूर्य निकलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३३. वे पादविहरणे १।३।४१—क्रम् धातु वि के योग में पादविहरण-चलना इस अर्थ में आत्मनेपदी होती है। यथा—साधु आक्रमते अश्वः—घोड़ा अच्छा चलता है, विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे-विष्णु ने तीन बार क़दम रखा।

३४. प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम् १।३।४२—आरम्भ अर्थ में प्र और उपपूर्वक क्रम धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—अध्येतुं प्रक्रमते उपक्रमते वा-पढ़ना आरम्भ करता है।

३५. अपह्नवे ज्ञः १।३।४३—अपलाप अर्थ में ज्ञा (जन) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—शतम् अपजानीते—सौ रुपये से इनकार करता है।

३६. सम्प्रतिभ्यामनाध्याने १।३।४६—उत्कण्ठापूर्वक स्मरण अर्थ से भिन्न अर्थ में सम् और प्रतिपूर्वक ज्ञा धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—शतं संजानीते-सौ रुपये की आशा करता है, शतं प्रतिजानीते-सौ रुपये देने की प्रतिज्ञा करता है।

३७. भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः १।३।४७-भासन, उपसम्भाषा, ज्ञान, यत्न, विमति और उपमन्त्रण अर्थ में वद धातु का प्रयोग आत्मनेपद में किया जाता है। यथा—

१. भासन (Showing brilliance, Proficiency in)—शास्त्रे वदते—शास्त्र में कौशल दिखाता है।

२. उपभाषा (Pacifying)—प्रभुः भृत्यान् उपवदते—स्वामी नौकरों को खुश रखता है।

३. ज्ञान (Perfect knowledge)—शास्त्रे वदते—शास्त्र में पूरा ज्ञान रखता है।

४. यत्न (Effort)—कृषीवलः क्षेत्रे वदते—किसान खेत में परिश्रम करता है।

५. विमति—(Quarrel, difference of opinian) क्षेत्रे विवदते—खेत पर झगड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. उपमन्त्रण (Flattery in secret, enticing)—दातारं उपवदते—दाता की खुशामद करता है, कुलनारीम् उपवदते—कुलीन स्त्री को बहकाता है।

३८. व्यक्तवाचां समुच्चारणे १।३।४८—व्यक्तवाणी के उच्चारण के अर्थ में सं-प्र के योग में वद् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—ब्राह्मणाः संप्रवदन्ते—ब्राह्मण इकट्ठा उच्चारण करते हैं, संप्रवदन्ति खगाः—पक्षी उच्चारण करते हैं—यहाँ पक्षियों का उच्चारण अव्यक्त होने से आत्मनेपद का प्रयोग नहीं हुआ, किन्तु परस्मैपद का प्रयोग किया गया है।

३९. उदश्चरः सकर्मकात् १।३।५३—सकर्मक उत् पूर्वक चर् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—धर्ममुच्चरते—धर्म का उल्लंघन करता है।

४०. ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः १।३।५७—सन्नन्त ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—जिज्ञासते, शुश्रूषते, सुस्मूर्षते, दिदृक्षते।

४१. पूर्ववत्सनः १।३।६२—सन् प्रत्यय की प्रकृति के समान सन्नन्त से भी आत्मनेपद होता है अर्थात् सन् प्रत्यय की प्रकृतिभूत धातु आत्मनेपद में हो तो सन्नन्त में भी आत्मनेपद में हो जाती है। यथा—एदिधिषते, शिशयिषते, निविविक्षते।

४२. म्रियतेर्लुङ्लिङोश्च १।३।६१—मृ धातु लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्, लुङ् और आशीर्लिङ् में आत्मनेपद होती है और शेष लकारों में परस्मैपद में प्रयुक्त होती है। यथा—म्रियते।

४३. अनुपसर्गाज्ज्ञः १।३।७६—उपसर्ग रहित ज्ञा धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—गां जानीते।

४४. समः प्रतिज्ञाने १।३।५२—प्रतिज्ञा अर्थ में सम् पूर्वक गृ (गिर) धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—सङ्गिरते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५. आ उपसर्ग के योग में मन्त्र धातु एवं आ और प्र उपसर्ग के योग में शास् धातु का आत्मनेपद में प्रयोग होता है। यथा—आमन्त्रयस्व सहचरम्—अपने साथी से विदा लो, ऋषिः शकुन्तलां आशास्ते—ऋषि शकुन्तला को आशीर्वाद देता है, इदं प्रशास्महे—हम यह प्रार्थना करते हैं।

४६. **समस्तृतीयायुक्तात्** १।३।५४—तृतीयान्त वाहन के योग में सम् पूर्वक चर धातु आत्मनेपद में प्रयुक्त होती है। यथा—क्वचित् यथा संचरते सुराणाम्—कभी-कभी देवताओं के मार्ग से होकर जाता है।

परस्मैपद प्रक्रिया

१. **अनुपराभ्यां कृञः** १।३।७९—कृञ् धातु उभयपदी है, किन्तु अनु और परा उपसर्ग के साथ आने पर केवल परस्मैपद में ही इसका प्रयोग होता है। यथा—छात्रो गुरुमनुकरोति—विद्यार्थी गुरु का अनुकरण करता है; आचार्यः शिष्यस्य प्रार्थनां पराकरोति—आचार्य शिष्य की प्रार्थना को अस्वीकार करता है।

२. **अभिप्रत्यतिभ्यः क्षिपः** १।३।८०—अभि, प्रति और अति उपसर्गपूर्वक क्षिप् धातु का प्रयोग परस्मैपद में होता है। यथा—अभिक्षिपति, प्रतिक्षिपति, अतिक्षिपति, भीमोबलेन दुर्योधनम् अभिक्षिपति—भीम बल में दुर्योधन से बड़ा है।

३. **प्राद्वहः** १।३।८१—प्रपूर्वक वह धातु का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा—नदी प्रवहति—नदी बहती है।

४. **परेर्मृषः** १।३।८२—परिपूर्वक मृष धातु का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा—परिमृष्यति

५. **व्याङ्परिभ्यो रमः** १।३।८३, **उपाच्च** १।३।८४—वि, आ, परि और उपपूर्वक रम धातु का प्रयोग परस्मैपद में होता है। यथा—पापाद् विरमति—पाप से बचता है, उद्याने आरमति—बाग में आराम करता है, पुत्रं दृष्ट्वा परिरमति—पुत्र को देख कर प्रसन्न होता है। अध्ययनाद्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपरमति—पढ़ने से बचता है। उप के योग में विकल्प से रम् धातु का परस्मैपद होता है—यथा—उपरमति—उपरमते।

६. **बुधयुधनशजनेङ्प्रुद्रुस्नुभ्यो णेः** १।३।८६—ण्यन्त बुध्, युध्, नश्, जन्, इङ्, प्रु, द्रु और स्नु धातुओं का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा—बोधयति पद्मम्, योधयति काष्ठानि, नाशयति दुःखम्, जनयति सुखम्, अध्यापयति वेदम्, प्रावयति, प्रापयति, द्रावयति, स्नावयति।

७. **निगरणचलनार्थेभ्यश्च** १।३।८७—ण्यन्त भक्षणार्थक और चलनार्थक धातु का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा—पिता शिशुं भोजयति—माँ बच्चे को खिलाती है, पवनः वृक्षं कम्पयति—पवन वृक्ष को हिलाता है, निगारयति, आशयति, चलयति।

८. **प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः** १।३।५९—सन्नन्त प्रति और आपूर्वक श्रु धातु का परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा—प्रतिशुश्रूषति, आशुश्रूषति।

९. मृ धातु का लिङ् लट्, लुट्, और लङ् लकार में परस्मैपद में प्रयोग होता है। यथा—ममार, मरिष्यति, मर्ता, अमरिष्यत्।

अनुशीलनी

१. रम्, कृ, क्षिप्, मृ, वृत् और श्रु धातुएँ किस-किस अवस्था में परस्मैपदी होती हैं?

२. वद्, नी, रथ्, स्था, क्रम्, जि, प्रच्छ, क्रीड्, पत्, हन्, कृ, वद्, ज्ञा, यम् और क्री धातुएँ कब आत्मनेपदी होती हैं?

३. वद् धातु किन-किन अर्थों में आत्मनेपदी होती है? सोदाहरण विवेचन कीजिये।

४. कृञ् धातु किन-किन अर्थों में आत्मनेपदी होती है? तथा इस धातु के पूर्व अनु और परा उपसर्ग जोड़ देने पर इसका प्रयोग किस पद में होता है? नियमपूर्वक सिद्ध कीजिये।

५. अनु और प्रति के योग में स्था धातु किस पद में प्रयुक्त होती है? हन् धातु का प्रयोग आत्मनेपद में किस-किस अर्थ में होता है? नियम सहित लिखिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. परस्मैपद और आत्मनेपद का क्या अर्थ है ? क्या संस्कृत के कवियों ने इनके शाब्दिक अर्थ के समान धातुओं का प्रयोग किया है ? आलोचना करते हुए लिखिये।

७. लट् और लुङ् लकार में मृ धातु का प्रयोग किस पद में किया जाता है ? उपसर्ग रहित ज्ञा धातु का प्रयोग किस पद में किया जाता है ? सन्नन्त ज्ञा धातु का प्रयोग आत्मनेपद में कब होता है ?

८. निम्न लिखित वाक्यों में क्रिया को शुद्ध या सिद्ध (justify) कीजिये—

(१) राजा महीं भुङ्क्ते, (२) धूर्तः शतं अपजानाति, (३) शिक्षकः आसनाद् उत्तिष्ठते, (४) संयमी रिपून् पराजयति, (५) तपसे वनं प्रतस्थौ, (६) पिता पुत्रं आह्वयते, (७) पितरम् अनुहरति रूपेण पुत्रः, (८) बालको ऽन्नं भुनक्ति, (९) दारिद्रात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते, (१०) जलं विषं वा तव कारणादास्थास्ये, (११) उत्तिष्ठमानं मित्रार्थे कस्त्वां न बहु मन्यते, (१२) गङ्गा यमुनामुपतिष्ठति, (१३) भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठति, (१४) व्रीहीन् संयच्छते, (१५) दातारमुपवदति, (१६) अनुवदति कठः कलापस्य, (१७) कर्मकरान् उपनयत, (१८) रविर्वितपते, (१९) विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे, (२०) अध्ययनाय भजत, (२१) पिञ्जरस्थः शुकः तमनुवदति, (२२) पत्नी पतिं शुश्रूषति, (२३) प्रवासं गमिष्यन् रामः मातरम् आपृच्छति, (२४) कुलनारीम् उपवदते, (२५) विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।

९. निम्न क्रियापदों में अर्थभेद लिखिये और अर्थभेद को दिखलाने के लिए वाक्य बनाइए।

आह्वयति—आह्वयते, आक्रमति—आक्रमते, व्याददाति—व्यादत्ते, उत्तिष्ठति—उत्तिष्ठते, उत्तपति—उत्तपते, करोति—कुरुते, भुनक्ति—भुङ्क्ते, अनुहरति—अनुहरते, विकरोति—विकुरुते, विनयति—विनयते, संजानाति—संजानीते, संक्रीडति—संक्रीडते, संयच्छति—संयच्छते, संगच्छति—संगच्छते, विक्रामति—विक्रमते, वदति—वदते, संजानाति—संजानीते, अधिकरोति—अधिकुरुते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मवाच्य

संस्कृत का धातु कर्मवाच्य में प्रयुक्त हो सकता है। कर्मवाच्य में आत्मनेपद के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। कर्मवाच्य के रूप दिवादि गण के आत्मनेपदी धातुओं की भाँति चलते हैं।

लट्, लङ्, लोट् और विधिलिङ् लकारों में तथा शतृ और शानच् प्रत्ययों में कर्मवाच्य बनाने के लिए धातु से पर य प्रत्यय लगता है और य से पूर्व धातु में निम्न विकार उत्पन्न होते हैं।

१—दा, धा, मा, स्था, या, हा, ध्या (ध्यै), गा (गै) आदि धातुओं के अन्त्य आ को ई हो जाता है। यथा—दीयते, पीयते, हीयते, गीयते आदि। परन्तु ज्ञा धातु का ज्ञायते रूप ही बनता है।

२—अन्त्य इ और उ को दीर्घ होता है। यथा—चि = चीयते, श्रु = श्रूयते।

३—संयोगपूर्वक अन्त्य ऋ को रि आदेश होता है। यथा—कृ = क्रियेत।

४—अन्त्य ॠ को ईर आदेश होता है, परन्तु पवर्ग से परे ऊर् आदेश होता है। यथा—कॄ = कीर्यते, पॄ = पूर्यते।

५—उपधा के अनुनासिक का लोप होता है। यथा—भञ्ज = भज्यते।

६—धातु के अन्तस्थों को सम्प्रसारण होता है। यज् = इज्यते, वच् = उच्यते।

७—चुरादि तथा णिजन्त धातुओं के अय का लोप हो जाता है, परन्तु धातु के स्वर का विकार बना रहता है यथा—चुर् = चोरय, चोर = चोर्यते; कृ—णिज् = कारय, कार, कार्यते।

कृ—कर्मवाच्य के रूप

लट्

प्र० पु०	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
म० पु०	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
उ० पु०	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त
म० पु०	अक्रियेथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
उ० पु०	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि

लोट्

प्र० पु०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
म० पु०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्
उ० पु०	क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै

विधि लिङ्

प्र० पु०	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
म० पु०	क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्
उ० पु०	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि

अपवाद

क—खन्, तन् और जन् के न् का लोप और स्वर को दीर्घ विकल्प से होता है। यथा—खन्यते, खायते; तन्यते, तायते; जन्यते, जायते।

ख—शि—शय्यते, श्वि—शूयते, शास्—शिस्यते—शास्यते।

ग—ब्रू को वच् और अस् को भू आदेश होता है। दरिद्रा के आ का लोप हो जाता है। यथा—दरिद्र्यते।

८. लिट् लकार में कर्मवाच्य के रूप कर्तृवाच्य के समान होते हैं, किन्तु आत्मनेपद के प्रत्यय जोड़े जाते हैं। आम् प्रत्ययान्त में अनुप्रयुक्त क्रिया (Auxiliary) आत्मनेपद में होती है। यथा—भू—बभूवे, गम्—जग्मे, ईक्षाञ्चक्रे, कथयामासे।

९. लुट्, लृट्, लङ् और आशीर्लिङ् में भी कर्मवाच्य के रूप में कर्तृवाच्य के समान होते हैं, पर सभी धातुओं को आत्मनेपद में रखना होता है। यथा—बुध्—बोधिताहे, बोधिष्ये, अबोधिष्ये, बोधिषीय।

१०. अजन्त धातु तथा हन्, ग्रह्, दृश् धातुओं के स्वर की विकल्प से वृद्धि और आत्मनेपदी प्रत्ययों से पूर्व इ का आगम होता है। यथा—नी—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नायिताहे, नेताहे, (लुट्), नायिष्ये, नेष्ये (लृट्), अनायिष्ये अनेष्ये (लृङ्), नायिषीय, नेषीय (आर्शीर्लिङ्) ।

११. लुङ् के चतुर्थ, पंचम और सप्तम में दो कर्मवाच्य के रूप केवल आत्मनेपद के प्रत्यय लगाने से बनते हैं । यथा—भू—अभविषि, कृ—अकृषि, घा—अधिषि, पच्—अपक्षि ।

१२. प्रथम पुरुष एक वचनान्त कर्मवाच्य लुङ् में धातु से परे इ प्रत्यय लगता है तथा इ से पूर्व निम्नलिखित विकार होते हैं ।

क—धातु की उपधा के (ह्रस्व स्वर को गुण होता है, परन्तु उपधा के अ की वृद्धि होती है । यथा—तुद्—अतोदि, वद्—अवादि, गम्—अगामि, नी—अनामि, कृ—अकारि ।

ख—आकारान्त धातुओं को इ से पूर्व य का आगम होता है । यथा—दा—अदायि, पा—अपायि, गा (गै)—अगायि ।

ग—चुरादि तथा णिजन्त धातुओं के अय् का लोप हो जाता है—यथा चुर्—चोरय, अचोरि, रुह् णिज्—रोपय, अरोपि ।

घ—रभ् धातु को अनुनासिक का आगम होता है और इसकी उपधा के अ को गुण नहीं होता । मृज् को वृद्धि आदेश, गुह् के स्वर को दीर्घ और इ को गा आदेश होता है । यथा—आरम्भि, अमार्जि, अगूहि, अगामि ।

कर्मवाच्य में कतिपय धातु रूप

लिट्

प्र० पु०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
म० पु०	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
उ० पु०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

लुङ्

प्र० पु०	अमोचि	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
म० पु०	अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
उ० पु०	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः —इत्यादि

लृट्

प्र० पु०	मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते —इत्यादि

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीरन् —इत्यादि

लृङ्

प्र० पु०	अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यन्त —इत्यादि

दा—दान—कर्मवाच्य

लट्

प्र० पु०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
म० पु०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
उ० पु०	दीये	दीयावहे	दीयामहे

लोट्

प्र० पु०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
म० पु०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
उ० पु०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
म० पु०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
उ० पु०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

अनद्यतन भूत—लङ्

प्र० पु०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
म० पु०	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
उ० पु०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदायि	अदायिषाताम् अदिषाताम्	अदायिषत अदिषत
म० पु०	अदायिष्ठाः अदिथाः	अदायिषाथाम् अदिषाथाम्	अदायिध्वम् अदिध्वम्
उ० पु०	अदायिषि अदिषि	अदायिष्वहि अदिष्वहि	अदायिष्महि अदिष्महि

अनद्यतन भविष्यत्—लुट्

प्र० पु०	दायिता	दायितारौ	दायितारः
म० पु०	दायितासे	दायितासाथे	दायिताध्वे
उ० पु०	दायिताहे	दायितास्वहे	दायितास्महे

सामान्य भविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठाः	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथाः	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पा–पाने—कर्मवाच्य

लट्

प्र० पु०	पीयते	पीयेते	पीयन्ते
म० पु०	पीयसे	पीयेथे	पीयध्वे
उ० पु०	पीये	पीयावहे	पीयामहे

लोट्

प्र० पु०	पीयताम्	पीयेताम्	पीयन्ताम्
म० पु०	पीयस्व	पीयेथाम्	पीयध्वम्
उ० पु०	पीयै	पीयावहै	पीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	पीयेत	पीयेयाताम्	पीयेरन्
म० पु०	पीयेथाः	पीयेयाथाम्	पीयेध्वम्
उ० पु०	पीयेय	पीयेवहि	पीयेमहि

लङ्

प्र० पु०	अपीयत	अपीयेताम्	अपीयन्त
म० पु०	अपीयथाः	अपीयेथाम्	अपीयध्वम्
उ० पु०	अपीये	अपीयावहि	अपीयामहि

लिट्

प्र० पु०	पपे	पपाते	पपिरे
म० पु०	पपिषे	पपाथे	पपिध्वे
उ० पु०	पपे	पपिवहे	पपिमहे

लुङ्

प्र० पु०	अपायि	अपायिषाताम्	अपायिषत
म० पु०	अपायिष्ठाः	अपायिषाथाम्	अपायिढ्वम्
उ० पु०	अपायिषि	अपायिष्वहि	अपायिष्महि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लुट्

प्र० पु०	पाता	पातारौ	पातारः
म० पु०	पातासे	पातासाथे	पाताध्वे
उ० पु०	पाताहे	पातास्वहे	पातास्महे

लृट्

प्र० पु०	पास्यते	पास्येते	पास्यन्ते
म० पु०	पास्यसे	पास्येथे	पास्यध्वे
उ० पु०	पास्ये	पास्यावहे	पास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पासीष्ट	पासीयास्ताम्	पासीरन्
म० पु०	पासीष्ठाः	पासीयास्थाम्	पासीध्वम्
उ० पु०	पासीय	पासीवहि	पासीमहि

लृङ्

प्र० पु०	अपास्यत	अपास्येताम्	अपास्यन्त
म० पु०	अपास्यथाः	अपास्येथाम्	अपास्यध्वम्
उ० पु०	अपास्ये	अपास्यावहि	अपास्यामहि

ज्ञा—कर्मवाच्य

लट्

प्र० पु०	ज्ञायते	ज्ञायेते	ज्ञायन्ते
म० पु०	ज्ञायसे	ज्ञायेथे	ज्ञायध्वे
उ० पु०	ज्ञाये	ज्ञायावहे	ज्ञायामहे

लोट्

प्र० पु०	ज्ञायताम्	ज्ञायेताम्	ज्ञायन्ताम्
म० पु०	ज्ञायस्व	ज्ञायेथाम्	ज्ञायध्वम्
उ० पु०	ज्ञायै	ज्ञायावहै	ज्ञायामहै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ्

प्र० पु०	ज्ञायेत	ज्ञायेयाताम्	ज्ञायेरन्
म० पु०	ज्ञायेथाः	ज्ञायेयाथाम्	ज्ञायेध्वम्
उ० पु०	ज्ञायेय	ज्ञायेवहि	ज्ञायेमहि

अनद्यतन भूत—लङ्

प्र० पु०	अज्ञायत	अज्ञायेताम्	अज्ञायन्त
म० पु०	अज्ञायथाः	अज्ञायेथाम्	अज्ञायध्वम्
उ० पु०	अज्ञाये	अज्ञायावहि	अज्ञायामहि

परोक्ष भूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

लुङ्

प्र० पु०	अज्ञायि	अज्ञायिषाताम्	अज्ञायिषत
म० पु०	अज्ञायिष्ठाः	अज्ञायिषाथाम्	अज्ञायिध्वम्
उ० पु०	अज्ञायिषि	अज्ञायिष्वहि	अज्ञायिष्महि

अनद्यतन भविष्य—लुट्

प्र० पु०	ज्ञाता	ज्ञातारौ	ज्ञातारः
म० पु०	ज्ञातासे	ज्ञातासाथे	ज्ञाताध्वे
उ० पु०	ज्ञाताहे	ज्ञातास्वहे	ज्ञातास्महे

सामान्य भविष्य—लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
म० पु०	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उ० पु०	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	ज्ञासीष्ट	ज्ञासीयास्ताम्	ज्ञासीरन्
म० पु०	ज्ञासीष्ठाः	ज्ञासीयास्थाम्	ज्ञासीध्वम्
उ० पु०	ज्ञासीय	ज्ञासीवहि	ज्ञासीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लङ्

प्र० पु०	अज्ञास्यत	अज्ञास्येताम्	अज्ञास्यन्त
म० पु०	अज्ञास्यथाः	अज्ञास्येथाम्	अज्ञास्यध्वम्
उ० पु०	अज्ञास्ये	अज्ञास्यावहि	अज्ञास्यामहि

ध्यै—लट्—ध्यायते, ध्यायेते, ध्यायन्ते। लोट्—ध्यायताम्, ध्यायेताम्, ध्यायन्ताम्। विधि— ध्यायेत, ध्यायेयाताम्, ध्यायेरन्, लङ्—अध्यायत, अध्यायेताम्, अध्यायन्त। लिट्—दध्ये, दध्याते, दध्यिरे। लुङ्—अध्यायि, अध्यायिषाताम्, अध्यायिषत। लुट्—ध्याता। लृट्—ध्यास्यते।

चि—कर्मवाच्य

लट्

प्र० पु०	चीयते	चीयेते	चीयन्ते
म० पु०	चीयसे	चीयेथे	चीयध्वे
उ० पु०	चीये	चीयावहे	चीयामहे

लोट्

प्र० पु०	चीयताम्	चीयेताम्	चीयन्ताम्
म० पु०	चीयस्व	चीयेथाम्	चीयध्वम्
उ० पु०	चीयै	चीयावहै	चीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चीयेत	चीयेयाताम्	चीयेरन्
म० पु०	चीयेथाः	चीयेयाथाम्	चीयेध्वम्
उ० पु०	चीयेय	चीयेवहि	चीयेमहि

अनद्यनतन-भूत—लङ्

प्र० पु०	अचीयत	अचीयेताम्	अचीयन्त
म० पु०	अचीयथाः	अचीयेथाम्	अचीयध्वम्
उ० पु०	अचीये	अचीयावहि	अचीयामहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परोक्षभूत लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

सामान्य भूत—लुङ्

प्र० पु०	अचायि	अचायिषाताम्	अचायिषत
म० पु०	अचायिष्ठाः	अचायिषाथाम्	अचायिध्वम्
उ० पु०	अचायिषि	अचायिष्वहि	अचायिष्महि

लुट्

प्र० पु०	चायिता	चायितारौ	चायितारः
म० पु०	चायितासे	चायितासाथे	चायिताध्वे
उ० पु०	चायिताहे	चायितास्वहे	चायितास्महे

लृट्

प्र० पु०	चायिष्यते	चायिष्येते	चायिष्यन्ते
म० पु०	चायिष्यसे	चायिष्येथे	चायिष्यध्वे
उ० पु०	चायिष्ये	चायिष्यावहे	चायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	चायिषीष्ट	चायिषीयास्ताम्	चायिषीरन्
म० पु०	चायिषीष्ठाः	चायिषीयास्थाम्	चायिषीध्वम्
उ० पु०	चायिषीय	चायिषीवहि	चायिषीमहि

लृङ्

प्र० पु०	अचायिष्यत	अचायिष्येताम्	अचायिष्यन्त
म० पु०	अचायिष्यथाः	अचायिष्येथाम्	अचायिष्यध्वम्
उ० पु०	अचायिष्ये	अचायिष्यावहि	अचायिष्यामहि

जि—लट्—जीयते, जीयेते, जीयन्ते। लोट्—जीयताम्, जीयेताम्, जीयन्ताम्। विधि—जीयेत, जीयेयाताम्, जीयेरन्। लङ्—अजीयत, अजीयेताम्, अजीयन्त। लिट्—जिग्ये, जिग्याते जिग्यिरे; जिग्यिषे, जिग्याथे, जिग्यिध्वे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिग्ये, जिग्यिवहे, जिग्यिमहे। लुङ्—अजायि अजायिषाताम्, अजायिषत; अजायिष्ठाः, अजायिषाथाम्, अजायिध्वम्; अजायिषि, अजायिष्वहि, अजायिष्महि। लुट्—जेता—जयिता। लट्—जेष्यते—जायिष्यते। आशी०—जेषीष्ट—जायिषीष्ट। लृङ्—अजेष्यत—अजायिष्यत। श्रि—लट्—श्रीयते, श्रीयेते, श्रीयन्ते। लोट्—श्रीयताम्, श्रीयेताम्, श्रीयन्ताम्। विधि—श्रीयेत। लङ्—अश्रीयत, अश्रीयेताम्, अश्रीयन्त। लिट्—शिश्रिये, शिश्रियाते, शिश्रियिरे, शिश्रियिषे, शिश्रियाथे, शिश्रियिध्वे; शिश्रिये, शिश्रियिवहे, शिश्रियिमहे। लुङ्—अश्रायि, अश्रायिषाताम्, अश्रायिषत; अश्रायिष्ठाः, अश्रायिषाथाम्, अश्रायिध्वम्; अश्रायिषि, अश्रायिष्वहि, अश्रायिष्महि। लुट्—श्रयिता—श्रायिता। लट्—श्रयिष्यते—श्रायिष्यते। आशी०—श्रयिषीष्ट—श्रायिषीष्ट। लृङ्—अश्रयिष्यत—अश्रायिष्यत।

नी—कर्मवाच्य

लट्

प्र० पु०	नीयते	नीयेते	नीयन्ते
म० पु०	नीयसे	नीयेथे	नीयध्वे
उ० पु०	नीये	नीयावहे	नीयामहे

लोट्

प्र० पु०	नीयताम्	नीयेताम्	नीयन्ताम्
म० पु०	नीयस्व	नीयेथाम्	नीयध्वम्
उ० पु०	नीयै	नीयावहै	नीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	नीयेत	नीयेयाताम्	नीयेरन्
म० पु०	नीयेथाः	नीयेयाथाम्	नीयेध्वम्
उ० पु०	नीयेय	नीयेवहि	नीयेमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अनीयत	अनीयेताम्	अनीयन्त
म० पु०	अनीयथाः	अनीयेथाम्	अनीयध्वम्
उ० पु०	अनीये	अनीयावहि	अनीयावहि

सामान्य भूत—लुङ्

प्र० पु०	अनायि	अनायिषाताम्	अनायिषत
म० पु०	अनायिष्ठाः	अनायिषाथाम्	अनायिध्वम्
उ० पु०	अनायिषि	अनायिष्वहि	अनायिष्महि

अनद्यन भविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतारः
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

ऌट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्
म० पु०	नेषीष्ठाः	नेषीयास्थाम्	नेषीध्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथाः	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

धृ-लट्—ध्रियते, ध्रियेते, ध्रियन्ते । लोट्—ध्रियताम्, ध्रियेताम्, ध्रियन्ताम् । विधि—ध्रियेत, ध्रियेयाताम्, ध्रियेरन् । लङ्—अध्रियत, अध्रियेताम्, अध्रियन्त । लिट्—दध्रे, दध्राते, दध्रिरे । लुङ्—अधारि, अधारिषाताम्, अधारिषत ।

वाच्यपरिवर्तन के निमय

१. कर्तृवाच्य को कर्मवाच्य में परिवर्तित करने के लिए कर्तृवाच्य का प्रथमान्त कर्त्ता तृतीयान्त में और द्वितीयान्त कर्म प्रथमान्त में परिवर्तित हो जाता है। क्रिया की समता प्रथमान्त कर्म से रहती है। यथा—रामः पुस्तकं पठति (कर्तृवाच्य) का रामेण पुस्तकं पठ्यते, सत्पुरुषाः असत्यं न वदन्ति (कर्तृ०) का सत्पुरुषैः असत्यं नोच्यते (कर्मवा०) ।

२. कर्तृवाच्य के कर्त्ता का विशेषण कर्मवाच्य में तृतीयान्त और कर्म का विशेषण प्रथमान्त हो जाता है; यतः कर्मवाच्य में कर्त्ता तृतीया विभक्ति में और कर्म प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है। यथा—हिमाद्रेः प्रयता तनूजा तपस्यन्तं शिवं अन्वास्ते (कर्तृ०)—हिमाद्रेः प्रयतया तनूजया तपस्यन् शिवः अन्वास्यते (कर्म०)—सः भूतेश्वरपार्श्ववर्ती द्रंष्ट्रामयूखैः गिरिगह्वराणां अन्धकारं शकलानि कुर्वन् किंचित् विहस्य भूयः अर्थपतिं बभाषे (कर्तृवाच्य)—अनेन भूतेश्वरपार्श्ववर्तिना द्रंष्ट्रामयूखैः गिरिगह्वराणां अन्धकारं शकलानि कुर्वता किंचित् विहस्य भूयः अर्थपतिः बभाषे (कर्मवाच्य) ।

३. अपूर्ण सकर्मक क्रिया का कर्मपूरक कर्मवाच्य में कर्तृपूरक हो जाता है। यथा—स कुमारं नेतारं करोति (कर्तृवाच्य)—तेन कुमारो नेता क्रियते (कर्मवाच्य)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. कर्ता और कर्म के विशेषणों के अतिरिक्त अन्य कारकों में तथा क्रियाविशेषण आदि में कोई परिवर्तन नहीं होता। यथा—स त्वं मदीयेन देहेन शरीरवृत्तिं निर्वर्त्तयितुं प्रसीद (कर्तृवाच्य)—तेन त्वया मदीयेन देहेन शरीरवृत्तिं निर्वर्त्तयितुं प्रसाद्यताम् (कर्मवाच्य)—सत्पुरुषाः सभायां सत्यं चारु वदन्ति (कर्तृवाच्य)—सत्पुरुषैः सभायां सत्यं चारु उद्यते (कर्मवाच्य)।

५. दुह्, याच्, पच् आदि बारह द्विकर्मक धातुओं का गौण कर्म और नी, हृ, कृष् और वह् इन चार द्विकर्मक धातुओं का प्रधानकर्म कर्मवाच्य में प्रथमान्त हो जाता है और द्वितीयकर्म द्वितीयान्त ही बना रहता है। यथा—स बलिं याचते वसुधाम् (कर्तृवाच्य)—तेन बलिः याच्यते वसुधाम् (कर्मवाच्य); स ग्राममजां नयति (कर्तृवाच्य)—तेन अजा ग्रामं नीयते (कर्मवाच्य)।

६. कर्तृवाच्य को भाववाच्य में बदलने के लिए कर्तृवाच्य का प्रथमान्त कर्ता तृतीयान्त हो जाता है और क्रिया सर्वदा प्रथम पुरुष एक वचन में रहती है। भाववाच्य का अर्थ है—केवल किसी क्रिया का होना दिखलाना। भाववाच्य अकर्मक क्रियाओं में ही होता है। यथा—स भवति, तौ भवतः ते भवन्ति; त्वं भवसि, युवाम् भवथः, यूयम् भवथ; अहं भवामि, आवाम् भवावः, वयं भवामः (कर्तृवाच्य)—तेन भूयते, ताभ्याम् भूयते, तैः भूयते, त्वया भूयते, युवाभ्यां भूयते, युष्माभिः भूयते, मया भूयते, आवाभ्यां भूयते, अस्माभिः भूयते। अहमधुना गच्छामि—मया अधुना गम्यते।

७. कर्मवाच्य को कर्तृवाच्य में बदलने के लिए कर्मवाच्य का तृतीयान्त कर्म प्रथमान्त में और प्रथमान्त कर्म द्वितीयान्त में बदल जाता है तथा क्रिया का लिङ्ग, वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार होता है। यथा—वनदेवताभिः नृपाणां कीर्त्तिः गीयते (कर्मवाच्य)—वनदेवताः नृपाणां कीर्त्तिं गायन्ति (कर्तृवाच्य)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. भाववाच्य को कर्तृवाच्य में परिवर्तित करने के लिए भाववाच्य का तृतीयान्त कर्त्ता प्रथमान्त हो जाता है और क्रिया के लिङ्ग, वचन और पुरुष कर्त्ता के अनुसार हो जाते हैं। यथा—तूष्णीं स्थीयतां भवता (भाववाच्य) —तूष्णीं तिष्ठतु भवान् (कर्तृवाच्य)।

अनुशीलनी

१. निम्न लिखित धातुओं के कर्मवाच्य के रूप लिखो—

भू, पठ्, मुच्, स्था, दा, ज्ञा, पा और जि। नी और श्रि धातु के लट्, लोट, विधिलिङ् और लुट् लकार में कर्मवाच्य के रूप लिखो।

२. भाववाच्य में क्रिया की क्या व्यवस्था रहती है? लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् इन सार्वधातुक लकारों में कर्मवाच्य और भाववाच्य के रूप बनाने के लिए कौन-सा प्रत्यय जोड़ा जाता है? उदाहरणपूर्वक लिखिये।

३. कर्मवाच्य बनाने के नियमों का सोदाहरण विवेचन कीजिये।

४. निम्नलिखित वाक्यों में वाच्यपरिवर्तन कीजिये—

(१) रामो भरतं ब्रूते, (२) विजयतां देवः, (३) सः मम पुस्तकं कुत्र स्थापयति, (४) रामः मित्रेण सह पुस्तकं पठति, (५) कन्यया सह सः मनुष्य उद्यानं गच्छति, (६) तदा तत्र त्वमपि गच्छसि, (७) तेन पत्रिका प्रेषिता, (८) त्वं देवतायाः पूजां कुरु, (९) तस्य आज्ञया अहं इदं कार्यं करोमि, (१०) अहमद्य उपदेशं श्रोतुं गच्छामि, (११) अहं अत्र क्रीडामि, (१२) धेनुः वनं गमिष्यति, (१३) चौरः धनं चोरयति, (१४) रामेण सह लक्ष्मणः वनं गतः, (१५) सीतया सह रामः वनं गतः, (१६) सा पुत्रिका पुष्पमालां करोति, (१७) तेन पारितोषिकं प्राप्तम्, (१८) अयं सैनिकः कशया अश्वं ताडयति, (१९) पाठशालायां केनापि सह त्वं कलहं न कुरु, (२०) तेन अद्य शोभना कथा कथिता, (२१) मालाकारः उद्यानं गत्वा बहूनि पुष्पाणि आनयति, (२२) रजकः रक्तं वस्त्रं साधु प्रक्षालयितुं न शक्नोति, (२३) केनचित् धूर्तेन पक्षिपालकेन एकः शुकः मनुष्य इव वक्तुं शिक्षितः, (२४) तेन बालकेन तत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तडागे एकः मण्डूकः दृष्टः, (२५) तेन वृषभेण प्रभूतं जलं पीतम्, (२६) तत् तृणं तेन वृषभेण शीघ्रमेव भक्षितम्।

लकारार्थ प्रक्रिया

किन्हीं विशेष दशाओं में लकारों के अर्थ और काल में जो परिवर्तन होता है, उसका विवेचन लकारार्थ प्रक्रिया में किया जाता है।

१. वर्तमान काल में जो क्रिया हो रही है उसे निर्दिष्ट करने के लिए लट् लकार का प्रयोग होता है। यह क्रिया के अविराम (Continuity) और सर्वकाल में सत्य रहनेवाली वस्तु (True for all times) को भी प्रकट करता है। यथा—जलं वहति–जल ले जाता है, सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्—कहो सत्संगति क्या नहीं करती।

२. वर्तमान के समीपवर्ती भूत या भविष्यत् में लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—अहमागच्छामि–मैं अभी आया हूँ। कदा गमिष्यसि—एष गच्छामि—तुम कब जाओगे ? मैं अभी जाऊँगा।

३. कथाओं में स्वाभाविक क्रिया को बतलाने के लिए भूतकाल के अर्थ में लट् लकार प्रयुक्त होता है। यथा—हिरण्यको भोजनं कृत्वा बिले स्वपिति।

४. स्म उपपद के योग में भूतकाल के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—एकस्मिश्चिद्वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसतिस्म—किसी वन में भासुरक नाम का सिंह रहता था।

५. प्रश्नवाचक शब्दों के साथ जब विचार या इच्छा विवक्षित हो तो, भविष्यत् के अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—किं करोमि, क गच्छामि मैं क्या करूँगा, कहाँ जाऊँगा।

६. पुरा और यावत् के साथ भविष्यत् काल और निश्चय का बोध कराने के लिए लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—आलोके ते निपतति पुरा सा—निश्चय ही वह तुम्हारे दृष्टिगोचर होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७. कदा और कर्हि के साथ भविष्यत् के अर्थ में विकल्प से लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—कदा गच्छन्ति ते—वे कब जायँगे।

८. लिप्सा की सिद्धि में लृङ् (Conditional) के अर्थ में लट लकार का प्रयोग होता है। यथा—यो अन्नं ददाति स स्वर्गं याति—जो अन्न देता है, वह स्वर्ग जाता है।

९. अनद्यतन—जो कि क्रिया आज से पहले समाप्त हो चुकी है, में लङ (Imperfect) लकार का प्रयोग होता है। ऐतिहासिक भूतकाल में भी इसका प्रयोग होता है।

१०. समीप भूतकाल के अन्तर्गत प्रश्न पूछने के लिए लङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा—अगच्छत् किं स ग्रामम्—क्या वह गाँव को चला गया? किन्तु दूरवर्ती भूतकाल हो तो लिट् (perfect) का प्रयोग होता है। यथा—कं सं जघान किम्?

११. दूरवर्ती भूतकाल की उस क्रिया को बतलाने के लिए, जो आज से पहले समाप्त हो चुकी है और जिसे वक्ता ने देखा नहीं है। यथा—कंसं जघान कृष्णः बभूव योगी किल वीर्यसेनः।

१२. सामान्य भूतकाल को बतलाने के लिए लुङ् लकार का प्रयोग होता है। आज से पहले कि क्रिया लङ् और लिट् से निर्दिष्ट होती है, अतः लुङ् निकटवर्ती क्रिया में, जो आज के दिन (Currentday) में हुई है, प्रयुक्त होता है। अंग्रेजी में (Present Perfect) के द्वारा जो अर्थ प्रकट होता है, वही अर्थ संस्कृत में लुङ् लकार के द्वारा प्रकट किया जाता है। यथा—अभूत् सम्पादितस्वादुफलो मे मनोरथः—मेरे मनोरथ ने स्वादुफल को प्राप्त कर लिया।

१३. समीप भूतकाल के अतिरिक्त प्रबन्ध के अर्थ में भी भूतकाल का प्रयोग होता है। यथा—ब्राह्मणेभ्यो यावज्जीवनम् अन्नमदात्—जीवन भर वह ब्राह्मणों को अन्न देता रहा।

१४. मा और मास्म के योग में लोट् लकार का अर्थ होने पर अकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगम के बिना लुङ् लकार का प्रयोग होता है। यथा— मा गाः—मत जाओ, मा शुचः—सोच मत करो, मास्म प्रतीपं गमः—विरुद्ध मत जाओ।

१५. जो क्रिया वर्तमान में न हो, उसको व्यक्त करने के लिए लुट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—पञ्चभिरह्नोभिर्वयमेव तत्र गन्तारः—पाँच दिन में हम वहाँ जायेंगे; सभा भविता—सभा होगी।

१६. वर्तमान दिन की भविष्य क्रिया तथा साधारण भविष्य क्रिया के साथ भविष्य प्रबन्ध को व्यक्त करने के लिए लट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—यास्यत्यद्य शकुन्तला—शकुन्तला आज जायगी; अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमिष्ये—मैं कहाँ विश्राम करूँगा।

१७. कभी-कभी लोट् के अर्थ में भी लृट् (Simple futura) प्रयुक्त होता है। तथा—तदा मम पाशाँश्छेत्स्यसि—पीछे मेरे बन्धनों को काटो, पश्चात्सरः प्रति गमिष्यति मानसं तत्—मानसरोवर को पीछे जाइये।

१८. जिनमें कोई भूत या भविष्यत्कार्य अन्य किसी कार्य पर निर्भर करता है, परन्तु कारण के न होने से कार्य न हो सकता हो, उन अर्थों में लृङ् लकार का प्रयोग होता है। आशय यह है कि कार्यकारण दोनों को प्रकट करने के लिए लृङ् लकार का व्यवहार किया जाता है। यथा—सुवृष्टिश्चेद्-भविष्यत्तदासुभिक्षम भविष्यत्।

१९. यदि कारण द्योतक वाक्य में विधिलिङ् का प्रयोग होता है तो कार्यद्योतक वाक्य में लृङ् लकार का प्रयोग किया जाता है। यथा—यदि न प्रणयेद्राजा दण्डँ स्त्पीडयिष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः—यदि राजा दण्ड न दे तो अधिक बलवाले दुर्बलों को दुःख दें।

२०. आज्ञा, प्रार्थना और उपदेश के अर्थ में लोट् लकार मध्यमपुरुष में प्रयुक्त होता है। तथा—कुरु देवकार्यम्—देवताओं का काम करो, देहि में प्रतिवचनम्—मुझे उत्तर दीजिये, भज क्षामाम्—क्षमा को धारण करो।

२१. कर्मवाच्य में प्रार्थना का अर्थ होने पर लोट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में प्रयुक्त होता है। यथा—एतदासनमास्यताम्—इस आसन पर आप बैठिये, देव श्रूयताम्—महाराज सुनिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२. इच्छा और आशीर्वाद के अर्थ में लोट्, विधिलिङ् और आशीर्लिङ् के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा—चिरं जीव—चिरकाल तक जीवित रहो, पुत्रं लभस्व— आपको पुत्र प्राप्त हो, काले-काले वर्षतु पर्जन्यः—समय-समय पर बादल बरसें।

२३. प्रश्न (Question), शक्ति (Ability) और विधि (Necessity) के अर्थ में लोट् लकार उत्तम पुरुष में प्रयुक्त होता है। यथा—किं करवाणि ते—मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ?; करवामैतद्वयं देवि प्रियं तव—हे देवि,हम आपकी यह भलाई कर सकते हैं; नहि दूतवधं करवाणि—मुझे दूत का वध नहीं करना चाहिए।

२४. स्म के योग में प्रार्थना अर्थ में और मा के योग में वर्तमान अर्थ में लोट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—बालमध्यापयस्म—कृपया बालक को पढ़ाइये; मा भवतु—यह नहीं है।

२५. सम्भावना (Possibility) या संशय (Doubt) के अर्थ में प्रश्नवाचक शब्दों के योग में लोट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—किमधुना करवाम—अब क्या करें।

२६. आशीर्वाद देने के अर्थ में आशीर्लिङ् का प्रयोग होता है। यथा—वीरप्रसवा भूयाः—तू वीर पुत्रों को उत्पन्न करने वाली हो; कृतार्थो भूयासम्—मैं कृतार्थ होऊँ। कभी-कभी लोट् और विधिलिङ् के अर्थ में भी यह लकार प्रयुक्त होता है। यथा— इदं वचो ब्रूयास्त—आप इस बात को कहें।

२७. विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट (Speaking of honorary duty), संप्रश्न (Questioning) और प्रार्थना अर्थ में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—आपदार्थे धनं रक्षेत्—विपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, इह भवान् भुञ्जीत—आप यहाँ भोजन कीजिये; इहासीत भवान्—आप यहाँ बैठिये, पुत्रमध्यापयेद्भवान्—आप मेरे पुत्र को पढ़ाइये; किं भो वेदम् अधीयीय उत तर्कम्—श्रीमान् क्या मैं वेद पढ़ूँ या तर्क? भोजनं लभेय—मैं भोजन पाऊँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८. प्रैष (Direction), अतिसर्ग (Permission to do as one like) और प्राप्तकाल (Proper time for an action) में विधिलिङ्, लोट् या तव्य, अनीय, य कृत्य प्रत्ययान्त पद प्रयुक्त होते हैं। यथा—इहासीत भवान्।

२९. यत् शब्द के प्रयोग में काल, समय, वेला आदि के साथ विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—कालः समयो वेळा वा यद्भुञ्जीत भवान्—यह समय है, जब आपको भोजन करना चाहिए।

३०. अर्हता (Fitness) या शक्ति (Capability) अभिप्रेत हो तो विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—भवान् खलु कन्यां वहेत वोढा वा या भवता खलु कन्या उह्येत्, वोढव्या-तुम कन्या से विवाह के योग्य हो।

३१. प्रश्नवाचक किम्, कतर आदि के साथ गर्हा (censure) में विधिलिङ् या लृट् का प्रयोग होता है। यथा—कः हरिं निन्देत्—हरि की कौन निन्दा करे।

३२. आश्रित वाक्य में काम (Hope) या प्रार्थना (Prayer) के अर्थ में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—अशंसेऽधीयीय—मैं आशा करता हूँ, मैं पढ़ूँगा।

३३. कच्चित् के प्रयोग में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति।

३४. संभावना वचन (Hope or expectation)—संभावना, अपि, अपिनाम में यद् का प्रयोग होने पर विधिलिङ् लकार आता है। यथा—अपि जीवेत् स ब्राह्मणशिशुः—आशा है वह ब्राह्मण पुत्र जी जाये; संभावयामि यद् भुञ्जीथास्त्वम्—मुझे संभावना है कि आप भोजन करें।

३५. इच्छा अर्थवाले धातु—जैसे इष्, कम्, प्रार्थ आदि के साथ विधिलिङ् या लोट् लकार का प्रयोग होता है। यथा—इच्छामि सोमं पिबेत् वा भवान्—मैं चाहता हूँ आप सोम पियें।

३६. संकेतार्थक (Conditional) वाक्यों में जहाँ एक वाक्य का अर्थ दूसरे वाक्य के अर्थ के साथ कार्य-कारण भाव का सम्बन्ध रखता हो, वहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधिलिङ् का प्रयोग होता है। यथा—यदि तातः सन्निहितो भवेत् ततः किं भवेत्—यदि पिताजी यहाँ होते तो क्या होता। यदि न स्यान्नरपति-र्विप्लवेन नौरिवप्रजा—यदि राजा न हो तो नौ की भाँति प्रजा नष्ट हो जायगी।

अनुशीलनी

१—संस्कृत में भूत और भविष्यत्काल के कितने भेद हैं? भूतकाल के अर्थ में कौन-कौन लकार प्रयुक्त होते हैं? लिट् और लङ् लकार का प्रयोग किस-किस स्थिति में होता है?

२—लट् का प्रयोग कहाँ-कहाँ होता है? कदा और कर्हि के योग में कौन से लकार का प्रयोग किया जाता है, उदाहरण पूर्वक समझाइये।

३—लिप्सा की सिद्धि में कौन-सा लकार आता है? लोट् लकार का प्रयोग किस-किस अर्थ में किया जाता है? विधिलिङ् का व्यवहार कहाँ-कहाँ किया जाता है, उदाहरण सहित लिखिये।

४—कार्य-कारण भाव को प्रकट करने के अर्थ में कौन-सा लकार आता है? उदाहरण सहित समझाइये।

५—निम्न वाक्यों के क्रियापदों को शुद्ध या सिद्ध कीजिये।

(१) सेयं शकुन्तला पतिगृहं याति (२) एवं युवतयो गृहिणीपदं यास्यन्ति (३) अस्ति भागीरथीतीरे पाटलिपुत्रनामधेयं नगरम् (४) हस्ती ब्रूते कस्त्वम् (५) कर्हि गमिष्यते पाटलिपुत्रं भवान् (६) नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः (७) यावदहमेव तत्र गमिष्यामि (८) जगाम किमद्य स ग्रामम् (९) अभवत् राजाकिल शूद्रको नाम (१०) त्वं प्रतिष्ठां मा अगमः (११) यावज्जीवं सुखं जीवेत् (१२) तपोवनवासिनामुपरोधो मा बभूव (१३) ब्राह्मणानां वचनेषु संशयो मा भूत् (१४) बभूव सर्वं शुभशंसी तत्क्षणम् (१५) पञ्चभिरहोभिर्वयमेव तत्र गन्तास्मः (१६) ते विद्यालयमस्मिन्नहनि गन्तारः (१७) अरुणस्तमो भेत्ता (१८) किंवा भविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता तं चेत्सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् (१९) राजानः परिपालयन्तु वसुधाम् (२०) मे प्रतिवचनं देयाः (२१) तृष्णां छिन्द्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं माकुरु (२२) यथेष्टं चर वैदेहिः पन्थानः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्तु ते शिवाः (२३) सतां पीडनं मा भवत्विदानीम् (२४) आत्मानं सततं रक्ष (२५) सहसा विदधीत न क्रियाम् (२६) दोषं तु मे कंचित्कथय येन स प्रतिविधीयिष्यते (२७) वर्जयेत्तादृशं मित्रम् (२८) न मुह्येदर्थकृच्छ्रेषु न च धर्मं परित्यजेत् (२९) शाम्येत प्रत्युपकारेण नोपकारेण दुर्जनः (३०) सर्वतो जयमिच्छेत् पुत्रादिच्छेत्पराजयम्।

६. अर्हता और शक्ति के योग में कौन-सा लकार प्रयुक्त होता है, उदाहरण सहित लिखिये।

७. आज्ञा अर्थ में कौन-कौन लकार प्रयुक्त होते हैं? विधिलिङ् और आशीलिङ् में अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से क्या अन्तर है, उदाहरणपूर्वक समझाइये।

८. संभावना और संशय अर्थ में प्रयुक्त होने वाले लकारों का विवेचन कीजिए।

९. लोट् और विधिलिङ् का प्रयोग किन-किन स्थितियों में होता है, उदाहरण सहित लिखिये।

१०. समीप काल में प्रश्न करने पर क्रिया को किस लकार में रखा जाता जाता है? "वसन्तीह पुरा छात्राः" वाक्य में प्रयुक्त क्रिया लट् लकार में क्यों रखी गई है? यावत् और पुरा अव्ययों के योग में किस अर्थ में लट् लकार का प्रयोग होता है?

११. लिप्सासूचक किस सर्वनाम के योग में भविष्यदर्थ में कौन-कौन लकार प्रयुक्त होते हैं? उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिये।

कृदन्त विचार

कृत् प्रत्यय धातु के अन्त में लगते हैं और उनके योग से संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय के रूप बनते हैं। कृत् प्रत्ययों से सिद्ध शब्द कृदन्त कहलाते हैं।

कृत् और तिङ् प्रत्ययों में यह अन्तर है कि कृत् प्रत्ययों से सिद्ध कृदन्त शब्द संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय होते हैं, क्रिया नहीं; परन्तु तिङ् प्रत्ययों से सिद्ध तिङन्त सदा क्रिया ही होते हैं। कृत् और तद्धित प्रत्ययों में यह अन्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि तद्धित प्रत्यय सर्वदा किसी सिद्ध संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय में जोड़े जाते हैं; किन्तु कृत् प्रत्यय धातु में ही लगते हैं। कृदन्त कभी-कभी क्रिया का भी कार्य करता है।

कृत् प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैं—कृत्य, कृत् और उणादि।

कृत्य प्रत्यय

कृत्य प्रत्यय सात हैं—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, केलिमर्, यत्, क्यप्, और ण्यत्। ये प्रत्यय भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं। अंग्रेजी में जो कार्य Potential Participle—पोटेंशल् पार्टीसिप्ल् से लिया जाता है, वही कार्य संस्कृत में कृत्य प्रत्ययों से लिया जाता है। प्रायः ये विशेषण का कार्य करते हैं। यथा—स्नानीयं चूर्णम्—वह चूर्ण जिससे स्नान किया जाय, दानीयो विप्रः—दान देने योग्य ब्राह्मण, गन्तव्या नगरी—वह नगरी जहाँ जाना चाहिए, आदि। अभिप्राय यह है कि हिन्दी में जो कार्य चाहिए या योग्य द्वारा प्रकट किया जाता है, संस्कृत में वही कार्य कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों से सम्पन्न होता है।

तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९२; **केलिमर उपसंख्यानम्** (वा०)—तव्यत् (तव्य), तव्य, अनीमर् (अनीय) और केलिमर् (एलिम) ये चारों भाववाच्य और कर्मवाच्य में प्रायः सभी धातुओं में जोड़े जाते हैं। यथा—

पठ + तव्य = पठितव्य, पठ + अनीयर् (अनीय) = पठनीय, भू + तव्य = भवितव्य।

धातु	तव्य-तव्यत्,	अनीयर् (अनीय),	कलिमर् (एलिम)
गम्	गन्तव्य	गमनीय	
नी	नेतव्य	नयनीय	
ची	चेतव्य	चयनीय	
चर्	चरितव्य	चरणीय	
दा	दातव्य	दानीय	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भुज्	मोक्तव्य	भोजनीय	
भक्ष्	भक्षितव्य	भक्षणीय	
शंस्	शंक्षितव्य	शंसनीय	
सृज्	स्रष्टव्य	सर्जनीय	
छिद्	छेतव्य	छेदनीय	छिदेलिम
भिद्	भेत्तव्य	भेदनीय	भिदेलिम
पच	पक्तव्य	पचनीय	पचेलिम

२. **अचो यत्** ३।१।९७; **पोरदुपधात्** ३।१।९८—स्वरान्त धातुओं, पवर्गान्त धातुओं अथवा जिनकी उपधा में अकार हो, ऐसी धातुओं के अन्त में यत् प्रत्यय लगता है। यथा—दा + यत् (य) = देय, धा + यत् = धेय। निम्नांङ्कित रूप स्मरणीय हैं।

धातु		प्रत्यय (यत्)						
गै	=	गेय	लप्	=	लप्य	शक्	=	शक्य
छी	=	छेय	लभ्	=	लभ्य	गद्	=	गद्य
चि	=	चेय	आ + लभ्	=	आलभ्य	मद्	=	मद्य
नी	=	नेय	उप + लभ्	=	उपलभ्य	चर्	=	चर्य
शप्	=	शप्य	तक्	=	तक्य	वह्	=	वह्य
जप्	=	जप्य	शस्	=	शस्य			
			हन्	=	वध्य			

३. नीचे लिखी हुई प्रमुख धातुओं में क्यप् प्रत्यय लगता है। यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो धातु और प्रत्यय के बीच् 'त्' का आगम हो जाता है। यथा—

इ + क्यप् (य)	=	इत्य—जाने योग्य
स्तु ,,	=	स्तुत्य
शास् ,,	=	शिष्य
वृ ,,	=	वृत्य (वरणीय)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदृ (क्यप्)	=	आदृत्य—आदरणीय
जुष् ,,	=	जुष्य—सेव्य
मृज् ,,	=	मृज्य—पवित्र करने योग्य
भृ ,,	=	भृत्य
कृ ,,	=	कृत्य
वृष् ,,	=	वृष्य

मृज्, भृ, कृ तथा वृष् में विकल्प से ही क्यप् लगता है, क्यप् न होने पर ण्यत् होता है और क्रमशः मार्ग्य, भार्या, कार्य और वर्ष्य रूप बनते हैं।

४. ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४—ऋकारान्त अथवा व्यञ्जनान्त धातुओं में ण्यत् (य) प्रत्यय लगता है। इसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि या गुण हो जाता है। ण्यत् प्रत्यय लगने के पूर्व च् के स्थान पर ज् और क् के स्थान पर ग आदेश होता है। यथा—

कृ + ण्यत् (य) = क् + आर् + य = कार्य
पठ् + ण्यत् (य) = पाठ् + य = पाठ्य (अ के स्थान पर 'आ' वृद्धि हुई है)
वृष् + ण्यत् = व् + अर् + ष् + य = वर्ष्य (उपधा के ऋ के स्थान पर गुण हुआ है)

पच् + ण्यत्	=	पाक्य
मृज् + ण्यत्	=	मार्ग्य

यज् + ण्यत् = याज्य, याच् + ण्यत् = याच्य, रुच् + ण्यत् = रोच्य, ऋच् + ण्यत् = अ—र्च्य, त्यज् + ण्यत् = त्याज्य, भुज् + ण्यत् = भोज्य—भोग्य, वच् + ण्यत् = वाच्य—वाक्य, श्रु + ण्यत् = श्राव्य, पू + ण्यत् = पाव्य, लू + ण्यत् = लाव्य।

५. वसेस्तव्यत्कर्त्तरि णिच्च (वा०); **भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा** ३।४।६८—कुछ धातुओं के कृत्य प्रत्यय कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस् + तव्य = वास्तव्यः (बसनेवाला)
भू + यत् = भव्यः (होनेवाला)
गै + यत् = गेयः (गानेवाला)
प्रवच् + अनीयर् = प्रवचीय (व्याख्यान करनेवाला)
उपस्था + अनीयर् = उपस्थानीयः (निकट खड़ा होनेवाला)
जन + यत् = जन्य (पैदा होनेवाला)

आप्लु + ण्यत् = आप्लाव्यः (तैरनेवाला)
आपत् + ण्यत् = आपात्यः (गिरनेवाला)

भव्य से लेकर आपात्य तक विकल्प से कर्त्तृवाच्य में प्रयुक्त होते हैं।

भूतकाल के कृत् प्रत्यय

भूतकाल का बोध कराने के लिए प्रधान रूप से चार कृत् प्रत्यय काम में लाये जाते हैं—क्त, क्तवतु, क्वसु और कानच्, भूतकाल के ये प्रत्यय अंग्रेजी (Past Participle) का अर्थ व्यक्त करते हैं।

क्त और क्तवतु

उपर्युक्त दोनों प्रत्यय प्रायः सभी धातुओं के अनन्तर भूतकाल अथवा कार्य की समाप्ति का बोध कराने के लिए लगाये जाते हैं। इनमें से क् और उ का लोप होकर त और तवत् शेष रह जाते हैं।

क्त प्रत्ययान्त

पु०	न०	स्त्री०
पठ—पठितः	पठितम्	पठिता
स्ना—स्नातः	स्नातम्	स्नाता
पा—पातः	पातम्	पाता
भू—भूतः	भूतम्	भूता
कृ—कृतः	कृतम्	कृता
त्यज्—त्यक्तः	त्यक्तम्	त्यक्ता
तृप्—तृप्तः	तृप्तम्	तृप्ता
शक्—शक्तः	शक्तम्	शक्ता
सिच्—सिक्तः	सिक्तम्	सिक्ता

भुज् + क्त = भुक्तः
मुच् + क्त = मुक्तः
रिच् + क्त = रिक्तः
युज् + क्त = युक्तः
क्रुध् + क्त = क्रुद्धः
तुष् + क्त = तुष्टः
दह् + क्त = दग्धः
लिख + क्त = लिखितः
दृश् + क्त = दृष्टः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्तवतु प्रत्ययान्त

पठितवान्	पठितवत्	पठितवती	श्रु + क्तवतु = श्रुतवान्
स्नातवान्	स्नातवत्	स्नातवती	चुर् + क्तवतु = चोरितवान्
पातवान्	पातवत्	पातवती	लभ + क्तवतु = लब्धवान्
भूतवान्	भूतवत्	भूतवती	दृश् + क्तवतु = दृष्टवान्
कृतवान्	कृतवत्	कृतवती	लिख् + क्तवतु = लिखितवान्
त्यक्तवान्	त्यक्तवत्	त्यक्तवती	क्री + क्तवतु = क्रीतवान्
तृप्तवान्	तृप्तवत्	तृप्तवती	नी + क्तवतु = नीतवान्
शक्तवान्	शक्तवत्	शक्तवती	
सिक्तवान्	सिक्तवत्	सिक्तवती	

वद् + क्त = उक्त, वद् + क्तवतु = उक्तवत्, वस + क्त = उषित, वस + क्तवतु = उषितवान्, शृ + क्त = शीर्ण, शीर्णवत्; जृ + क्त = जीर्ण, जृ + क्तवतु = जीर्णवत्, छिद् + क्त = छिन्न, छिद् + क्तवतु = छिन्नवत्, भिद् + क्त = भिन्न, भिद् + क्तवतु = भिन्नवत्।

६. लिटः कानज्वा ३।२।१०६; क्वसुश्च ३।२।१०७—लिट्—परोक्ष भूत के अर्थ का बोध कराने के लिए क्वसु (वस्) और कानच् (आन) प्रत्यय जोड़े जाते हैं। क्वसु परस्मैपदी धातुओं के पश्चात् और कानच् आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर जोड़ा जाता है। यथा—

श्रु + क्वसु (वस्) = शु श्रुवस्, विविद्वस्, मृद् + क्वसु = ममृद्वस्, स्तु + क्वसु = तुष्टुवस्, भू + क्वसु = बभूवस्, कृ + क्वसु = चकृवस्, घस् + क्वसु = जक्षिवस्, इन् + क्वसु = ईयिवस्, स्था + क्वसु = तस्थिवस्, दा + क्वसु = ददिवस्, पा + क्वसु = पपिवस्, पच् + क्वसु = पेचिवस्, सद् + क्वसु = सेदिवस्, पत् + क्वसु = पेतिवस्, वच् + क्वसु = ऊचिवस्, वस् + क्वसु = ऊषिवस्, यज् + क्वसु = इजिवस्।

युध् + कानच् (आन) = युयुधान, रुच् + कानच् = रुरुचान, वन्द् + कानच् = ववन्दान, शिक्ष् + कानच् = शिशिक्षाण, व्यथ् + कानच् = विव्यथान, कृ + कानच् = चक्राण, वच् + कानच् = ऊचान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान काल के कृत् प्रत्यय

वर्तमान काल का बोध कराने के लिए शतृ, शानच्, शानन् और चानश् प्रत्यय धातु के अन्त में जोड़े जाते हैं। अंग्रेजी में (Present Participale) का जो अर्थ है, संस्कृत में वही अर्थ भूतकालीन कृदन्तों से निकलता है।

७. लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ३।२।१२४—कर्तृवाच्य में परस्मैपदी धातुओं के अनन्तर वर्तमान काल में शतृ (अत्) प्रत्यय लगता है। और आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर शानच् प्रत्यय जोड़ा जाता है। शानच् का केवल आन शेष रहता है। भ्वादि, दिवादि और तुदादि गणीय धातुओं के परे मुक् का आगम होने के कारण शानच् के स्थान पर मान हो जाता है। यथा—

धा० शतृ (अत्)

धातु	शतृ (अत्)				
धाव	धावत्	तॄ	तरत्	दिव्	दीव्यत्
वद्	वदत्	तप्	तपत्	सिव्	सीव्यत्
वस्	वसत्	नम्	नमत्	नश्	नश्यत्
भू	भवत्	चव्यू	चव्यत्	जॄ	जीर्यत्
जि	जियत्	फल्	फलत्	पुष्	पुष्यत्
कृष्	कर्षत्	पत्	पतत्	मुह्	मुह्यत्
शुच्	शोचत्	स्था	तिष्ठत्	स्पृश्	स्पृशत्
ग्लै	ग्लायत्	पा	पिबत्	भी	बिभ्यत्
ध्यै	ध्यायत्	घ्रा	जिघ्रत्	शास्	शासत्
गै	गायत्	गम्	गच्छत्	हा	जहत्
		दंश्	दंशत्		

शानच् (आन)

सेव + शानच् = सेवमान, वृत् + शानच् = वर्तमान, वृध् + शानच् = वर्धमान, व्यथ्—व्यथमान, सह—सहमान, जन्—जयमान, दीप्—दीप्यमान,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दद्—दद्यमान, बुध्—बुध्यमान, विद्—विद्यमान, मृ—म्रियमाण, हृ—ह्रियमाण, भ्री-भ्रियमाण, शी,—शयान, अधि + इ—अधीयान, तन्—तन्वान, मा—मिमान, क्री—क्रीणान।

आस धातु के परे शानच् के स्थान पर ईन होता है। यथा—आसीन।

८. विदेः शतुर्वसुः ७।१।३६—विद् धातु के बाद शतृ प्रत्यय के स्थान में विकल्प से वसु आदेश होता है। यथा—विद् + शतृ = विद्वत्, विद् + वसु = विद्वस्, पूङ्यजोः शानन् ३।२।१२८—वर्तमान काल का अर्थ प्रकट करने के लिए पू तथा यज् धातुओं के बाद शानन् प्रत्यय होता है। यथा—पू + शानन् = पवमानः, यज् + शानन् = यजमानः।

९. ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् ३।२।१२९-परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं में किसी की आदत, आयु अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए चानश् (आन) प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

भुज् + चानश् = भुञ्जानः—भोगं भुञ्जानः—भोग भोगने की आदत वाला, कवचं बिभ्राणः—कवच धारण करने की अवस्था वाला, शत्रुं निघ्नानः = शत्रु को मारने वाला।

भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

१०. लटः सद्वा ३।३।१४—भविष्यत् काल में परस्मैपदी धातु के परे कर्तृवाच्य में स्यतृ और आत्मनेपदी धातुओं में स्यमान प्रत्यय होते हैं। स्यमान परे रहने से लृट् लकार के सभी कार्य होते हैं। यथा—

भू + स्यतृ (स्यत्) = भविष्यत्, गम् + स्यतृ (स्यत्) = गमिष्यत्, श्रु—श्रोष्यत्, जि—जेष्यत्, या—यास्यत्, स्था—स्थास्यत्, पा—पास्यत्, दृश्—द्रक्ष्यत्, हन्—हनिष्यत्, मृ—मरिष्यत्, पत्—पतिष्यत्, कारि—कारयिष्यत्।

सेव् + स्यमान = सेविष्यमाण, वत् + स्यमान = वर्त्तिष्यमाण, व्यथ्—व्यथिष्यमाण, जन्—जनिष्यमाण, पत्—पत्स्यमान, सह्—सहिष्यमाण।

११. भविष्यत्काल में उभयपदी धातु के परे कर्तृवाच्य में स्यतृ और स्यमान दोनों प्रत्यय होते हैं। यथा—स्तु + स्यतृ (स्यत्) = स्तोष्यत्,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्तुस्यमान = स्तोष्यमाण, दा—दास्यत्, दास्यमान; धा—धास्यत्, धास्यमान; ग्रह—ग्रहीष्यत्, ग्रहीष्यमाण; कृ—करिष्यत्—करिष्यमाण।

स्यतृ और स्यमान से बने हुए शब्द विशेषण होते हैं, अतएव विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति का अनुसरण करते हैं।

तुमुन् (तुम्)

१२. **समानकर्तृकेषु तुमुन्** ३।३।१५८—यदि दो क्रियाओं का एक कर्त्ता हो तो उनमें से निमित्त अर्थबोधक धातु के परे तुमुन् प्रत्यय होता है। यथा—

दृश् + तुमुन् (तुम्) = द्रष्टुम्, भुज् + तुमुन् = भोक्तुम्, अधीङ्—अध्येतुम्, भू—भवितुम्, शी—शयितुम्, बुध्—बोद्धुम्, कृ—कर्तुम्, ग्रह—ग्रहीतुम्, दा—दातुम्, स्था—स्थातुम्, ज्ञा—ज्ञातुम्, जि—जेतुम्, यज्—यष्टुम्, सृज्—स्रष्टुम्, श्रु—श्रोतुम्, स्तु—स्तोतुम्, सह—सोढ़ुम्, गम्—गन्तुम्, हन्—हन्तुम्, वृत्—वर्तितुम्, नृत—नर्तितुम्।

क्त्वा (त्वा)

१३. **समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** ३।४।२१—दो क्रियाओं का एक कर्त्ता हो तो पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए धातु से आगे क्त्वा प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

ज्ञा + क्त्वा = ज्ञात्वा, ध्यै—ध्यात्वा, स्ना—स्नात्वा, पा—पीत्वा, स्था—स्थित्वा, दा—दत्त्वा, धा—हित्वा, चि—चित्वा, जि—जित्वा, श्रि—श्रित्वा, क्री—क्रीत्वा, श्रु—श्रुत्वा, हु—हुत्वा, भू—भूत्वा, कृ—कृत्वा, धृ—धृत्वा, स्मृ—स्मृत्वा, मुच्—मुक्त्वा, त्यज्—त्यक्त्वा, भुज्—भुक्त्वा, सृज्—सृष्ट्वा, छिद्—छित्वा, भिद्—भित्वा, बुध—बुद्ध्वा, क्षिप्—क्षिप्त्वा, लभ—लब्ध्वा, दृश्-दृष्ट्वा, पठ्—पठित्वा, यज्—इष्ट्वा, ग्रह्—ग्रहीत्वा, प्रच्छ्—पृष्ट्वा।

ल्यप् (य)

१४. **समासेऽनञ् पूर्वे क्त्वो ल्यप्** ७।१।३७—नञ् भिन्न अव्यय के साथ समास होने पर धातु के परे क्त्वा के स्थान पर ल्यप् होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ + घ्रा + ल्यप् (य) = आघ्राय, आद — आदाय, विधा — विधाय, अपिधा + अपिधाय, प्रस्था — प्रस्थाय, विहाय, व्याख्याय, विज्ञाय, सन्त्यज्य, विभज्य, प्रणिपत्य, प्राप्य, प्रक्रम्य, आरभ्य, निशम्य, विश्रम्य, आसेव्य, विजित्य, संचित्य, अधीत्य, विधृत्य, आवृत्य, प्रकृत्य, विसृज्य, प्रविश्य, आकृष्य ।

१५. ल्यप् परे रहने से हन्, मन्, तन् धातुओं के न का त; यम्, रम्, गम् धातुओं के म के स्थान पर विकल्प से त् एवं स्वप्, वस्, वप्, वच्, वह् और वद् धातु के व के स्थान पर उ होता है। यथा—आ—हन्—आहत्य, सम्मत्—सम्मत्य, वितत्—वितत्य, सं—यम्—संयत्य, संयम्य, विरम्य, विरत्य, प्रगम्य, प्रगत्य, आगम्य, आगत्य, आ—सञ्ज्—आसज्य, प्र—शंस्—प्रशस्य, सम—दंश्—सन्दश्य, प्र—मन्थ्—प्रमथ्य, अधि—शी—अधिशय्य, आपृच्छ्य, संगृह्य, विगृह्य, निगृह्य, वि—कृ—विकीर्य, उद्गीर्य, वितीर्य, प्रोह्य, अनु-वद—अनुद्य, प्र-वच्—प्रोच्य ।

णमुल् (अम्)

१६, आभीक्ष्ण्ये णमुल् च ३।४।२२—पौनः पुन्य अर्थ समझा जाय तो पूर्वकालिक क्रियावाचक धातु के परे णमुल होता है। यथा—

स्मृ + णमुल् = स्मारम्, श्रु—श्रावम्, स्तु—स्तावम्, नम्—नामम्, ग्रह्—ग्राहम्, भुज्—भोजम्, भिद्—भेदम्, स्पृश—स्पर्शम्, हस्—हासम्, सेव्—सेवम्, हन्—घातम्, अन्यथा—कृ—अन्यथाकारम्, एवं—कृ—एवंकारम्, इत्थंकारम्, कथंकारम् । णमुल् प्रत्यय से बने शब्द प्रयोगकाल में द्वित्व होते हैं।

भावार्थ कृत् प्रत्यय

१७. स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४—धातुओं से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए क्तिन् प्रत्यय लगता है और इससे शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—

गम् + क्तिन् (ति) = गति, कृ + क्तिन् (ति) = कृति, स्तुति, स्थिति; पा + क्तिन् = पीति, श्रु + क्तिन् = श्रुति, पच् + ति = पक्ति, रम् + ति = रति, नम् + क्तिन् = नति, गै + क्तिन् = गीति, प्री + क्तिन् = प्रीति, मन् + क्तिन् = मति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८. ल्युट् च ३।३।११५—धातुओं से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए ल्युट् प्रत्यय होता है। ल्युट् में अनुबन्ध का लोप होने पर केवल यु शेष रहता है और यु के स्थान पर अन होता है। यथा—हस्+ल्युट्=हस्+अन=हसन, या+आन=यान, दृश्+ल्युट्=दृश्+अन=दर्शन, श्रु—श्रवण, शी—शयन, साध्+अन=साधन, भज्—भजन, पठ्—पठन, पत्—पतन, मन्—मनन, भज्—भजन, छिद्—छेदन, वद्—वदन।

१९. भावे ३।३।१८—धातुओं से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए घञ् (अ) प्रत्यय का प्रयोग होता है। यथा—पच्+घञ्=पाकः, त्यज्+घञ=त्यागः, रुज्+घञ्=रोगः, भज्+घञ्=भागः, सृ—सारः, हृ—हारः, पद—पादः, भू—भावः, स्पृश—स्पर्शः, क्रुध्+घञ्=क्रोधः।

२०. एरच् ३।३।५६—इकारान्त धातुओं में अच् (अ) प्रत्यय लगता है। यथा—जि+अच्=जयः, नी+अच्=नयः, भि=अच्=भयम्।

२१. ऋदोरप् ३।३।५७—ऋकारान्त और उकारन्त धातुओं में अप् प्रत्यय जोड़ कर भाववाचक बनाते हैं। यथा—

कृ+अप् (अ)=करः, गृ+अप्=गरः—विष, यु—यवः—जोड़ना, लू—लवः—काटना, स्तु—स्तवः, पूञ्—पवः।

२२. यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् ३।३।९०—यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ्, और रक्ष् धातुओं में भावार्थक नङ् (न) प्रत्यय होता है। यथा—

यज्+नङ् (न)=यज्ञः, याच्—याञ्चा, यत्—यत्नः, विच्छ्—विश्नः, प्रच्छ—प्रश्नः, रक्ष्—रक्षणः।

२३. णिजन्त—प्रेरणार्थक धातुओं में तथा आस्, श्रन्थ, घट्ट, वन्द, और विद् धातुओं से भाववाचक बनाने के लिए युच् (अन) प्रत्यय होता है। और इससे बने शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं। यथा—

कृ+णिच्+युच्+टाप्=कारणा, हारणा, दारणा, आस्—आसना, श्रन्थ—श्रन्थना, घट्ट—घट्टना, वन्द—वन्दना, वेद-वेदना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

ण्वल्, तृच्

२४. ण्वुल्तृचौ ३।१।३३—धातु के उत्तर कर्तृवाच्य में ण्वुल् (वु) और तृच् (तृ) प्रत्यय होते हैं। यथा—करोतीति कारकः—कृ + ण्वुल् (वु) = कारकः, नायकः, पावकः, हन्—घातकः, दा—दायकः, जन्—जनकः, दृश्—दर्शकः यज्—याजकः, अधीङ्—अध्यापकः ग्रह्—ग्राहकः, भुज्—भोजकः।

करोतीति—कृ + तृच् = कर्ता, भृ = भर्ता, नी—नेता, या—याता, दृश्—द्रष्टा, वच्—वक्ता, श्रु—श्रोता, हन्—हन्ता, लभ्—लब्धा, यज्—यष्टा, वह्वोढा।

२५. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४—प्रेरणार्थक नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि, वर्धि, शोभि, रोचि धातुओं के अनन्तर ल्यु (अन); ग्रहि, स्था, मन्थि अयाचि, अवादि, विषयि आदि शब्दों के अनन्तर णिनि (इन्) और पच्, वद्, चक्ष्, पत् आदि धातुओं के अनन्तर अच् प्रत्यय होता है। यथा—

ग्रहणातीति—ग्रह् + णिन् (इन्) = ग्राही, नन्दयतीति—नन्द + ल्यु = (अन) = नन्दनः, शोभनः, रोचनः, पचतीति पच् + अच् (अ) = पचः।

अच्—प्लवतीति प्लवः—जलयान, चोरः, श्वायं पचतीति श्वपचः—चाण्डाल, अंशं हरति = अंशहरः—दायाद, भागहराः—भ्रातारः, पूजामर्हतिपूजार्हः—विद्वान्, विद्यार्हः, दण्डार्हः, कूपशयः—मण्डूक, गिरौ शेते—गिरिशः-शिव, गृह्णन्ति धारयन्ति आकर्षणादिना सर्वान् पदार्थानिति = ग्रहः।

ष्वुन्—नृत्यतीति = नर्तकः, खनतीति = खनकः रञ्जतीति = रजकः,

क—क्षिपतीति = क्षिपः, लिखः, बुधः, कृशः प्रीणातीति = प्रियः, प्रकर्षेण जानाति = प्रज्ञः, विज्ञः, गाः ददातीति = गोदः, धनदः।

अण्—ग्रन्थं करोति = ग्रन्थकारः, वृत्तिकारः, भाष्यकारः, तन्तून् वयति = तन्तुवायः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ट—दिवा करोति = दिवाकरः, विभां करोति = विभाकरः, प्रभाकरः, भास्करः, निशाकरः, वनेचरः, पुरःसराः, पूर्वसरः।

टक्—क्षीरं पिबति = क्षीरपः, मद्यपः, शत्रुं हन्ति = शत्रुघ्नः, कृतघ्नः।

ड—अध्वानं गच्छति = अध्वगः, पूरगः, सर्वगः, पत्रं गच्छतीति = पत्रगः, सर्प, विहायसा गच्छति = विहगः, न गच्छति = नगः, पङ्के जातः = पङ्कजम्, सरसि जातं = सरोजम्, बुद्धेः जातः = बुद्धिजः, आत्मनो जातः = आत्मजः, अनु—पश्चाज्जातः = अनुजः, अग्रे जातः = अग्रजः, क्लेशं हन्ति = क्लेशापहः।

खश्—जनानेजयति = जनमेजयः, विधुं तुदति = विधुन्तुदः = राहु।

खच्—प्रियं वदतीति = प्रियंवदा—भार्या, वशंवदः—पुत्र, परान् तापयति = परन्तपः—शूर, वाचं यच्छतीति—वाचंयमः—मितभाषी, पुरं दारयति = पुरंदरः, मेघं करोति = मेघंकरः-भयङ्करः, विश्वं बिभर्त्ति = विश्वम्भरः, पतिंवरा—कन्या, शत्रुञ्जयः, शत्रुन्तपः, अरिन्दमः।

क्विप्—वेदं वेत्ति = वेदवित्, मित्रं द्वेष्टि = मित्र द्विट्, वरं सूते = वीरसूः, ब्रह्म हतवान् = ब्रह्महा, भ्रूणहा, वृत्रहा, सुष्ठु कृतवान् = सुकृत्, पुण्यकृत्, शास्त्रकृत्, अग्निं चितवान् = अग्निचित्, विशेषेण राजति = विराट्, सम्राट्, प्रतिभूः।

क्विन्—मर्म स्पृशतीति = मर्मस्पृक्, ऋतौ यजति = ऋत्विक्, त्वामनुकरोति = त्वादृक्।

क्वनिप्—पारं दृष्टवान् = पारदृश्वा, मेरुदृश्वा, राजानं योधितवान् = राजयुध्वा, राजकृत्वा।

शीलधर्म वाचक प्रत्यय

२६. आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु ३।२।१४; तृन् १।२।१३५—शील, धर्म तथा भली प्रकार सम्पादन, इन तीनों में से किसी एक अर्थ को व्यक्त करने के लिए धातुओं से तृन् (तृ) प्रत्यय होता है। यथा—

कृ + तृन् = कर्तृ—कर्त्ता कटम्—चटाई बनाया करता है या चटाई बनाना जिसका धर्म है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७. अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच् ३।२।१३६—अलंकृ, निराकृ, प्रजन्, उत्पत्, उन्मद्, रुच्, अप्, त्रप्, वृत्, वृध्, सह और चर् धातुओं से शील, धर्म और भली प्रकार सम्पादन, इन तीनों में से किसी भी भाव को व्यक्त करने के लिए इष्णुच् (इष्णु) प्रत्यय होता है। यथा—

अलं करणं शीलमस्य = अलंकरिष्णुः—अलंकृत करनेवाला, निराकरिष्णुः—अपमान करनेवाला, प्रजनिष्णुः—पैदा करनेवाला, उत्पचिष्णुः—पकानेवाला, उत्पतिष्णुः—ऊपर उठानेवाला, उन्मदिष्णुः—उन्मत्त होनेवाला, रोचिष्णुः—अच्छा लगनेवाला, अपत्रपिष्णुः—लज्जा करनेवाला, वर्तिष्णुः—विद्यमान रहनेवाला, वर्धिष्णुः—बढ़नेवाला, सहिष्णुः—सहनशील, चरिष्णुः—भ्रमणशील।

२८. निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूञो वुञ् ३।२।१४६—निन्द, हिंस, क्लिश्, खाद्, विनाश्, परिक्षिप्, परिरट्, परिवाद्, व्ये, भाष्, असूय—इन धातुओं से शील, धर्म और भली प्रकार सम्पादन का अर्थ सूचित करने के लिए वुञ् (अक) प्रत्यय होता है। यथा—

निन्दितुं शीलमस्य = निन्दकः, हिंसकः, क्लेशकः, खादकः, विनाशकः, परिक्षेपकः, परिवादकः, असूचकः, परिवादकः, भाषकः, असूयकः।

२९. चलनशब्दार्थादकर्माद्युच् ३।२।१४८—चलना, शब्द करना अर्थवाली अकर्मक धातुओं के अनन्तर शीलाद्यर्थ में युच् (अन) प्रत्यय होता है तथा क्रोध करना, आभूषित करना अर्थोंवाली धातुओं से भी युच् प्रत्यय होता है। यथा—

चलितुं शीलमस्य सः चलनः (चल्+युच्), शब्दं कर्तुं शीलमस्य सः = शब्दनः, क्रोधनः, रोषणः, मण्डनः, भूषणः।

३० जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन् ३।२।१५५—जल्प, भिक्ष, कुट्ट, लुण्ट् और वृ धातुओं से शीलाद्यर्थ में षाकन् प्रत्यय होता है। यथा—

जल्पितुं शीलमस्य = जल्पाकः, भिक्षाकः, कुट्टाकः, वराकः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३१. स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्यः आलुच् ३।२।१५८—स्पृह्, ग्रह्, पत्, दय् और शी धातुओं के अनन्तर आलुच् प्रत्यय होता है तथा निद्रा, तन्द्रा और श्रद्धा के अनन्तर भी आलुच् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—

स्पर्द्धितुं शीलमस्य = स्पृहयालुः, दयालुः, निद्रालुः, गृहयालुः, तन्द्रालुः, श्रद्धालुः, शयालुः।

३२. सनाशंसभिक्ष उः ३।२।१६८—सन्नन्त—इच्छावाची धातुओं तथा आशंस् और भिक्ष धातु के अनन्तर उ प्रत्यय लगता है। यथा—

चिकर्षितुं शीलमस्य = चिकीर्षुः, जिज्ञासुः, जिगमिषुः, पिपासुः, जहासुः, बुभुक्षुः, आशंसितुं शीलमस्य = आशंसुः, भिक्षुः।

रु—दातुं शीमलमस्य = दारुः, धारुः, सेद्रुः, शद्रुः, रूद्रुः।

घुरच्—भङ्क्तुं शीलमस्य = भङ्गुरः, भासुरः, मेदुरः।

कुरच्—वेत्तुं शीलमस्य = विदुरः, भिदुरः, छिदुरः।

करप्—एतुं शीलमस्य = इत्वरः, नश्वरः, जित्वरः, गत्वरः।

ऊक—जागरितुं शीलमस्य = जागरूकः, वावदूकः।

र—नमितुं शीलमस्य = नम्रः, कम्प्रः, स्मेरः, हिंस्रः, दीप्रः।

खलर्थ कृत प्रत्यय

३३. ईषद्दुःसुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३।३।१२६—कठिन और सरल के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं से खल् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है। उक्त भाव का बोध कराने के लिए सु और ईषत् शब्द सुखार्थ तथा दुर् दुःखार्थ धातु के पूर्व जुड़े रहते हैं। यथा—सुखेन कर्तुं योग्यः सुकरः = सुकृ + खल् (अ) = सुकरः, दुःखेन कर्त्तुं योग्यः = दुष्कृ + खल् (अ) = दुष्करः।

३४. आतोयुच् ३।३।१२८—आकारान्त धातुओं के अनन्तर खल के अर्थ में युच् प्रत्यय होता है, खल् नहीं। यथा—

सुखेन पातुं योग्यः = सुपानः, ईषत्पानः, दुष्पानः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उणादि प्रत्यय

उणादि प्रत्यय वे कहलाते हैं जिनका पहला प्रत्यय उण् है। उणादि प्रत्ययों से ऐसे शब्द सिद्ध किये जाते हैं, जो अन्य किसी प्रत्यय से सिद्ध नहीं होते हैं। इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों का अर्थ भी प्रकरणानुसार बदलता रहता है। यथा—करोतीति कारुः (कृ + उण्)—शिल्पी और करनेवाला, वातीति वायुः, पिबत्यनेनेति पायुः, जयति रोगान् इति जायुः—औषधम्, स्वदते रोचते इति स्वादुः, साध्नोति परकार्यमिति साधुः।

परुषम् (पृ + उषच्), नह् + उषच् = नहुषः, कल् + उषच् = कलुषम्, तण्ड + उलच् = तण्डुलः, तन् + कयन् = तनयः, तन् + तुन् = तन्तुः, तम् + मालत् = तमालः, त + अलच् = तरङ्गः, पंश् + कु = पांशुः, पिशित् + अण् = पिशाचः, भा + तु = भानुः, शु + कक् = शुकः, सू + नु = सूनुः, शंकू + उ = शंकुः, पा + प = पापम्, पा + त्रम् = पात्रम्, नी + रक् = नीरम्, इष् + तकन् = इष्टका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टमोऽध्यायः

वैदिक संस्कृत व्याकरण

वैदिक साहित्य या वेदों की भाषा के दो रूप उपलब्ध हैं। सबसे प्रारम्भिक रूप तो मन्त्रों में प्राप्य है, जिनमें देवताओं का आह्वान किया गया है। विभिन्न संहिताओं में ये मन्त्र वर्णित हैं। ऋग्वेद का इसमें सबसे महत्वपूर्ण स्थान है और यह सबसे प्राचीन भी है। दूसरा काल ब्राह्मण ग्रन्थों का काल है, जिनकी रचना गद्य में हुई थी। कालान्तर में यह बाद वाली गद्य की शैली ही संस्कृत के रूप में अवशिष्ट रह गई और वैदिक भाषा का प्रारम्भिक रूप लुप्त प्रायः हो गया।

अन्य संहिताओं की अपेक्षा ऋग्वेद की भाषासामग्री अधिक प्राचीन, विस्तृत और समृद्ध है अतः अन्य बाद की वैदिक रचनाओं ने व्याकरण की दृष्टि से भी इसे ही अपना आधार माना।

वेद में सन्धि-व्यवस्था

वेद का बहुत बड़ा भाग छन्द में निर्मित हुआ है। स्वरमाधुर्य बनाये रखने के लिए गेय रूप में रचना हुई तथा सन्धि के नियमों को विशेष दृढ़ता के साथ अपनाया गया। सन्धि मूलतः शब्द-विच्छेद के निराकरण और उनके समीकरण पर ही आधारित है। यद्यपि सन्धि का मूल आधार एक ही है, किन्तु फिर भी इसके दो रूप हैं बाह्य और आभ्यन्तर।

सन्धि का बाह्य रूप शब्द में स्थित वर्णों के आदि और अन्तिम परिवर्तनों पर आधारित है और सन्धि का आभ्यन्तर विभाग धातुज और संज्ञा शब्दों तथा उनमें लगाये जाने वाले प्रत्ययों के आधार पर किया गया है।

(अ) बाह्य संधि के कुछ अपवाद भी हैं (जो इसमें इसकी प्रारम्भिक अवस्था से चले आये हैं) कुछ ऐसे शब्द हैं जिनमें समास होता है, कुछ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संज्ञा शब्दों के अन्तिम वर्ण हैं जिनके आगे कारक लगे रहते हैं (जैसे—भ्याम्, भिस्, भ्यस् आदि)।

स्वर-सन्धि

स्वर-संधि का तात्पर्य है स्वर सम्बन्धी विकार और उससे उत्पन्न होने वाला मेल। स्वर-संधि के बाह्य और अन्तः की दृष्टि से दो भेद हैं। बाह्य सन्धि शब्द और विभक्ति में होती है; जैसे—हर + ए = हरे

बाह्य संधि के पाँच भेद निम्न प्रकार हैं—

१. दीर्घ-संधि २. गुण-संधि ३. वृद्धि-संधि

४ पररूप-संधि ५. पूर्वरूप-संधि

दीर्घ-संधि—'अकः सवर्णे दीर्घः' अर्थात् सवर्ण परे रहने पर 'अच्' दीर्घ होते हैं। यथा—

इह	+	अस्ति	=	इहास्ति
त्वा	+	अग्ने	=	त्वाग्ने
वि	+	इदम्	=	वीदम्
सु	+	उक्तम्	=	सूक्तम्

नोट—वेद में 'बहुलं छन्दसि' सूत्र के अनुसार कहीं-कहीं दीर्घ-सन्धि नहीं होती और प्रयोग ज्यों के त्यों रह जाते हैं। जैसे—

मनीषा	+	अग्नि	=	मनीषा अग्नि
सु	+	उर्ध्वम्	=	सु उर्ध्वम्
सु	+	उक्तः	=	सु उक्तः

गुण-संधि—लौकिक संस्कृत में 'अदेङ् गुणः' सूत्र से गुण संज्ञा की जाती है और आद्गुणः सूत्र से गुण कर देते हैं, अर्थात् आ + इ मिलकर ए का रूप धारण कर लेते हैं।

वैदिक संस्कृत में भी गुण-सन्धि के उदाहरण लौकिक संस्कृत के समान ही हैं, पर 'बहुलं छन्दसि' के अनुसार कहीं-कहीं यह सन्धि नहीं भी होती है। इस सन्धि के उदाहरण निम्न प्रकार हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिता	+	इव	=	पितेव
गंगा	+	उदकम्	=	गङ्गोदकम्
इह	+	इहा	=	इहेहा
आ	+	इम	=	एम
आ	+	उमा	=	ओमा
सप्त	+	ऋषयः	=	सप्तर्षयः

नोट—वेद में कभी-कभी यह गुण-सन्धि वृद्धि के रूप में भी परिवर्तित हो जाती है—

आ	+	इभिः	=	ऐभिः

वृद्धि सन्धि—लौकिक संस्कृत में 'वृद्धिरादैच्' सूत्र से वृद्धि संज्ञा होकर 'वृद्धिरेचि' सूत्र से वृद्धि होती है, अर्थात् आ + ए = ऐ ।

वैदिक संस्कृत में वृद्धि-सन्धि कहीं-कहीं गुण-संधि के रूप में भी परिवर्तित हो जाती है, यथा—

वृद्धि गंगा	+	ओघः	=	गंगौघः
तस्मा	+	इक्षि	=	तस्मैक्षि
गुण सुजीव	+	ओवा	=	सुजीवोवा
उप	+	ऋचति	=	उपर्चति
अ	+	ऋचतु	=	अर्चतु

पररूप संधि—'एङि पररूपम्' सूत्र से आ का पररूप हो जाता है। अ पर स्वर के रूप में परिवर्तित हो जाता है—

प्र	+	एजते	=	प्रेजते
उप	+	ओषति	=	उपोषति

'अज्झीनं वर्णम् परेण संयोज्यम्' अर्थात् इस संधि में अच् रहित वर्णों का दूसरे वर्ण के साथ संयोग होता है।

पूर्वरूप संधि—'एङः पदान्तादति' अर्थात् पद के अन्त में रहनेवाला अ वर्ण पूर्व स्वर के रूप में परिणत हो जाता है, अर्थात् 'अ' खण्डाकार ऽ हो जाता है, जैसे—

हरे	+	अव	=	हरेऽव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु वेद में कभी-कभी इस संधि का अकार भी देखा जाता है। "प्रकृत्यानिवादमप्यरे" इस नियम के अनुसार यह संधि वैदिक प्रयोगों में कहीं-कहीं नहीं होती है।

जैसे—ते + अवदन्

एवं नियमानुसार तेऽवदन् होना चाहिए था पर वेद में ते अवदन् प्रयोग ही मिलता है। कहीं-कहीं यह संधि अनियमित भी पाई जाती है।

व्यंजन-संधि

व्यंजन-सन्धि के भी बाह्य और अन्तः दो भेद हैं। पूर्वपद में सन्धि के योग्य निम्न वर्ण बताए जाते हैं।

क, ङ्, ट, त, ञ, प, म और विसर्ग,

इन आठ वर्णों में से ङ् और ट का प्रयोग तो वेद में बहुत कम पाया जाता है अवशेष छः वर्णों का प्रयोग बहुलता से मिलता है।

१. Charge of quality वर्ण-परिवर्त्तन—इसके अन्तर्गत क, ट, त और प इन चारों का क्रमशः अपने ही वर्ग के तीसरे वर्ण में अर्थात् ग ड द और ब के रूप में परिवर्त्तन होता है जब कि पर पद का प्रथम अक्षर कोई स्वर या मृदु व्यंजन सामने हो, यथा—

अर्वाक्	+	राधः	=	अर्वाग्राधः
वाक्	+	ईशः	=	वागीशः
तत्	+	वा	=	तद्वा
जगत्	+	वाजेभिः	=	जगद् वाजेभिः
अप्	+	जः	=	अब्जः
जगत्	+	ईशः	=	जगदीशः

यदि क, ट, त और प के सामने न या म हों तो वे अपने ही वर्ग में बदल जाते हैं। जैसे—

आसीत्	+	नो	=	आसीन्नो
षट	+	नवति	=	षण्णवति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. Change of position स्थिति-परिवर्त्तन—इस नियम के अनुसार त, न और विसर्ग का परिवर्त्तन होता है। त और न के सामने अगर चवर्ग हो तो ये चवर्गीय हो जाते हैं।

तत्	+	चक्षु	=	तच्चक्षु
दातयत्	+	जनः	=	दातयज्जनः
रोहित्	+	श्यावः	=	रोहिच्छ्यावः

३. पूर्वपद के अन्त का न अनुस्वार में बदल जाता है जब कि दूसरे पद का पहला अक्षर स्वर हो और पूर्वपद से पहले दीर्घ आ हो।

महान्	+	इन्द्रः	=	महाँ इन्द्रः
देवान्	+	अच्छा	=	देवाँ अच्छा

'दीर्घादति समानपदे' और 'आतो इटि नित्यम्' इन दो सूत्रों से उक्त पद सिद्ध होते हैं।

(२) यदि सामने चवर्ग हो तो अन्तिम 'न' को ञ और अनुस्वार हो जाता है।

जैसे—उर्द्धवान् + चरथाय = उर्द्धवाँचरथाय

(३) अन्तिम (न्) बदलता नहीं है अगर सामने त हो तो।

जैसे—त्वावान् + तमन्न = त्वावान्तमन्न

(४) अन्तिम 'न्' का अनुस्वार हो जाता है यदि सामने 'ल' हो।

जैसे— जिगीवान् + लक्षम् = जिगीवाँलक्षम्

अन्तिम 'म' (१) पहले पद का अन्तिम 'म' सामने स्वर आने पर नहीं बदलता है और स्वर-संधि हो जाती है।

जैसे—अग्निम् + ईळे = अग्निमीळे

(२) अन्तिम 'म' को अनुस्वार हो जाता है सामने 'य र ल व' और श ष स ह हो तो; जैसे—होतारम् + रत्नधातमम् = होतारं रत्नधातमम्।

(३) पहले पद के अन्तिम 'म्' का यदि अगले पद का कोई स्वर हो हो तो उसी वर्ग का अन्तिम वर्ण हो जाता है तथा उस वर्ग का अक्षर सामने हो तो भी; यथा—भद्रम् + करिष्यसि = भद्रङ्करिष्यसि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तिम विसर्ग (:)—(१) क् ख् प् फ् यदि परे हो तो पूर्वपद के विसर्ग का क्रमशः विकल्प से जिह्वामूलीय एवं उपध्मानीय हो जाते हैं।

यथा—विष्णोः + कर्माणि = विष्णो≍कर्माणि या विष्णोः कर्माणि

नॄ + पाही = नॄँ पाही नॄँः पाही

(२) विसर्ग (:) के परे श रहने पर कभी तो विसर्ग ही बना रहता है और कभी-कभी विसर्ग का श हो जाता है—हरिः+शेते = हरिश्शेते, हरिःशेते।

(३) स्वरों के सामने रहने पर विसर्ग का र हो जाता है। जैसे ऋषिभिः + इड्य = ऋषिभिरीड्यः।

(४) 'अ' के अलावा दूसरे स्वरों के सामने रहने पर कहीं-कहीं विसर्ग का लोप भी हो जाता है। जैसे—सः + आगच्छति = स आगच्छति।

(५) एषः के परे यदि 'य' को छोड़ कर और कोई व्यंजन हो तो विसर्ग का लोप हो जाता है।

जैसे—एषः + बालः = एष बालः।

परन्तु 'य' के रहते हुए नहीं होता।

जैसे—एषः + युतते।

मुख्य रूप से संस्कृत के अधिकांश शब्द धातुओं से निष्पन्न हुए हैं। धातुओं में कृदन्त या तद्धित प्रत्यय लगाने पर वे शब्द बन जाते हैं। शब्द रूपों को प्रधानतः हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. Noun संज्ञा शब्द रूप।

२. Pronoun सर्वनाम शब्द रूप।

३. Numeral संख्यावाची शब्द रूप।

विशेषण शब्द रूप भी अलग से गिनाये जा सकते हैं परन्तु संज्ञा शब्द रूपों में ही उनका अन्तर्भाव हो जाता है।

वैदिक व्याकरण में तीन लिंग, तीन वचन और आठ कारक होते हैं। पाणिनि ने अपने व्याकरण में छः कारक माने हैं—

1. Nominative—कर्त्ता
2. Vocative—सम्बोधन
3. Accusative—कर्मकारक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4. **Intrumental**—करण
5. **Dative**—सम्प्रदान
6. **Ablative**—अपादान
7. **Genitive**—सम्बन्ध
8. **Locative**—अधिकरण

वैदिक काल में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। अतः विभक्तियों के रूपों में एक ही विभक्ति के दो तीन रूप भी मिलते हैं।

जैसे राम शब्द के प्रथमा के बहुवचन में—रामः और रामासः ये दो रूप उपलब्ध हैं।

इसी तरह तृतीया के एकवचन में—रामेण, रामा ये दो रूप और बहुवचन में—रामैः तथा रामेभिः इत्यादि।

इस प्रकार वैदिक शब्द रूपों में और लौकिक संस्कृत के शब्द रूपों में जो भेद उपलब्ध है वह निम्नलिखित सूत्रों से सिद्ध होता है—

१. 'छन्दसि पुनर्वस्वोरेक वचनम्'

२. विशाखयोश्च

३. षष्ठी युक्तस्य छन्दसि वा

४. छन्दसि बहुलम्

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि कुछ शब्द तो ऐसे हैं जिनमें परिवर्त्तन किया जा सकता है, उन्हें स्त्रीलिंग, पुलिंग आदि में बदला जा सकता है और कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो सदा एक रूप रहते हैं। कुछ शब्दों के रूप नियमित होते हैं और कुछ शब्दों के रूपों में कहीं-कहीं अनियमितता आ जाती है।

अकारान्त शब्दों की विशेषताएँ

१. प्रथमा विभक्ति और द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में—देवा, देवौ 'सुपाम्, सुलुक्' सूत्र से प्रत्यय औ, का लोप हो जाता है और लोप होने पर भी दीर्घ हो जाता है।

२. प्रथमा विभक्ति के बहुवचन में देवा, और देवासः ये दो रूप बनते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. तृतीया विभक्ति के एक वचन में देवेन और देवा, अश्वेन और अश्वा, रामेण रामा आदि।

४. तृतीया के बहुवचन में देवेभिः और देवैः ये दो रूप बनते हैं। (बहुलम् छन्दसि) सूत्र ही यहाँ प्रमाण है।

५. प्रथमा व द्वितीया विभक्ति के द्विवचन में विश्व शब्द के विश्वे और विश्व ये दो रूप बनते हैं।

६. प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में विश्वानि, विश्वा और विश्व ये तीन रूप सिद्ध होते हैं।

विश्वानि और विश्व ये रूप तो शेष "छन्दसि बहुलम्" सूत्र के अनुसार बनते हैं, तथा विश्व रूप 'व्यक्तयोर्बहुलम्' सूत्र के आधार पर निष्पन्न होता है।

अकारान्त प्रिय (पुंल्लिङ्ग)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता—	प्रियः	प्रियौ, प्रिया	प्रियाः, प्रियासः
कर्म—	प्रियम्	प्रियौ, प्रिया	प्रियान्
करण—	प्रियेण	प्रियाभ्याम्	प्रियैः, प्रियेभिः
सम्प्रदान—	प्रियाय	"	प्रियेभ्यः
अपादान—	प्रियात्	"	"
सम्बन्ध—	प्रियस्य	प्रियोः, प्रिययोः,	प्रियाणाम्
अधिकरण—	प्रिये	प्रियोः, प्रिययोः,	प्रियेषु
सम्बोधन—	हे प्रिय	हे प्रियौ	हे प्रियाः

आकारान्त प्रिया शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रिया	प्रिये	प्रियाः
द्वि०	प्रियाम्	प्रिये	प्रियासः
तृ०	प्रियया, प्रिया	प्रियाभ्याम्	प्रियाभिः
च०	प्रियायै	"	प्रियाभ्यः
पं०	प्रियायाः	"	प्रियाभ्यः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
ष०	प्रियायाः	प्रिययोः	प्रियानाम्
स०	प्रियायाम्	प्रिययोः	प्रियासु
सम्बो०	हे प्रिये	हे प्रिये	हे प्रियाः

प्रियम् (नपुंसक लिंग)

प्रियम्	प्रिये	प्रियानि, प्रिया

ह्रस्व इकारान्त शब्दों की विशेषताएँ

अग्नि

१. अग्नि शब्द के प्रथमा के द्विवचन में अग्नि और अग्ना बनता है ।
२. प्रथमा के बहुवचन में अग्न्यः, अगनयः
३. तृतीया के एक वचन में अग्निना और अग्नना ये दो रूप बनेंगे ।
४. सप्तमी के एक वचन में अग्नौ और अग्ना ये रूप बनते हैं ।

इकारान्त अग्नि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अग्नि	अग्नी, अग्ना	अग्नयः, अगनयः
द्वि०	अग्निम्	अग्नी, अग्ना	अग्न्यः
तृ०	अग्निना, अगनना	अग्निभ्याम्	अग्निभिः
च०	अग्नये	"	अग्निभ्यः
पं०	अग्नेः, अग्न्ये	अग्निभ्याम्	अग्निभ्यः
ष०	अग्नेः, अग्न्ये	अग्नयोः	अग्निनाम्
स०	अग्नौ, अग्ना	अग्न्योः	अग्निषु
सम्बो०			

ईकारान्त देवी शब्द

१. प्रथमा के द्विवचन में देव्यो और देवी ये दो रूप बनते हैं ।
२. प्रथमा के बहुवचन में देव्यः और देवी ये दो रूप बनेंगे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	देवी	देव्यौ, देवी	देव्यः, देवी
द्वि०	देवीम्	देव्यौ, देवी	देवीः
तृ०	देव्या	देवीभ्याम्	देवीभिः
च०	देव्यै	देवीभ्याम्	देवीभ्यः
पं०	देव्याः	देवीभ्याम्	देवीभ्यः
ष०	देव्याः	देव्योः	देवीनाम्
स०	देवि	देव्योः	देवीषु
संम्बो०	हे देवि	हे देव्यौ	हे देव्यः

उकारान्त तनु शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तनुः	तनू	तन्वा, तन्वः
द्वि०	तनुम्	तनू	तन्वः
तृ०	तन्वा	तनुभ्याम्	तनुभिः
च०	तन्वे	तनुभ्याम्	तनुभ्यः
पं०	तन्वः	तनुभ्याम्	तनूभ्यः
षः	तन्वः	तन्वोः	तनुनाम्
सः	तनुः, तन्वी	तन्वोः	तनुषु
संबो०			

ऋकारान्त दातृ शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दाता	दातारौ, दातारा,	दातारः
द्वि०	दातारम्	दातारौ, दातारा	दातॄन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
च०	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
पं०	दातुः	"	दातृभ्यः
ष०	दातुः	दात्रोः	दातॄणाम्
स०	दातरि	दात्रोः	दातृषु
सम्बो०	हे दाता	हे दातारौ	हे दातारः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युष्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुचवन
प्र०	त्वम्	युवाम्, वाम्	यूयम्
द्वि०	त्वाम्	युवाम्, वाम्	युष्मान्
तृ०	त्वया, त्वा	युवाभ्याम्	युष्माभिः
च०	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
पं०	त्वद्	"	युवद्
ष०	तव	युवयोः युवोसः,	युष्माकम्
स०			

अस्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्	आवाम्	अस्मान्
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
च०	मह्यम्, मह्या	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
पं०	मद्	आवद्	अस्मद्
ष०	मम	आवयोः	अस्माकम्
स०	मयि	आवयोः	अस्मे, अस्मासु

तत् (पुल्लिंग)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सः	तौ, ता	ते
द्वि०	तम्	तौ, ता	ताम्
तृ०	तेन	ताभ्याम्	तेभिः
च०	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पं०	तस्य	तयोः	तेषाम्
ष०	तस्मिन्, सस्मिन्	तयोः	तेषु
स०			

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रीलिंग तत्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सा	ते	ता
द्वि०	ताम्	ते	ता
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभिः
च०	तस्यै	"	ताभ्यः
पं०	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
ष०	तस्याः	तयोः	तासाम्
स०	तस्याम्	तयोः	तासु

नपुंसक लिंग तत्

प्र०	तद्	ते	ता, तानि

वाक्

प्र०	वाक्	वाचा, वाचौ	वाचः
द्वि०	वाचम्	" "	वाचः
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
स०	वचि	"	वक्षु

भू धातु लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवति	भवतः	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथः	भवथ
उ० पु०	भवामि	भवावः	भवामः, भवामसि

लङ् लकार Imperfect

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोट् लकार Imperative

इसमें केवल अन्य पुरुष और मध्यम पुरुष के रूप भिन्न हैं, वेद में उत्तम पुरुष Subjunctive mood के अनुसार होता है।

प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव, भवतात्	भवतम्	भवत

लेट् लकार Subjunctive mood

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवाति, भवात्	भवातः	भवान्
म० पु०	भवासि, भवास्	भवाथः	भवाथ
उ० पु०	भवानि, भवा	भवावः	भवामः

इण् (गतौ) धातु

Present लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	एति	इतः	यन्ति
म० पु०	एसि	इथः	इथन् इथ
उ० पु०	एमि	इवः	इमसि, इमः

Imperfect लङ् लकार

प्र० पु०	ऐत्	ऐताम्	आयन् , अयन्
म० पु०	ऐः	एतम्	एत
उ० पु०	आयम्	ऐव, ऐतम	ऐम

Imperative लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	एतु	ईताम्	यन्तु
म० पु०	इहि	इतम	इत

लेट् लकार के अनुसार

विधिलिङ् + लोट् = Subjunctive Mood

प्र० पु०	अयात्, अयाति	अयातः	अयान्
म० पु०	अयाः, अयासद्	अयाथः	अयाथ
उ० पु०	अयानि	अयाव	अयाम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Optative विधिलिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयाताम्	ईयुः
म० पु०	इयः	इयातम्	इयात
उ० पु०	इयाम्	इयाव	इयाम

ब्रूञ् धातु

Present—लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ब्रूते, ब्रुवे	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूसे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

Imperfect—लङ् लकार

प्र० पु०	अब्रूत्	अब्रुवताम्	अब्रुवन्
म० पु०	अब्रूथ	अब्रूवाथाम्	अब्रुध्वम्
उ० पु०	अब्रुवि	अब्रूवहि	अब्रूमहि

Imperative—लोट् लकार

प्र० पु०	ब्रुवाम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
म० पु०	ब्रूढ्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्

Subjunctive mood—लेट् लकार

प्र० पु०	ब्रुवते	ब्रूवैते	ब्रूवन्त
म० पु०	ब्रुवसे	ब्रुवैथे	ब्रुवैध्वे
उ० पु०	ब्रुवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

Optative विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	ब्रुवीत्	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथ	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ० पु०	ब्रवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृञ् धातु—करना

Present लट् लकार

प्र० पु०	कृणोति	कृणुतः	कृण्वन्ति
म० पु०	कृणोसि	कृणुथः	कृणुथ
उ० पु०	कृणोमि	कृण्वः	कृण्मः, कृण्मसि

Imperfect लङ्

प्र० पु०	अकृणोत्	अकृणुताम्	अकृण्वन्
म० पु०	अकृणोः	अकृणुतम्	अकृणुत
उ० पु०	अकृण्वम्	अकृण्व:	अकृण्मः

Imperative लोट् लकार

प्र० पु०	कृणोतु	कृणुताम्	कृण्वन्तु, कृणोतन्
म० पु०	कृणु, कृणुतात्, कृणुहि,	कृणुतम्	कृणुत

Subjunctive mood लेट् लकार

प्र० पु०	कृणवत्	कृणवताः	कृणवन्
म० पु०	कृणवः	कृणवथाः	कृणवथा
उ० पु०	कृणवानि, कृणवः	कृणवावः	कृणवामः

Optative विधिलिङ्

प्र० पु०	कृणुयात्	कृणुयताम्	कृणुयुः
म० पु०	कृणुय	कृणुयतम्	कृणुयत
उ० पु०	कृणुयाम्	कृणुयाव	कृणुयाम

Injunctive mood

लौकिक व्याकरण में इच्छा, आदेश, प्रार्थना और विधि का भाव प्रदर्शित करने के लिए विधिलिङ् लकार का प्रयोग होता है। पर वेद में इन्हीं भावों के साथ क्रिया के मूल रूप को अभिव्यक्त करने के लिए Injunctive-mood का प्रयोग होता है। वैदिक व्याकरण में Subjunctive mood और Injunctive mood के अर्थ भेद का पृथक्करण बहुत कठिन है; यद्यपि साधनिका काल में Subjunctive mood में अडागम होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ वैयाकरणों का मत है कि Subjunctive mood के रूपों के पूर्व अडागम कर देने से Injuctive mood के रूप बन जाते हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि लङ् लकार के रूपों से अडागम हटा देने पर Injunctive mood के रूप होते हैं। पाणिनि ने यद्यपि Injunctive mood को पृथक् रूप से नहीं कहा है किन्तु विधिलिङ् द्वारा इस Mood के अर्थ को खींच लिया है। संक्षेप में हम इतना ही कह सकते हैं कि लङ् लकार के रूपों में से अडागम हटा देने पर जो रूप अवशेष रहे वही Injunctive mood है।

Infinative तुमुन्

पाणिनी के पश्चात् और पूर्ववर्त्ती सभी विद्वानों के अनुसार तुमुनान्त वे शब्द हैं जिनके अब पूरे रूप सब विभक्तियों में नहीं मिलते हैं। एक समय था जब इनके रूप पूरी विभक्तियों और वचनों में मिलते थे।

पाश्चात्य और पूर्वीय विद्वानों में तुमनन्त शब्दों के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। प्रथम हम पाणिनी के अनुसार तुमनन्त रूपों का विवेचन करेंगे अनन्तर मेकडॉनल और विन्टरनिट्ज के अनुसार।

पाणिनी के अनुसार यह सर्व विदित है कि संस्कृत भाषा के सभी शब्द धातुओं से निष्पन्न होते हैं।

धातुओं में कृत् और तद्धित प्रत्यय जोड़ कर संज्ञा सर्वनाम और विशेषण वाचक शब्द बनाये जाते हैं।

जो शब्द कृत् प्रत्यय लगाकर बनते हैं वे दो प्रकार के हैं, प्रथम वे जिनके रूप चलते हैं अर्थात् (declirable) और दूसरे वे जिनके रूप नहीं चलते अर्थात् (Undeclirable) तुमुन् के लिए निम्नसूत्र स्मरणीय हैं—

१. तुमुन्ण्वुलौ क्रियायाम् क्रियार्थायाम् समानकर्तृकेषु तुमुन्—

२. इच्छार्थेषु एककर्तृकेषु धातोस्तुमुन् स्यात्—इच्छार्थक जहाँ एक एक कर्ता हो वहाँ धातु से तुमुन् होता है। जैसे – इच्छसि भोक्तुम्।

३. शकृक्तिधृषज्ञानाघटरमलभ क्रमकम संहारहास्यतकेषु तुमुन्—

४. पर्याप्ति वचनेषु अलमर्थेषु तुमुन्—जैसे अलम् भोक्तुम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. कालसमयवेलासुतुमुन्—काल, समय और वेला शब्दों से तुमुन् प्रत्यय होता।

लौकिक संस्कृत क तुमुन् प्रत्यय ही वेद में तुमुन् है। इस अर्थ में वेद में निम्न प्रत्यय भी आते हैं।

तुमुन् अर्थ में—से, सेन, असेन, कसे, कसेन, ध्यै, अध्यै, कध्यै, सध्यै, तवेङ्, तवेन, आदि।

से	वक्षसे, दयसे
सेन	जीवसेन
ध्वै	मादयध्वै
ध्यै	पिबध्यै
तवेङ्	सूतवे
तवेन	कर्त्तवे

इसके अतिरिक्त और भी शब्द तुमुन् अर्थ में प्रयुक्त मिलते हैं—

प्रियै	प्रयातुम्
रोहिण्यै	रोढुम्
अव्यथिष्यै	अव्यथितुम्

दृशे विख्येच—

दृशे	द्रष्टुम्
विख्ये	विख्यातुम्

पाश्चात्य विद्वान् मैकडॉनल के अनुसार तुमुन् उन प्राचीन शब्द रूपों का अवशेष है जो शब्द सभी विभक्तियों और वाक्यों में मिलते थे किन्तु समय की गति से आज केवल चतुर्थी के अर्थवाला ही रूप अवशेष रह गया है बाकी सब रूप लुप्त हो गये हैं।

वेद का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि तुमुनार्थक कई शब्द प्रचलित थे। मैकडॉनल ने पाँच प्राचीन रूपों को प्रस्तुत किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीया तुमुन्	असदश्न् एमिध्यम्
तृतीया ”	
चतुर्थी ”	इषे, प्रच्छे
पंचमी तुमुन्	विलिखः, निमिषः, अतृदः
सप्तमी तुमुन्	समचक्षसि

हम पाश्चात्य विद्वानों के इस मत से सहमत हैं कि एक समय ऐसा अवश्य था जब सब विभक्तियों और सब वचनों में तुमुन् के रूप व्यवहृत होते थे। उदाहरण के लिए यष्टुम् शब्द को ले लीजिए इसकी रूपावलि द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी और सप्तमी में उपलब्ध होती है। पाणिनि ने ऐसे ही तुमुनान्त शब्दों को स्वीकार किया है, जिनकी रूपावली नहीं चलती।

भाषा-शास्त्र का यह नियम है कि व्याकरणाचार्य के हाथों में जाने पर भाषा बँध जाती है और वह रूढ़िग्रस्त हो जाती है।

Gerund क्त्वा प्रत्यय

मैकडॉनल ने क्त्वा प्रत्यय के लिए gerund शब्द का प्रयोग किया है। इसे पूर्वकालिक क्रिया कहा जाता है।

वेद में क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर तीन प्रत्यय हैं।

क्त्वि, क्त्वा, क्त्वाय

इन तीनों प्रत्ययों का व्यवहार पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में होता है। मैकडॉनल ने वैदिक व्याकरण में विस्तार से इन तीन प्रत्ययों को छः कर दिया है।

१.	क्त्वा	गत्वा, भुक्त्वा
२.	त्वाय	गत्वाय
३.	त्वीनम्	इष्ट्वीनम्
४.	त्वी	स्नात्वी
५.	त्य	निहत्य
६.	य	आदाय

पाणिनी के अनुसार वैदिक व्याकरण में भी त्वा और ण्वुल ये दो प्रत्यय होते हैं, पर मैकडॉनल ने अन्वेषण कर उपयुक्त ६ प्रत्ययों का पता लगाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शतृ और शानच्

वर्तमान काल का बोध कराने के लिए शतृ और शानच् प्रत्यय भी आते हैं। शतृ प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं में और शानच् प्रत्यय आत्मनेपदी धातुओं में लगता। वेद में इन दोनों प्रत्ययों का व्यवहार लोक के समान ही हुआ है।

नोट—शतृ प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं में लगता है और शानच् आत्मनेपदी धातुओं में। जैसे गम् + शतृ = गच्छन्, पचन् आदि।

सेव + शानच् = सेवमान, वर्धमान

इन दोनों प्रत्ययों के रूप सब विभक्तियों और सब वचनों में होते हैं।

लेट् लकार (Subjunctive mood)

लेट लकार को हम तीन भागों में विभक्त करके अवगत कर सकते हैं।

1. प्रयोग (Usage)
2. बनावट (Formation)
3. स्वभाव (Nature of the Subject)

1. आधुनिक क्रियाओं के रूप समय और काल को स्पष्टतया व्यक्त करते हैं। जैसे गच्छति, पचति आदि से वर्तमान का बोध होता है। अगच्छत्, अपचत् आदि से भूतकाल का बोध होता है। परन्तु वेद में समय को व्यक्त करने के लिए कोई विशेष नियम नहीं है। हम पाणिनि के निम्न सूत्र में पाते हैं—

छन्दसि लुङ् लङ् लिट् सर्वकालेषु

अर्थात् लुङ्, लङ् और लिट लकारों के रूपों को वर्तमान, भूत और विधि इन तीनों कालों में प्रयुक्त किया जाता था, इससे स्पष्ट है कि वेद में लकारों के विषय में समय को विशेष महत्व नहीं दिया गया।

लेट् लकार का प्रयोग वेद में विधि के अर्थ में होता है। 'लिङर्थे लेट' इस सूत्र से प्रमाणित होता है कि लेट् का प्रयोग लिङ् के अर्थ में भी होता है। विधिलिङ् से वह कर्त्ता की इच्छा को प्रकट करता था। जहाँ विधिलिङ् केवल संभावना व्यक्त करता है और कार्य केवल कर्त्ता की इच्छा पर छोड़ दिया जाता है वहाँ लेट् लकार कर्त्ता की खास इच्छा कारक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे—यजेत् स्वर्गकामः में यजेत् शब्द कर्त्ता के लिए यज की प्रेरणा करता है। यज्ञ न करने पर उसके लिए प्रत्यवाय का संकेत करता है। वैदिक लेट् लकार शंका और उपसंवाद के भी अर्थ में आता है।

बनावट (Formation)—लेट् लकार समस्त कालों के अर्थों का द्योतक है अतः उसकी बनावट को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) वर्त्तमान आधार लट्
(ख) अनद्यतन भूत
(ग) लुङ् Aorist

वर्त्तमान आधार में बनावट निम्न प्रकार होती है।

जैसे—भू + शप् + ति = भवति

ग्रन्थ के सन्दर्भ के देखे बिना इस बात का पता लगाना कि यह भवति रूप लट् का है या लेट् का यह सम्भव नहीं।

(ख) अडागम लगाने से भी भवति रूप सिद्ध होता है।

यथा—

भवति	भवतः	भवान्
भवासि	भवाथः	भवाथ
भवानि	भवाव	भवाम

इस लेट् लकार के रूपों का भी सम्यक् परिज्ञान बिना ग्रन्थ सन्दर्भ के नहीं हो सकता।

'इतश्चः लोपः' सूत्र के अनुसार इ का लोप कर देने पर लेट् लकार के रूप निम्न प्रकार होंगे—

(१) भवत्
(२) भवात्
(३) भविषति
(४) भविषाति
(५) भविषत्
(६) भवीषात्
(७) भाविषति
(८) भविषत्
(९) भाविषत्
(१०) भविषात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Aorist—लुङ् लकार के आधार पर

लुङ् लकार के आधार पर हम धातुओं को तीन प्रकार से अवगत कर सकते हैं।

कृ	=	किरति
दृश	=	दर्शति
दा	=	दाति

(२) द्वित्व करने पर Subjunctive mood के रूप बनते हैं।

जैसे—तित् पास

जब कि वेद में उक्त दोनों ही अर्थों में लेट् लकार का प्रयोग देखा जाता है। वास्तव में लेट् लकार इच्छा और प्रेरणा को व्यक्त करता है।

वाच्य-परिवर्तन (Change of voice)

क्रिया के प्रयोग से वाच्य तीन प्रकार के होते हैं—

कर्तृवाच्य

कर्मवाच्य

भाववाच्य

जब क्रिया का संबंध कर्त्ता के साथ रहता है तो वाक्य कर्तृवाच्य कहलाते हैं; जैसे—देवदत्तः धनम् अधिगच्छति, रामः ग्रामम् गच्छति, आदि।

यहाँ अधिगच्छति या गच्छति क्रिया का सम्बन्ध कर्त्ता के साथ है। क्योंकि कर्ता एक वचन में है और क्रिया भी एक वचन है। यदि यहाँ कर्त्ता को द्विवचन कर दिया जाये या बहुवचन कर दिया जाये तो क्रिया को भी उसी प्रकार रखना होगा। कर्तृवाच्य में कर्त्ता को प्रथमान्त और कर्म को द्वितीयान्त रखा जाता है।

कर्मवाच्य—जब क्रिया का सम्बन्ध कर्त्ता के साथ न होकर कर्म के साथ हो तो वाक्य कर्मवाच्य कहलाता है।

जैसे—रामेण राक्षसः हतः।

यहाँ राक्षस कर्म एक वचन है, अतः क्रिया भी एक वचन है। यदि राक्षस को द्विवचन या बहुवचन कर दिया जाय तो क्रिया को भी द्विवचन या बहुवचन कर दिया जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मवाच्य प्रयोग में कर्त्ता तृतीया और कर्म प्रथमान्त होता है। तथा क्रिया का वचन कर्म के अनुसार रहता है।

भाववाच्य—(Impersonal voice) जब वाक्य में क्रिया का सम्बन्ध न तो कर्त्ता से हो न कर्म से तब क्रिया भाववाच्य कहलाती है। जैसे 'तेन गम्यते' (उससे जाया जाता है) यहाँ गम्यते का सम्बन्ध तेन कर्ता के साथ नहीं है।

कर्मवाच्य और भाववाच्य प्रयोगों में आत्मनेपद की क्रियाएँ लिखी जाती हैं। कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने के वैदिक नियम—

१—सार्वधातुक धातु

२—असार्वधातुक धातु

१. धातु के सार्वधातुक होने पर कर्मवाच्य और भाववाच्य बनाने में प्रत्येक धातु से परे 'य' विकर्ण लगाया जाता है। जैसे पठ् धातु में 'य' विकर्ण जोड़ देंगे तो बनेगा—पठ्यते

२. य परे रहने पर पूर्व इ हो जाता है।

३. कहीं-कहीं दीर्घ हो जाता है।

४. ह्रस्व ऋ को 'रि' में परिवर्त्तित किया जाता है, तथा ॠ के स्थान पर ईर आदेश रहता है। यथा—

जि = जीयते

श्रु = श्रूयते

कृ = क्रियते

स्तॄ (ढकना) स्तीर्यते

५. कुछ अकारान्त धातुओं के अंतिम अ का ई हो जाता है।

स्था + य + ते = स्थीयते

दा = दीयते

गा = गीयते

माङ् = मीयते

६. यदि धातु का संयुक्त वर्ण अनुनासिक हो तो अनुनासिक का लोप होता है, जैसे—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भज्	+	य	+	ते	=	भज्यते
बध्	+	य	+	ते	=	बध्यते
रज्	+	य	+	ते	=	रज्यते

७. धातुओं में य का इ तथा व का उ हो जाता है।

जैसे—यज्	+	य	+	ते	=	इज्यते
वच्	+	य	+	ते	=	उच्यते
स्वप्	+	य	+	ते	=	सुप्यते

वेद में वाच्य परिवर्तन के अधिकांश नियम प्रायः लौकिक संस्कृत के समान ही आये हैं।

लौकिक संस्कृत में कर्त्तरि प्रयोगों को कर्मणि प्रयोग बनाने के लिए प्रथमान्त कर्त्ता को तृतीयान्त कर्त्ता द्वितीयान्त कर्म को प्रथमान्त कर्म और कर्त्ता के अनुसार चली आई क्रिया को आत्मनेपद में कर्म के वचन के अनुसार बना देना होता है। यथा—

स अग्निष्टोमम् यजति

इस कर्त्तरि प्रयोग का 'तेन अग्निष्टोमः इज्यते' कर्मणि प्रयोग होगा। भावी प्रयोग में 'तेन इज्यते' इतना ही लिखा जायगा।

कारक

वैदिक भाषा का कारक लौकिक संस्कृत के समान पेचीदा और जटिल नहीं है। 'बहुलं छन्दसि' के आधार पर किसी अर्थ में कोई भी विभक्ति हो सकती है। पाणिनि ने अपनी वैदिकी प्रक्रिया में कारक विधायक कतिपय सूत्रों का ही निर्देश किया है। मैकडॉनल ने विभक्ति अर्थ का नियमन कई अनुच्छेदों में किया है। यहाँ पर मात्र विशेषताओं का ही निरूपण किया जायगा।

१. तृतीया च होश्छन्दसि २।३।३—हु धातु के कर्म में द्वितीया और तृतीया दोनों ही विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

यवाग्वाऽग्निहोत्रं जुहोति।

२. द्वितीया ब्राह्मणे २।३।६०—ब्राह्मण का प्रयोग होने पर दिव्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धातु के कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। यह सूत्र षष्ठी का अपवाद करता है। यथा—

गामस्य तदहः सभायां दीव्येयुः।

३. चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि २।३।६२—चतुर्थी के अर्थ में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है। यथा—

'पुरुषमृगश्चन्द्रमसे गोधाकालकादार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्'। यहाँ वनस्पतिभ्य के स्थान पर वनस्पीतानाम् का प्रयोग हुआ है।

४. षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वाच्या (वा०)—षष्ठी विभक्ति के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा—

या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वः।

५. यजेश्च करणे २।३।६३—यज धातु के योग में तृतीया और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती हैं। यथा—

घृतस्य घृतेन वा यजते।

Compounds (समास)

साधारण नियम के अनुसार समास में कई शब्द सहज रूप में परस्पर मिल जाते हैं। एक समस्यन्त पद में यह अभिव्यक्त करने की क्षमता रहती है कि उनके भिन्न-भिन्न पदों में क्या सम्बन्ध है।

लौकिक संस्कृत साहित्य में ही नहीं प्रत्युत् वैदिक साहित्य में भी समास बद्ध रचना की बहुलता है। समास का प्रादुर्भाव वैदिक साहित्य में उस समय हुआ जबकि भारतीयों का अन्य पश्चिमीय जातियों से परिचय भी नहीं हुआ था। वैदिक भाषा में दो से अधिक शब्दों को जोड़ने की और उन्हें एक शब्द के रूप में व्यवहार करने की क्षमता विद्यमान है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में हमें कठिनता से केवल तीन पदों के समास मिलते हैं, वे भी कहीं-कहीं।

जैसे—पूर्व-काम-कृतवान् (fulfilling former wishes) समस्यन्त पद की एक यह भी विशेषता है कि इसमें उच्चारण का एकीकरण हो जाता है। कुछ अपवादों को छोड़कर समस्यन्त पदों का लिंग उसके अन्तिम पद का ही अनुसरण करता है। इन पदों का वचन उसके अर्थ के अनुसार ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Classification of compounds समास का वर्गीकरण—मुख्यतः वैदिक समास का तीन विभिन्न श्रेणियों में विभाजन किया जा सकता है।

1. Co-ordinatives—द्वन्द्व
2. Determinatives—तत्पुरुष
3. Possessives—बहुव्रीहि

वैदिक समास का विस्तृत वर्गीकरण करने के लिए इसके तीन और विभाग किये जा सकते हैं—

4. Governing Compounds—अनुशासित अव्ययीभाव
5. Syntactical Compounds—वाक्यविन्यास सम्बन्धी समास
6. Iteratives—द्विरुक्त समास

1. Co-Ordinative Compounds

(द्वन्द्व समास[1])

द्वन्द्व समास दो या दो से अधिक संज्ञा शब्दों में होता है। इन शब्दों को 'च' शब्द से परस्पर समन्वित किया जाता है।

लौकिक संस्कृत में कहा भी है "चार्थे द्वन्द्वः" अर्थात् च के अर्थ में द्वन्द्व समास होता है।

१. देवताद्वन्द्वे च ६।३।२६—ऋग्वेद में अनेक शब्द समूह (प्रायः देवताओं के नाम वाले) ऐसे हैं जिनके रूप में द्वन्द्व है और उनके उच्चारण में भी एक प्रकार की पृथक्ता है।

जैसे—मित्रवरुणौ, मातर-पितारा, द्यावा-पृथिवी,

देवतावाची द्वन्द्व समास में पूर्वपद को आनङ् आदेश होता है। यथा—सूर्याचन्द्रमसौ धाता, इन्द्रा बृहस्पति।

१—बाद के संस्कृत वैयाकरणों ने इसे द्वन्द्व समास का नाम दिया जिसका अर्थ है युगल।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवताद्वन्द्वे उभयत्र वायोः प्रतिषेधः (वा०)—देवतावाची द्वन्द्व समास में वायु में आनङादेश का निषेध किया गया है। यथा—

अग्निवायू:, वाय्वग्नी।

ब्रह्मप्रजापत्यादीनां च (वा०)—ब्रह्म और प्रजापति शब्दों में भी आनङादेश का निषेध किया गया है। यथा—

ब्रह्मप्रजापती; शिववैश्रवणौ, स्कन्दविशाखौ।

पितरा मातरा च छन्दसि ६।३।३३—द्वन्द्व समास में पितरा और मातरा शब्द का निपात होता है। यथा—

आ मा गन्तां पितरामातरा च।

२. द्वन्द्व समास में विशेषणों का समावेश भी यत्र-तत्र देखा जाता है। यथा—

(क) रंग का वर्णन करने में—नील-लोहितम्।

(ख) विपरीत गुणों के सन्निवेश में—उत्कूल-निकूलः।

(ग) किसी विशेष वस्तु को बतलाने में—पादाभ्यां-दक्षिण-सव्याभ्याम्।

३. प्राचीन द्वन्द्व में एक ही शब्द द्वारा दो का भाव व्यक्त किया जाता था। यथा—

द्यावा—स्वर्ग और पृथिवी, मित्रा—मित्र और करुण, पितारा—पिता और माता, मातरा—माता और पिता।

(Determinatives) तत्पुरुष समास

१—तत्पुरुष समास की प्रक्रिया वैदिक भाषा में लौकिक संस्कृत की अपेक्षा भिन्न रूप में पायी जाती है। ऋग्वेद में तत्पुरुष समासान्त पदों की अधिकता है। तत्पुरुष समास में प्रथम पद के द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी और सप्तमी विभक्ति में होने पर अन्तिम पद या द्वितीय पद कृदन्त में रहता है तथा चतुर्थी और षष्ठी विभक्ति में प्रथम पद के होने पर अन्तिम सामान्य संज्ञा के रूप में रहता है। यथा—

द्वितीया—गो–घ्ना, देव–मदनः, भूरि–देवान्, भद्र–वादिनः, वाज–साति।

तृतीया—अग्नि–दग्धः, देव–ता, तनु–शुभ्रः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थी—विश्व–शम्भू ।

पञ्चमी—गो–अजः, तीव्र–सुत्तः ।

षष्ठी—राज–पुत्रः, विश–पतिः, द्रु–पदः, देव–किलविषम् ।

सप्तमी—अहर्–जातः, उद–प्लुतः, पुरु–भूः, बन्धु–क्षितः ।

२—जब तत्पुरुष समास का कोई प्रथम पद ऐसी संज्ञा या अव्यय हो जिसके न रहने से उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप नहीं रह सकता है, जो है; तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं। यथा–कर, चय, जय, तय, दर, भर, रुज, सति, सह प्रभृति पदों को संज्ञा या अव्ययों में जोड़ देने पर उपपद समस्यन्त शब्द बनते हैं। जैसे—अभ्यङ्करः, धनञ्जयः, पुरन्दरः, सुतम्भरः, उग्रम्–पश्य, अश्वम्-इष्टिः ।

३—उपपद समास के यदि अन्तिम पद कृदन्त रूप में हों तथा अन्तिम स्वर आ ई ऊ हों तो इनका लोप नहीं होता। पर अन्तिम स्वर अ इ उ रहने पर त का योग हो जाता है। यथा—

अग्नि–पा, विश्वा–नी, राज–सू, दिवि–क्षि–तः, सोम–सु–तः, ज्योतिष्–कृ–तः ।

Descriptive Compounds कर्मधारय

१—जिस समास का प्रथम पद विशेषण स्वरूप हो अर्थात् दोनों का अधिकरण एक हो उसे व्याधिकरण तत्पुरुष या कर्मधारय कहते हैं—जैसे पुरुष–मृगः, पुरुष–व्याघ्रः, वृषा–कपि, स्ना–कृतः, ऋत्वि–क् ।

२—जब प्रथम पद विशेषण हो और दूसरा पद विशेष्य हो तो उस कर्मधारय को विशेषण पूर्वपद कर्मधारय कहते हैं। यथा– कृष्ण–शकुनि, चन्द्र–मस्, नद–ज्वरः, महा–ग्रामः, मध्यं–दिनम्, हरिश्–चन्द्रः ।

३—क्रिया विशेषण के साथ भी यह समास होता है। यथा—अक्षण्य–द्रुहः, अमुत्त–मूत्रः, पुनर–भवः, पुनर्–भू, पुरो–हितः, इद्–वत्सरः, प्रणि–पातः, सम्–वत्सरः ।

Possessive Compounds बहुव्रीहि

१. जब समास में आये हुए दोनों पद किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप होते हैं तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। यथा—विश्व–नरः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋग्वेद में बहुव्रीहि समास दो प्रकार का पाया जाता है—कर्मधारय बहुव्रीहि और तत्पुरुष बहुव्रीहि।

२. जब प्रथम पद विशेषण या क्रियाविशेषण हो और उत्तर पद विशेष्य हो तथा दोनों पदों में समानाधिकरण (in apposition) न हो तो उसे कर्मधारय बहुव्रीहि समास कहते हैं। यथा—उग्र–बाहुः, अश्व–पर्णः, इन्द्र–शत्रुः, अश्व–पर्णः, राज–पुत्रः, अष्ट–पदः, द्वि–पदः, पुरो–रथः, पुष–पदः, सु–पर्णः।

३. जब प्रथम पद प्रायः षष्ठी या सप्तमी विभक्ति में हो और द्वितीय पद प्रथमा विभक्ति में हो तो उसे तत्पुरुष बहुव्रीहि कहते हैं। इस समास में कभी-कभी प्रथम पद द्वितीया विभक्ति में भी पाया जाता है। यथा—

रायस्–कामः, दिवि–योनिः. मास–केतुः, त्वाम्–कामः।

४. कभी-कभी बहुव्रीहि समास विशेष्य रूप में आता है और उसकी संज्ञा लुप्त रहती है। यथा—'सु-पर्णः' अच्छे पंख वाला, यहाँ पक्षी संज्ञा लुप्त है।

५. दन्त शब्द के स्थान पर बहुव्रीहि में दत् आदेश होता है। यथा—

उभयतोदतः प्रतिगृह्णाति।

६. ऋकारान्त बहुव्रीहि शब्दों के कप् प्रत्यय नहीं होता है। यथा—

हता माता यस्य हतमाता।

Governing Compounds अनुशासित अव्ययीभाव

वेदों में इस वर्ग के अनेक समस्यन्त पद आये हैं। जिनका प्रथम पद उपसर्ग या कृदन्त हो और अन्तिम पद को अनुशासित करता हो (Govern) उसे उपर्युक्त समास कोटि में रखा गया है। ये सामासिक पद आकृति और विशेषण होने की दृष्टि से बहुव्रीहि से मिलते-जुलते हैं। यथा—

अतिरात्रः, अनुकामः, जमद्–अग्निः, तरद्–द्वेषः, अ–पथिः।

Syntactical Compounds. वाक्य-विन्यास सम्बन्धी

कतिपय ऐसे अनयमित समास हैं, जो उपर्युक्त समास के पदों से आकृति और नियमन की दृष्टि से भिन्न प्रकार से निष्पन्न होते हैं। इन समस्यन्त पदों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का एक स्वतन्त्र वर्ग माना जा सकता है, क्योंकि ये सभी एक ही नियम से अनुशासित हैं। यथा—-याद्-राध्यम्, ये यजामह, मम-सत्यः।

Iterative Compounds द्विरुक्त समास

वैदिक साहित्य में इस प्रकार के समस्यन्त पदों की बहुलता है, जिनमें विशेष्य, विशेषण, सर्वनाम, संख्या वाचक शब्द, क्रिया विशेषण और उपसर्गों को दुहराया गया है। पदों को दुहराते समय द्वितीय पद का स्वर लुप्त हो जाता है और बीच में अवग्रह का चिह्न आ जाता है। इन समासों को द्विरुक्त समास माना जा सकता है। तथा—

संज्ञा का, दुहराना—अहर-अहर, दिवे-दिवे, द्यवि-द्यवि, मासि-मासि, दमे-दमे, विशे-विशे,

विशेषण का दुहराना—पणयं—पणयं, प्राचीं प्राचीं, प्र, उत्तरां उत्तरां समाम्।

सर्वनाम का दुहराना—यद्-यद् यामि, तद् तद् दधे।

संख्या वाचक का दुहराना—पञ्च-पञ्च, सप्त-सप्त।

क्रिया विशेषण " " —यथा-यथा, अध-अध।

उपसर्ग " " —प्र-प्रशस्यते।

क्रिया पदों " " —पिब-पिब, स्तुहि-स्तुहि।

वैदिक और लौकिक संस्कृत में अन्तर—

१—वैदिक संस्कृत में अकारान्त शब्दों के रूप प्रथमा बहुवचन में असस् और अस् इन दो प्रत्ययों को जोड़ने से बनते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में केवल अस् प्रत्यय जोड़ने से ही प्रथमा बहुवचन के रूप हो जाते हैं। यथा— वैदिक संस्कृत में देव शब्द का प्रथमा बहुवचन देवासः, देवाः, ब्राह्मण शब्द का ब्राह्मणासः, ब्राह्मणः, पर लौकिक संस्कृत में देवाः और ब्राह्मणाः ही रूप होते हैं।

२—वैदिक संस्कृत में अकारान्त शब्दों के तृतीया बहुवचन में दो प्रकार के रूप होते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में एक ही रूप होता है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव शब्द के तृतीया बहुवचन में देवेभिः और देवैः, पर लौकिक संस्कृत में देवैः रूप होगा।

३—वैदिक संस्कृत में अकारान्त शब्दों का प्रथमा द्विवचन का रूप आ प्रत्यय के योग से और ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का तृतीया एकवचन ई प्रत्यय के योग से बनता है, परन्तु लौकिक संस्कृत में प्रथमा द्विवचन में औ और स्त्रीलिङ्ग तृतीया एकवचन में आ प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—अश्विन शब्द से अश्विना और सुष्टुती से तृतीया एकवचन में सुष्टुती रूप बनेगा। लौकिक संस्कृत में अश्विनौ और सुष्टुत्या रूप बनते हैं।

४—वैदिक संस्कृत में सप्तमी विभक्ति का एकवचन अनेक स्थानों पर लुप्त हो जाता है, पर लौकिक संस्कृत में वह लुप्त नहीं होता। यथा—वैदिक संस्कृत में परमे व्योमन् होगा, परन्तु लौकिक संस्कृत में परमे व्योमनि या परमे व्योम्नि रूप लिखा जायगा।

५—वैदिक संस्कृत में अकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के प्रथमा बहुवचन के रूप आ और आनि इन दो प्रत्ययों को जोड़कर बनाये जाते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में केवल आनि प्रत्यय ही जोड़ा जाता है। यथा—वैदिक संस्कृत में विश्वानि अद्भुता, पर लौकिक संस्कृत में विश्वानि अद्भुतानि होगा।

६—वैदिक संस्कृत में क्रिया रूपों में लट् लकार के उत्तम पुरुष बहुवचन का रूप मसि प्रत्यय लगाकर बनाते हैं, किन्तु लौकिक संस्कृत में मस् प्रत्यय जोड़ा जाता है। यथा—वैदिक में—मिनीमसि द्यवि, लौकिक में मिनीमः।

७—वैदिक संस्कृत में लोट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में त, तन, थन और तात् प्रत्यय लगाये जाते हैं, यथा शृणोत, सुनोतन, यतिष्ठन और कृणुतात् किन्तु लौकिक संस्कृत में ऐसे रूप नहीं होते।

८—लौकिक संस्कृत में लिए अर्थ में क्रिया में तुमुन् प्रत्यय जोड़ा जाता है, यथा गन्तुम्—जाने के लिए पटितुम्—पढ़ने के लिए, द्रष्टुम्—देखने के लिए इत्यादि परन्तु वैदिक संस्कृत में इस अर्थ को व्यक्त करने के लिए से, सेन्, असे, असेन्, कसे, कसेन्, अध्यै, अध्यैन्, कध्यै, कध्यैन्, शध्यैन्, तवै, तवेन्,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तवेङ् ये पन्द्रह प्रत्यय होते हैं। यथा—जीवसे, पिबध्यै, दातवे, कर्तवे, श्रियसे, पिबध्यै, आहुवध्यै, सूतवे, गन्तवे।

९—वैदिक संस्कृत में आज्ञा तथा सम्भावना दिखलाने के लिए एक नये लकार–लेट् की योजना की गयी है। यथा–प्राण आयूंषि तारिषत्। लेट् लकार का प्रयोग लौकिक संस्कृत में नहीं होता है।

१०—लौकिक संस्कृत में गति और उपसर्ग संज्ञक शब्द क्रिया के पूर्व में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु वैदिक संस्कृत में ये क्रिया के आगे-पीछे अथवा दूर भी रहते हैं। यथा–उप प्रायोभिरागतम्, आयातमुप इत्यादि।

मुद्रक–पं॰ बालकृष्णशास्त्री, ज्योतिष प्रकाश प्रेस, कालभैरव मार्ग, वाराणसी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi